वर्ष : 46
अंक : 2

अप्रैल - जून 2025

मूल्य 200 रुपए
ISSN 2582-4481

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

यूजीसी केअर सूचीबद्ध एवं समकक्षी समीक्षित शोध पत्रिका

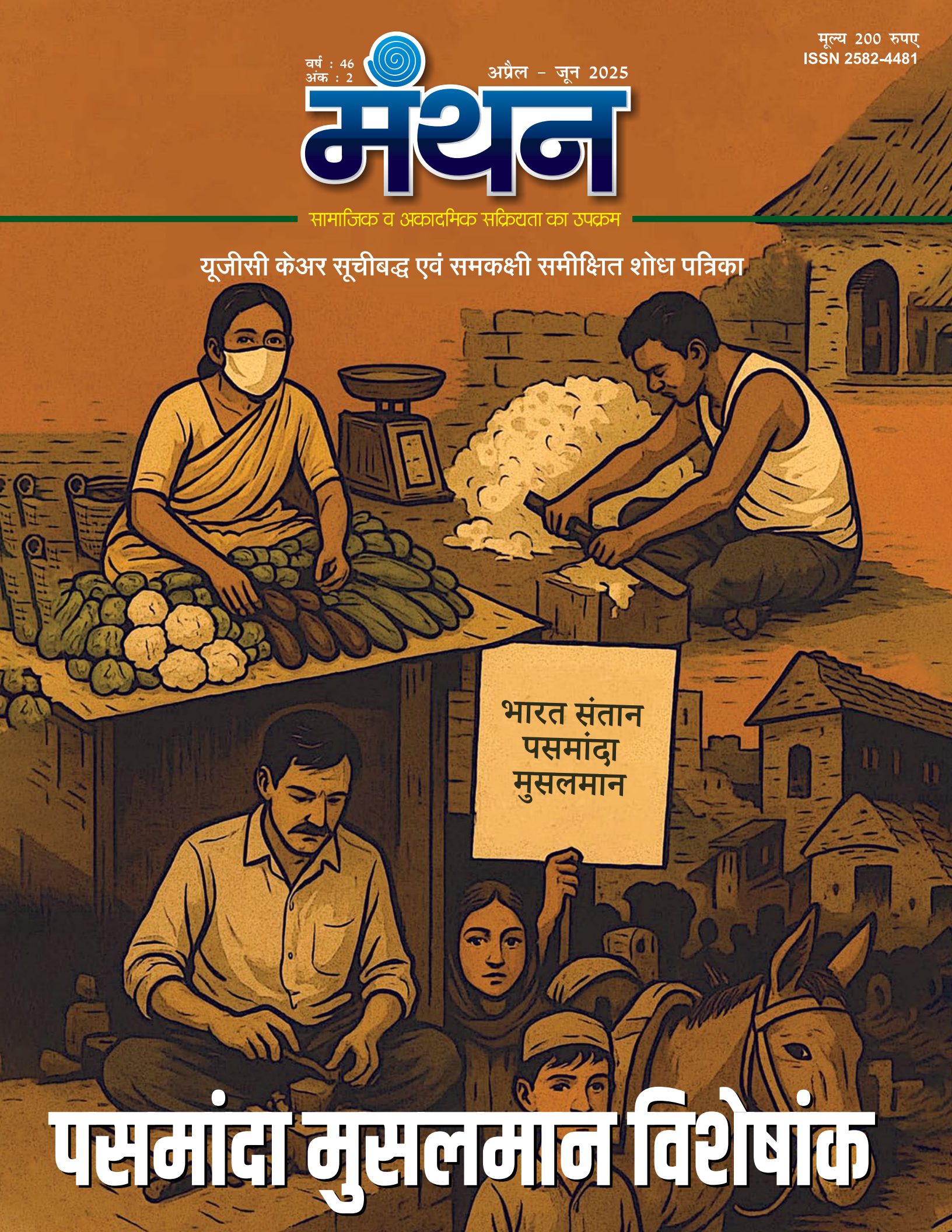

पसमांदा मुसलमान विशेषांक

प्रत्येक पेशे के लिए
एक उत्तम बचत खाता-केवल पीएनबी में

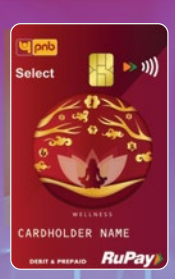

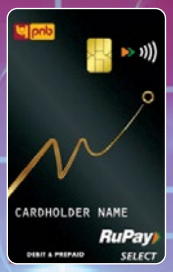

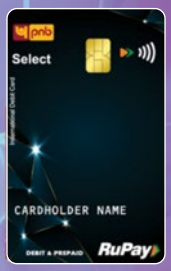

पीएनबी बचत खाता

नियो | **ऑप्टिमा** | **एक्सेल** | **इंपीरियल**

- टर्म लाइफ इंश्योरेंसः ₹ 8 लाख तक का कवरेज और हॉस्पी–कैश सुविधाः ₹ 60000 तक
- ₹ 1.25 करोड़ तक का निःशुल्क व्यक्तिगत दुर्घटना कवर
- आकर्षक रिवार्ड्स : माइलस्टोन आधारित रिवॉर्ड पॉइंट
- अपना पसंदीदा खाता नंबर स्वयं चुनें
- ओटीटी सदस्यता, निःशुल्क स्पा सेवाएं, मेडिकल चेकअप, गोल्फ लेसन, जिम सदस्यता और भी बहुत कुछ
- एयरपोर्ट पर फ्री लाउंज से लेकर रीटेल ऋण शुल्क में रियायत
- लॉकर किराए में 100% तक की छूट
- विशेष ऑफर– Blinkit, Swiggy, Apollo Pharmacy, Book my show, Amazon, Decathlon, Kalyan Jewellers, Myntra, Reliance Digital, MakemyTrip और भी कई

*T&C Apply

टोल फ्री पर कॉल करें : 1800 - 1800, 1800 - 2021 | हमें फॉलो करें: | www.pnbindia.in

पंजाब नैशनल बैंक ...भरोसे का प्रतीक !

punjab national bank ...the name you can BANK upon !

आरएनआई 32486/78 आईएसएसएन 2582-4481

₹ 200/-

अतिथि संपादक
डॉ. फैयाज अहमद फैजी

संपादक मंडल
श्री रामबहादुर राय
श्री अच्युतानंद मिश्र
श्री बलबीर पुंज
श्री अतुल जैन
प्रो. भारत दहिया
श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

विशेषज्ञ संपादक मंडल
प्रो. सुनील के. चौधरी
प्रो. शीला राय
डॉ. चन्द्रपाल सिंह
डॉ. सीमा सिंह
डॉ. राजीव रंजन गिरि
श्री प्रदीप देसवाल
डॉ. प्रदीप कुमार
डॉ. चन्दन कुमार
डॉ. राहुल चिमूरकर
डॉ. महेश कौशिक

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

वर्ष : 46, अंक : 2 **अप्रैल–जून 2025**

पसमांदा मुसलमान विशेषांक

संपादक
डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

यूजीसी केअर सूचीबद्ध एवं समकक्षी समीक्षित शोध पत्रिका

प्रबंध संपादक
श्री अरविंद सिंह
+91-9868550000
me.arvindsingh@manthandigital.com

सज्जा
श्री नितिन पंवार
nitscopy@gmail.com

मुद्रण
ओसियन ट्रेडिंग को.
132, पटपड़गंज औद्योगिक क्षेत्र,
दिल्ली-110092

मंथन सामाजिक एवं अकादमिक सक्रियता को समर्पित एक बहुअनुशासनिक, समकक्षी समीक्षित, शैक्षणिक एवं विषयवस्तु केंद्रित शोध पत्रिका है, जो त्रैमासिक आवृत्ति से वर्ष में चार बार प्रकाशित होती है। यह हर बार किसी एक विशिष्ट विषयवस्तु पर केंद्रित होती है। यह मानविकी के विभिन्न अनुशासनों में शोधरत लेखकों के मौलिक शोधलेखों का स्वागत करती है।

सर्वाधिकार © एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान। सर्वाधिकार सुरक्षित।

अस्वीकरण: एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान प्रतिष्ठान अपने प्रकाशनों में प्रयुक्त सूचनाओं एवं तथ्यों की परिशुद्धता एवं सटीकता सुनिश्चित करने के लिए सभी संभव प्रयास करता है। फिर भी अपने प्रकाशनों में प्रयुक्त विषयवस्तु की परिशुद्धता, पूर्णता एवं उपयुक्तता के संबंध में कोई वचन नहीं देता और न ही इस संबंध में कोई अभिवेदन देता है। इन प्रकाशनों में अभिव्यक्त विचार एवं दृष्टि लेखकों की है; आवश्यक नहीं है कि एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान इनसे सहमत हो।

प्रकाशक

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान

एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002

दूरभाष : 011–23210074; ईमेलः info@manthandigital.com
Website: www.manthandigital.com

अनुक्रम

1.	लेखकों का परिचय		03
2.	संपादकीय		04
3.	अतिथि संपादकीय		06
4.	पसमांदा अर्थात देशज मुसलमान	डॉ. फैयाज अहमद फैजी	08
5.	संविधान सभा में पृथक निर्वाचन क्षेत्र बनाम आरक्षण	रामबहादुर राय	15
6.	पसमांदा मुसलमानों की जड़ें : जाति, धर्मांतरण और सामाजिक स्तरीकरण	डॉ. उपासना तिवारी	22
7.	प्रतिनिधित्व की खोज: पसमांदा आंदोलन का सामाजिक स्वरूप	डॉ. आशीष कुमार शुक्ल	28
8.	अशराफ़, अजलाफ़ और अरज़ाल मुस्लिम	डॉ. अबू होरैरा	35
9.	स्वतंत्रता आंदोलन और दलित मुसलमान	डॉ. अयुब राईन	39
10.	नव उपाश्रितों का एकीकरण: प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी तथा पसमांदा मुस्लिम	प्रो. सुनील के. चौधरी	51
11.	एम.ए. अंसारी, नेहरू समिति की रिपोर्ट और पृथक निर्वाचन क्षेत्र	प्रो. हिमांशु रॉय	59
12.	भारत विभाजन : मुस्लिम लीग बनाम मोमिन कॉन्फ्रेंस	अब्दुल्लाह मंसूर	63
13.	असम में बराक घाटी के पसमांदा मुसलमान	डॉ. ओहिउद्दीन अहमद	71
14.	अल्लाह बख्श सूमरो: पाकिस्तान प्रस्ताव के खिलाफ पहली पसमांदा शहादत	डॉ. राहिल अहमद	76
15.	हिंदी उपन्यास और पसमांदा समाज: एक आलोचनात्मक विश्लेषण	डॉ. कहकशां	81
16.	मौलाना आजाद का अशराफ़ चरित्र	डॉ. शारिद जमाल अंसारी	83
17.	पसमांदा मुसलमान और पटेल	डॉ. प्रदीप कुमार डॉ. शिखा सिंह	88
18.	पसमांदा : पहचान की यात्रा	रामानन्द शर्मा	94
19.	मुख्य धारा का नारीवाद एवं पसमांदा स्त्री एक विश्लेषण	अलीशा बानो अमित कुमार	100

लेखकों का परिचय

डॉ. फैयाज अहमद फैजी लेखक, अनुवादक, स्तंभकार, मीडिया पैनलिस्ट, पसमांदा-सामाजिक कार्यकर्ता और आयुष चिकित्सक हैं। पिछले कई वर्षों से देश के वंचित देशज पसमांदा मुसलमानों के उत्पीड़न एवं अधिकार की बात को लेख, वीडियो वार्तालाप आदि के माध्यम से विभिन्न मंचों से उठा रहें हैं। इन्होंने जम्मू कश्मीर से अनुच्छेद 370 के हटाए जाने, तीन तलाक अधि नियम एवं वक्फ अमेंडमेंट अधिनियम 2025 का समर्थन करते हुए इसे देशज वंचित और कमजोर पसमांदा समाज के लिए हितकर बताया है। समान नागरिक संहिता को भी सपोर्ट किया है।

रामबहादुर राय पद्मश्री से सम्मानित। हिंदुस्तान समाचार के समूह संपादक और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के साथ आपातकाल विरोधी आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई।
संपर्क : rbrai118@gmail.com

डॉ. उपासना तिवारी दिल्ली विश्वविद्यालय के दौलत राम कॉलेज में इतिहास की सहायक प्रोफेसर हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से पीएच. डी, उनकी शैक्षणिक रुचियों में प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व शामिल हैं। उन्होंने प्राचीन इतिहास और भारतीय ज्ञान प्रणाली पर कई शोधपत्र प्रकाशित किए हैं। कॉलेज प्रशासन और पाठ्यक्रम विकास में सक्रिय रूप से शामिल, वह नियमित रूप से राष्ट्रीय सम्मेलनों और वेबिनार में योगदान देती हैं। एक भावुक शिक्षिका और आजीवन शिक्षार्थी, वह सामुदायिक विकास कार्यक्रमों और विद्वत्तापूर्ण -सांस्कृतिक पहलों में गहराई से शामिल हैं।

डॉ. आशीष कुमार शुक्ल, 2017 से दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहे हैं। वर्तमान में देशबंधु कॉलेज में राजनीति विज्ञान के सहायक प्राध्यापक हैं। इसके अतिरिक्त दिल्ली विश्वविद्यालय के एसओएल तथा एनसीडबल्यूईबी में परास्नातक विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करते हैं। 2018 में इजरायली विदेश मंत्रालय के 'डिस्कवर इजरायल कार्यक्रम' में युवा भारतीय शोधार्थियों के प्रतिनिधिमंडल के सदस्य। 2019-21 के दौरान भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली से पूर्णकालिक डॉक्टोरल अध्येतावृत्ति। शोधरुचियों में भारतीय राजनीति, संस्कृति व सांस्कृतिक राजनीति, हिंदू राष्ट्रवाद, धर्म एवं राजनीति तथा इजरायल अध्ययन सम्मिलित हैं।

डॉ. अबू होरैरा का जन्म 8 अप्रैल 1988 को जिला मऊ, उत्तर प्रदेश में हुआ। आपने मौलाना आजाद नैशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद से पीएचडी हिन्दी की उपाधि प्राप्त की है। वर्तमान में उक्त यूनिवर्सिटी के हिन्दी विभाग में अध्यापन कार्य कर रहे हैं। विद्यावार्ता, साहित्य रचना, अमर उजाला आदि में लेख-आलेख, कहानियाँ, कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। आपकी विशेष रुचि पसमांदा साहित्य और विमर्श में है। संपर्क : 8019490662

डॉ. अयुब राईन द्विभाषीय त्रैमासिक अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका जर्नल ऑफ सोशल रियलिटी के प्रधान संपादक हैं। संपर्क : 993406807

प्रो. सुनील के. चौधरी राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर व दिल्ली विश्वविद्यालय के वैश्विक अध्ययन केंद्र (सीजीएस) के निदेशक रहे हैं। उनके पास उत्कृष्ट शैक्षणिक रिकॉर्ड, शोध प्रकाशन तथा दिल्ली विश्वविद्यालय में लगभग तीन दशक का शिक्षण अनुभव है। वह तेल अवीव विश्वविद्यालय, इजराइल से पोस्ट-डॉक्टरल फेलो हैं व आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, यकू में कामॅनवेल्थ फेलो हैं उन्होनें समसामयिक विषयों पर विस्तार से लिखा है, जिनका उल्लेख विभिन्न राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में किया गया है। वह प्रतिष्ठित ग्लोबल साउथ अवार्ड, 2014 के साथ-साथ, विभिन्न राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों के प्राप्तकर्ता भी हैं।

प्रो. हिमांशु राय जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। वे अटल बिहारी वाजपेयी सीनियर फेलो, नेहरू म्यूजियम ऐंड लाइब्रेरी (एनएमएमएल), तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली, एनएमएमएल के फेलो रहे हैं। उनकी प्रकाशित कृतियों में पटेल: पोलिटिकल आइडियाज ऐंड पॉलिसीज, सेज (2018), स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया (2017), इंडियन पोलिटिकल थॉट (2017) इंडियन पोलिटिकल सिस्टम (2017) एवं सलवा जुडूम (2014) शामिल हैं। उनकी आगामी कृति है सोशल थॉट इन इंडिक सिविलाइजेशन, सेज, 2022।

अब्दुल्लाह मंसूर पसमांदा चिंतक, लेखक और पसमांदा डेमोक्रेसी चैनल के संचालक हैं

डॉ. ओहिउद्दीन अहमद एक शिक्षक, शोधकर्ता और पसमांदा सामाजिक कार्यकर्ता हैं। दक्षिणी असम की बराक घाटी की एक पिछड़ी मुस्लिम जाति मैमल समाज से जुड़े ओहिउद्दीन ने असम विश्वविद्यालय, सिलचर से पीएचडी उपाधि हासिल की। वे भारतीय प्रायद्वीप के प्रसंग में मुसलमानों की जाति व्यवस्था और उनके बीच सामाजिक स्तरीकरण पर नियमित रूप से लिखते रहे हैं। निम्न जाति के मुसलमानों को अपने दैनिक जीवन में जिस तरह के सामाजिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है, इस विषय पर उनके कई शोधपत्र प्रकाशित हो चुके हैं। स्थानीय सामाजिक आंदोलन और पसमांदा आंदोलन से उनका निकट जुड़ाव है

डॉ. राहिल अहमद कोरापुट स्थित ओडिशा केंद्रीय विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में सहायक आचार्य हैं। वे शिक्षा शास्त्र और राजनीति शास्त्र में पीएचडी हैं। भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन आईसीएसएसआर से स्वीकृत महत्त्वपूर्ण शोध परियोजना 'इवोल्यूशन ऑफ आर्टिकल 370: ऐन एनलिसिस' में सह परियोजना निदेशक रहे हैं।

डॉ. कहकशां वर्तमान में स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में अतिथि अध्यापक (गेस्ट फैकल्टी) के रूप में कार्यरत हैं। इन्होंने हिंदी साहित्य में परास्नातक की डिग्री रामजस कॉलेज से तथा पीएच.डी. की उपाधि दिल्ली विश्वविद्यालय से प्राप्त की है। इनके शोध का विषय था- "हिंदी उपन्यासों में पसमांदा मुस्लिम जीवन की अभिव्यक्ति"। डॉ. कहकशां साहित्य और समाज के अंतर्संबंधों पर विशेष रुचि रखती हैं, और उनका अकादमिक कार्य समकालीन सामाजिक विमर्शों में उल्लेखनीय योगदान देता है।
संपर्क : Kahkashan.hansraj@live.com

डॉ. शारिद जमाल अंसारी ने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से फारसी भाषा एवं साहित्य में पी.एच.डी की उपाधि प्राप्त की। इनके द्वारा लिखित एवं संपादित पाँच पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। वर्तमान में ये रेख़्ता फाउंडेशन में एडिटर के पद पर रहते हुए सामाजिक कार्य में भी अपना योगदान दे रहे हैं। पस्मांदा मुस्लिम समाज से वंचित और उपेक्षित समाज के उत्थात और विकास के लिए प्रयत्नरत हैं और इस समाज के लिए पिछले दो दशकों से जुड़े हुए हैं।

डॉ. प्रदीप कुमार विचारक, लेखक, एवं पत्रकार डॉक्टर प्रदीप कुमार वर्तमान समय में दिल्ली विश्वविद्यालय के रामजस कॉलेज के इतिहास विभाग में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। साथ ही मंथन पत्रिका के संपादकीय टोली सदस्य हैं। पूर्व में मेवाड़ इंस्टिट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, में उपनिदेशक के दायित्व पर भी रह चुके हैं। विभिन्न सम्मेलनों/महाविद्यालय में लगभग 25 अतिथि व्याख्यान भी प्रेषित कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त 30 से अधिक शोधपत्र राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध ग्रंथों में प्रकाशित हो चुके हैं लगभग 50 से अधिक लेख विभिन्न पत्र पत्रिकाओं मे छप चुके है।

डॉ. शिखा सिंह शोधार्थी, लेखक एवं शिक्षक डॉ शिखा सिंह वर्तमान में स्वामी विवेकानंद सरस्वती विद्या मंदिर, में टीजीटी हिंदी/ संस्कृत के पद पर कार्यरत हैं। शिखा जी के अब तक छह शोध पत्र एवं एक पुस्तक "रामायण में वर्णित आश्रम संस्कृति" समकालीन प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हो चुकी है। इसके अतिरिक्त विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में आपने अनेकों शोध पत्र प्रस्तुत किए हैं।

रामानंद शर्मा दिल्ली विश्वविद्यालय के आर्यभट्ट कॉलेज में राजनीति विज्ञान पढ़ाते हैं और साथ ही दिल्ली विश्वविद्यालय से पीएचडी भी कर रहे हैं। उन्हें भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग से इंस्पायर पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है और उन्हें इंडियन सोसाइटी ऑफ इंटरनेशनल लॉ से पीजीडीआईएलडी भी मिल चुका है। उनकी शोध रुचियों में भारतीय राजनीति और राजनैतिक विचार शामिल हैं। रामानंद ने विभिन्न अकादमिक प्रकाशनों में योगदान किया है और एसओएल, डीयू पाठ्यक्रम सामग्री के लिए अध्याय लिखे हैं।

अलीशा बानो गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान, झूंसी प्रयागराज में जूनियर रिसर्च फेलो के रूप में कार्यरत हैं। रुचि के क्षेत्र- पसमांदा मुसलमान, सामाजिक सुधार की राजनीति और सामाजिक न्याय।
संपर्क : alishaa9696@gmail.com

अमित कुमार राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज में जूनियर रिसर्च फेलो के रूप में कार्यरत हैं। रुचि के क्षेत्र- सामाजिक सुधार और सामाजिक न्याय की राजनीति, दक्षिण एशिया की राजनीति और भारतीय राजनीतिक विचार। संपर्क : amitjnukumar517@gmail.com

संपादकीय

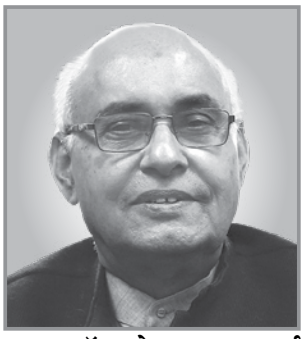

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

भारतीय समाज, जो कि हिंदू समाज है, उसी हिंदू समाज का एक हिस्सा कन्वर्टेड मुस्लिम कहलाता है। ऐतिहासिक कारणों से कुछ मुसलमान ईरान व सेंट्रल एशिया से आक्रमणकारी के रूप में आए। कुछ दक्षिण भारत में व्यापारी के रूप में आए। वे भी इसी समाज का हिस्सा बन गए। यह हिस्सेदारी कितनी जैविक है और कितनी कृत्रिम, इस पर सदैव एक बहस होती रहती है, बहुत बार उससे समाज में तनाव भी उत्पन्न होता है।

जो समाज प्राचीन व व्यापक होते हैं, उनकी रचना सरल-रेखीय नहीं होती, बरगद वृक्ष की जड़ों जैसी होती है। भारतीय समाज तो अपने चरित्र में सनातन समाज है, अत: स्वाभाविक रूप से इसमें संश्लेषणीयता है। हमारे यहाँ कुल, वंश, जाति, क्षेत्र, भाषा व पंथों की संश्लेषणीयता को समझने के लिए किसी भी समाजशास्त्री को स्वयं शास्त्र होने की पात्रता अर्जित करनी चाहिए। भारत में इसके अनेक उदाहरण हैं। विश्लेषण में हिंदू-मुसलमान का द्वैत दिखता है तो संश्लेषण में भारतीयता की धारा निकलती है।

चूँकि भारत का अधिकांश मुस्लिम समुदाय हिंदू समाज का ही हिस्सा है। मतांतरण से न संस्कार बदलते हैं, न पूर्वज तथा न ही इतिहास तथा नृवंशीयता। केवल मुसलमान कहलाने से क्या इस समुदाय की हिंदू संश्लेषणीयता समाप्त हो गई? क्या यह संभव है?

यह प्रश्न अनेक प्रश्न पैदा करता है। जैसे, अरब से लेकर ईरान तक की सभ्यतागत पहचानें (संस्कृतियाँ) समाप्त हो गई। इसीलिए कभी अल्लामा इकबाल ने कहा था :

यूनान-ओ-मिस्र-ओ-रोमां सब मिट गए जहाँ से,
अब तक मगर है बाकी नामो निशाँ हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौर ऐ जमां हमारा।।

यदि दुनिया की अनेक संस्कृतियाँ इस्लाम एवं ईसाइयत के गाल में समा गई, तो फिर भारत में ऐसा क्या है? जैसा कि अल्ताफ हुसैन हाली ने कहा :

वो दीने-हिजाजी का बेबाक बेड़ा,
निशां जिसका अक्सा-ए-आलम में पहुंचा।
मुजाहिम हुआ कोई खतरा न जिसका,
न ओमां में ठिटका, न कुलजुम में झिझका।
किए पै सिपर जिसने सातों समंदर,
वो डूबा दहाने में गंगा के आकर।।

इकबाल एवं हाली के ये कथन भी अधूरे सच हैं, क्योंकि आज भारत का गांधार अफगानिस्तान बन कर अपने बौद्ध व शैव अतीत को भूल चुका है, पाकिस्तान में भी यह प्रक्रिया जारी है।

भारत में वह इस्लाम नहीं फैला जो केरल में आया था, आज के भारत का इस्लाम मोहम्मद बिन काशिम की तलवार के साथ आया है, जो जिहाद-ए-हिंद (गजवा-ए-हिंद) का सपना लेकर आया था। आज, लगभग 1200 साल बाद भी कहीं न कहीं जिहाद-ए-हिंद' का वह सपना जिंदा है। यह उस जहरीली मध्ययुगीन आक्रामकता की निरंतरता है, जिसके साथ बचे हुए भारत का युद्ध भी जारी है और रहेगा।

क्या यह युद्ध भारत के मुसलमानों के साथ है? भारत का मुसलमान तो आक्रमणकारी अशराफ़ मुसलमानों के अत्याचारों का शिकार रहा है। मध्ययुग से लेकर आज तक वह देशज एवं मतांतरित मुसलमान, पसमांदा मुसलमान कहलाता है। वह भारत माता की औरस संतान है। इनकी सच्चाई को न जानने का गुनाह भारत के वर्तमान इतिहासवेत्ताओं ने किया है। तभी तो हम भारत विभाजन के खिलाफ हुए अल्ला बख्स सूमरो की शहादत को नहीं जानते। हम मुस्लिम लीग को जानते हैं, लेकिन मोमिन कान्फ्रेंस को नहीं जानते।

अशराफ़ों के भारतीयकरण की भी एक कहानी है, लेकिन पसमांदाओं की दास्तान अभी तक अनजानी है। उसी दास्तान को रेखांकित करने के लिए 'मंथन' का यह पसमांदा विशेषांक है। सौभाग्य से हमको इसके लिए सुयोग्य अतिथि संपादक प्राप्त हुए डॉ. फैयाज अहमद फैजी, मैं हृदय से डॉ. फैजी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। उन्हीं के कारण यह अनुसंधानपरक विशेषांक आकार ले सका।

'दलित विशेषांक' आप पढ़ चुके हैं। 'भारतीयता विशेषांक' की प्रतीक्षा कीजिए।

शुभम्।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
mahesh.chandra.sharma@live.com

अतिथि संपादकीय

डॉ. फैयाज अहमद फैजी

पसमांदा मुसलमान : ऐतिहासिक और समकालीन परिप्रेक्ष्य

पसमांदा मुसलमान, एक शब्द जो भारतीय मुस्लिम समाज के भीतर एक गहरे और जटिल सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिप्रेक्ष्य को व्यक्त करता है, ने हाल के वर्षों में विशेष ध्यान आकर्षित किया है। पसमांदा शब्द, जिसका अर्थ है 'पीछे छूट गए', सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक रूप से उपेक्षित मुसलमानों के उस समूह की ओर इंगित करता है जो मुख्यत: भारतीय मूल के हैं और देश में इस्लाम के प्रसार के बाद के समय में इस धर्म में शामिल हुए। भारत की सामाजिक-राजनैतिक संरचना में पसमांदा मुसलमानों का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, जो देश की सामाजिक-राजनैतिक बुनावट में एक अनसुनी और अपेक्षाकृत कम पहचाने जाने वाला समुदाय है, यह समुदाय सदियों से सामाजिक और आर्थिक रूप से हाशिए पर रहा है।

इतिहास गवाह है कि इस समुदाय ने सदियों से सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष किया है। आज भी पसमांदा समुदाय कई चुनौतियों का सामना कर रहा है। बेरोजगारी, गरीबी, शिक्षा का अभाव, सामाजिक भेदभाव जैसी समस्याएँ इस समुदाय के लिए आम हैं। हालांकि, हाल के वर्षों में इस समुदाय के लोगों ने अपनी आवाज उठानी शुरू की है और सरकारें भी इस समुदाय के उत्थान के लिए कुछ कदम उठा रही हैं। पसमांदा मुसलमानों की पहचान, उनके संघर्ष और उनकी सामाजिक-राजनैतिक स्थिति का अध्ययन भारतीय मुस्लिम समाज की विविधता और जटिलताओं को समझने के लिए आवश्यक है।

मंथन का यह विशेषांक पसमांदा मुसलमानों के इतिहास, सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियों, और उनके सामने आने वाली चुनौतियों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

आजादी के आंदोलन से लेकर विभाजन, द्विराष्ट्रवाद, और समकालीन राजनैतिक परिप्रेक्ष्य तक पसमांदा मुसलमानों का इतिहास एक महत्त्वपूर्ण और गहरी सामाजिक-राजनैतिक कथा प्रस्तुत करता है। डॉ. उपासना तिवारी और मेरे द्वारा लिखित आलेख से यह स्पष्ट होता है कि पसमांदा मुसलमानों का अस्तित्व किसी एक वर्ग या समूह तक सीमित नहीं है। वे भारतीय मुस्लिम समाज के व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने का हिस्सा हैं, जो न केवल धार्मिक बल्कि आर्थिक और जातीय दृष्टि से भी विभिन्न हैं।

पसमांदा मुसलमानों का इतिहास स्वतंत्रता संग्राम से भी जुड़ा है। डॉ. अयूब राईन ने इस पहलू पर जोर दिया है कि पसमांदा समुदाय ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन उनकी योगदान को हमेशा उचित स्थान नहीं मिल सका। विशेषकर भारत विभाजन के समय, मुस्लिम लीग और मोमिन कांफ्रेंस के बीच संघर्ष ने पसमांदा मुसलमानों की सामाजिक-राजनैतिक स्थिति को और अधिक जटिल बना दिया। अब्दुल मंसूर के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि द्वि-राष्ट्रवाद की अवधारणा, न सिर्फ पूरे भारतीय समाज को बल्कि मुस्लिम समाज को भी एक नया विभाजन दिया।

पसमांदा मुसलमानों की सामाजिक और राजनैतिक पहचान को लेकर सरदार पटेल और मौलाना आजाद के दृष्टिकोण में बुनियादी भिन्नताएँ थीं। जहाँ एक ओर पटेल ने पसमांदा मुसलमानों को सामाजिक असमानता के खिलाफ आवाज उठाने की आवश्यकता को महसूस किया, वहीं मौलाना आजाद ने धार्मिक एकता और धार्मिक शिक्षा पर बल देते हुए मुस्लिम समाज में सामाजिक न्याय से

विमुख रहें। डॉ. शारिद जमाल अंसारी और डॉ. प्रदीप कुमार के विचारों से यह स्पष्ट होता है कि इन नेताओं के दृष्टिकोण का पसमांदा मुसलमानों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

समाज के भीतर अशराफ, अजलाफ और अरजाल के विभाजन पर प्रो. अबु हुरैरा ने जो टिप्पणी की है, वह पसमांदा मुसलमानों के सामाजिक संरचना की जटिलता को उजागर करती है। यह वर्ग विभाजन, न केवल भारतीय मुस्लिम समाज के भीतर, बल्कि भारतीय समाज के व्यापक परिदृश्य में भी एक संवेदनशील मुद्दा बनकर उभरा है।

संविधान सभा में पृथक निर्वाचन बनाम आरक्षण पर श्री राम बहादुर राय ने जो पक्ष प्रस्तुत किया, वह आज भी प्रासंगिक है। अलग निर्वाचन क्षेत्र और आरक्षण के प्रश्न ने पसमांदा समुदाय को हमेशा संघर्षों के बीच रखा है। मोतीलाल नेहरू रिपोर्ट पर केंद्रित डॉ. हिमांशु राय का लेख मुस्लिम समाज के जटिल प्रश्नों पर विश्लेषण करने का समुचित प्रयास करता है। आधुनिक समय में असम क्षेत्र में पसमांदा मुसलमानों की स्थिति पर डॉ. ओहिउद्दीन का लेख कई नए आयामों पर सोचने को मजबूर करता है

पसमांदा मुसलमानों की स्त्रीओ की स्थिति पर डॉ. अलीशा बानो के अध्ययन ने इस समुदाय की महिलाओं की विशेष परिस्थितियों और संघर्षों को उजागर किया है। पसमांदा स्त्री की भूमिका, उनकी आवाज और उनके अधिकारों के प्रति समाज का दृष्टिकोण आज भी एक बड़ी चुनौती बनी हुई है। मुस्लिम लीग के द्विराष्ट्र सिद्धांत के विरुद्ध अल्लाह बख्श सूमरो के पहली शहादत पर डॉ. राहिल अहमद का आलेख प्रकाश डालता है। आशीष शुक्ला ने पसमांदा समाज के प्रतिनिधित्व की खोज और पसमांदा समाज के विन्यास को समझने का सफल प्रयास किया है। आधुनिक राजनीति में, विशेष रूप से नरेंद्र मोदी और पसमांदा मुसलमानों के संबंधों पर डॉ. सुनील चौधरी का विचार महत्त्वपूर्ण है। हिंदी साहित्य में पसमांदा की चर्चा पर डॉ. कहकशां परवीन का विश्लेषणात्मक आलेख पठनीय है

अंततः पसमांदा मुसलमानों की पहचान, संघर्ष और उनकी स्थिति को लेकर विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पसमांदा मुसलमानों की सामाजिक-राजनैतिक सशक्तीकरण की दिशा में मंथन का यह विशेषांक न केवल अकादमिक दृष्टिकोण से, बल्कि समग्र भारतीय समाज के बेहतर समझ के लिए भी आवश्यक है।

हमारा यह विशेषांक पसमांदा मुसलमानों के अधिकारों के प्रति संवेदनशीलता उनकी सामाजिक, राजनैतिक, और सांस्कृतिक यात्रा को एक नए प्रकाश में प्रस्तुत करते हुए उनके इतिहास, वर्तमान स्थिति, और भविष्य के लिए एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है जिससे उनकी उपेक्षा को संबोधित करने और उनके उत्थान के लिए एक नई प्रेरणा मिल सके। साथ ही यह सभी पाठकों को पसमांदा मुसलमानों के मुद्दों के प्रति अधिक संवेदनशील बनाने में मदद करेगा।

मैं विशेष रूप से प्रत्येक लेखक का आभार व्यक्त करना चाहूंगा जिन्होंने इस प्रयास में हार्दिक रुचि और सहयोग का परिचय दिया।

मेरे लिए यह अत्यंत सम्मान की बात है की मंथन के प्रधान संपादक आदरणीय डॉ. महेश चंद शर्मा जी ने मुझ पर विश्वास जताते हुए मंथन के पसमांदा विशेषांक के लिए मुझे अतिथि संपादक का महत्त्वपूर्ण दायित्व सौंपा।

हम आशा करते हैं कि यह विशेषांक पसमांदा मुसलमानों के अधिकारों के लिए काम करने वाले सभी लोगों के लिए प्रेरणा का एक स्रोत होगा। हमें विश्वास है कि इस विशेषांक के माध्यम से पसमांदा मुसलमानों के समाज में एक सकारात्मक बदलाव आएगा। और वो देश के सर्वांगीण विकास में अपनी भूमिका को और मजबूत करते हुए उभरेंगे।

डॉ. फैयाज अहमद फैजी

डॉ. फैयाज अहमद फैजी

पसमांदा अर्थात देशज मुसलमान

भारत में मुसलमान स्पष्ट रूप से दो भागों में विभक्त हैं। एक तो वे जो अपनी विदेशी पहचान पर गर्व करते हैं और दूसरे वे जो आज भी अपनी देशी पहचान बनाए हुए हैं। एक समाज वैज्ञानिक अध्ययन

भारतीय मुसलमानों में सामाजिक अलगाव पहले नस्ली मतभेदों पर आधारित था। भारतीय मुसलमानों की दो मुख्य श्रेणियों, विदेशी मूल और स्वदेशी मूल के बीच एक स्पष्ट सीमांकन, अशराफ या शुरफा शब्द में परिलक्षित होता है जिसका उपयोग उच्च वंश के मुसलमानों (अधिकतर विदेशी मूल – सैयद, शेख, मुगल और पठान) को नामित करने के लिए किया जाता है, जो भारतीय मूल के लोगों के विपरीत है।[1]

इससे स्पष्ट होता है कि देश में मुस्लिम समुदाय दो बड़े भागों में स्पष्ट रूप से विभक्त है। एक वो जो अरब ईरान और मध्य एशिया से आक्रांता के रूप में आई हुई नस्लें/जातियाँ हैं जिन्होंने भारत पर लंबे समय तक शासन किया है और आज भी शासन प्रशासन के केंद्र में अपनी जनसंख्या के अनुपात में दुगने से भी अधिक स्थान घेरे हुए है,[2] और जो स्वयं को अशराफ (श्रेष्ठ/कुलीन) कहते हैं। भारत में आए हुए इन्हें एक अरसा गुजर गया लेकिन ये लोग आज भी अपनी विदेशी पहचान को ही आगे रखते हुए भारत के अन्य लोगों पर अपने शासक होने के एहसास को जिंदा रखने का प्रयास करते हैं। आज भी अरबी ईरानी नगरों के नाम अपने नाम के आगे जोड़ कर विदेशी होने के दंभ का प्रदर्शन करते हैं; यथा मदनी, मक्की, बुखारी, किरमानी, समनानी, शेरवानी इत्यादि। दूसरा वह मुस्लिम समुदाय जो कुल मुस्लिम आबादी के लगभग 85% से 90% के आसपास है[3],[4] जो अपने पूर्ववर्ती भारतीय मूल के धार्मिक आस्थाओं से मतांतरित होकर इस्लामी आस्था में सम्मिलित हुए हैं। उसमें अधिकतर कामगार जातियाँ और कुछ स्वच्छकार जातियाँ एवं कुछ आदिवासी जनजातियों से संबंधित समाज है, जो पूरे भारत के लगभग प्रत्येक क्षेत्रों में फैले हुए हैं। ये समुदाय अपने क्षेत्रीय भेषभूषा, भाषा, खानपान एवं व्यवहार में बिल्कुल क्षेत्रज होते हैं देशज होते हैं और इसी आधार पर विदेशी मुसलमानों से सर्वथा भिन्न प्रतीत होता है हालांकि इस्लाम और मुसलमान नाम पर संचालित विभिन्न अशराफी संगठनों यथा मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड, जमाते इस्लामी, तबलीगी जमात आदि के प्रभाव के चलते इस समुदाय में इस्लामीकरण के नाम पर अरबीकरण /ईरानीकरण का प्रचलन पिछले सदी से कुछ बढ़ा जरूर है फिर भी देशज रंग और गंध आज भी इनमें परिलक्षित होती है।

इस आलेख में भारतीय मूल के मुसलमानों के देशज उत्पत्ति पर निम्नलिखित बिंदुओं के तहत प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

मुसलमानों के नाम

यह सर्वविदित तथ्य है कि किसी भी क्षेत्र विशेष के लोग अपनी नई पीढ़ी का नामकरण अपनी स्थानीय भाषा और समाज की मान्यताओं के अनुरूप करते हैं भारत भी इससे अलग नहीं है। देशज मुसलमानों के नाम उनके स्थानीय सभ्यता का द्योतक रहा है। पसमांदा के नाम स्थानीय भाषा संस्कृति के अनुरूप जैसे बेचू, बेचन, प्यारू, दिलेरू, झाबू[5] गोरख मियां पुत्र रमजान मिया[6] तीड़ी राय भाट[7], मंगती मल्लाह रामडा[8] इस्लामी पर्व एवं त्यौहारों के अनुरूप जैसे सोबराती, बकरीदन, रमजनिया[9] इद्दन, बरफाती आदि दिनों के नाम पर जैसे जुम्मन, बुध्धन, जुमराती, पीरू, सोमारू[10] इस्लामी महीनों के नाम पर मोहर्रम रज्जब शाबान आदि।

कुछ प्रमुख देशज नामों का यहाँ चर्चा करना

उचित मालूम होता है जैसे कुबेर मियाँ, चिखुरी मियाँ, मल्ली मियाँ[11] मेरे बचपन में मेरी मस्जिद के मुअज्जिन (अजान पुकारने वाला) को हम लोग दलकुरूम दादा कह कर पुकारते थे बाद में पता चला कि उनका असल नाम अब्दुल करीम था लेकिन वो अपने अरबी नाम के भोजपुरी उच्चारण दलकुरूम से ही प्रसिद्ध थे। मेरी (लेखक) दादी जी के पिता का नाम लौंग मियाँ और लौंग मियाँ के पिता का नाम मीरन मियाँ था। मेरे (लेखक) दादा जी के बुआ का नाम भाग्या था, जिन्हें मेरे पिता और उनके भाई भगिया (भाग्या का भोजपुरी उच्चारण) दादी कह कर पुकारते थे[12], जिनके पति हाजी सुभान अली थे जो अपने समय में मात्र 24 रुपए में हज यात्रा किया था।

प्रसिद्ध पसमांदा नेता नूर मुहम्मद जो 1937 में बिहार विधानसभा के लिए चुने गए थे उनके नाना का नाम बादर मियाँ और ससुर का नाम चुल्हन सरदार था।[13] भारत रत्न उस्ताद बिस्मिल्लाह खान के पिता का नाम बचई मियाँ और उनके भाई का नाम पचकौड़ी मियाँ था।[14] स्वतंत्रता सेनानी, चंपारण आंदोलन के सिपाही, बिहार में हिंदी पत्रकारिता के जन्मदाता, साप्ताहिक हिन्दी 'प्रताप' के संवाददाता पीर मुहम्मद मूनिस के पिता का नाम फतिंगन मियाँ था।[15]

चौरीचौरा के शहीद सुकई पुत्र गोबर, परमवीर चक्र विजेता वीर अब्दुल हमीद के भाई का नाम झुन्नन है। प्रसिद्ध शायर राहत इंदौरी के कवि पुत्र का नाम सतलज इंदौरी, उनकी नातिन का नाम रावी, पोती का नाम मीरा जरियाब[16] लोकगीत कलाकार, झारखण्ड आंदोलन के सिपाही झारखण्ड रत्न, पद्मश्री मधु मंसूरी हसमुख का नाम बचपन में मध(शराब) चाटने के कारण मधु पड़ गया था।[17]

मुस्लिम लीग के द्विराष्ट्र सिद्धांत के कट्टर विरोधी, मौलाना हकीम (चिकित्सक) अतीकुर रहमान आरवी ने अपने दोनों बेटों का नाम मोहन लाल और सोहन लाल रखा था और अपने दोस्तों और साथियों से बड़े गर्व के साथ इसकी चर्चा करते थे।[18] बहुत से नाम हिंदू समाज और पसमांदा समाज के लिए समान होते हैं जैसे भोला, छेदी, झांगुर, राजू, लल्लन, अमीन आदि। हिंदू और पसमांदा नाम में अंतर करने के लिए लोग पसमांदा के नाम के साथ मुसलमान के पर्यायवाची शब्द मियाँ का इजाफा कर देते थे। दरअसल मियाँ अशराफ वर्ग का उद्बोधन है जो वो सम्मान में एक दूसरे को कहते हैं, लेकिन अशराफ कभी पसमांदा को मियाँ नहीं कहते हैं। यहाँ यह बात गौर तलब है कि हिंदू तो पसमांदा को मियाँ कह कर सम्मान देता है लेकिन अशराफ ऐसा नहीं करता।

इसी संदर्भ में मोहन दास नैमिशराय ने बहुत ही दिलचस्प वाकया लिखा है, "लालबेगी अपना उपनाम बेग ही लगाते हैं पर उनके नाम अशोक, प्रकाश, मोहन, सुरेखा, अनिता आदि होते हैं। बहुत कम लोग मुसलमानी नाम रखना पसंद करते हैं। इस प्रकार से सम्मिश्र नामों के कारण यदा-कदा मजेदार वाकये हो जाते हैं।

अहमदनगर के प्रकाश इस्माइल चाव्हाण को नगरश्री सम्मान के लिए चुना गया तो अखबारों में उसका पूरा नाम दिया जिससे हिंदू-मुसलमान दोनों पेशोपेश में पड़ गए। मुसलमानों ने उन्हें हिंदू मानकर उनका सत्कार नहीं किया और हिंदुओं ने मुसलमान समझकर।[19] सिर्फ यही नहीं विदेशी अशराफ मुसलमान, देशज मुसलमानों को अपने जैसा अरबी ईरानी नाम नहीं रखने देते थे। प्रो. मसूद आलम फलाही अपनी किताब 'हिंदुस्तान में जात पात और मुसलमान' में लिखते हैं कि तथाकथित नीच बिरादरियों के लोगों को अच्छा नाम रखने यहाँ तक कि उन्हें अच्छा खाना तक नहीं पकाने दिया जाता था।[20] लेकिन इधर कुछ वर्षों से अरबी/ईरानी नामो का प्रचलन बढ़ा है अब देशज नाम या तो बहुत कम देखने को मिलते हैं या फिर वो सिर्फ उपनाम (पुकारने वाले नाम) के रूप में ही प्रचलित है अरबी/ईरानी नाम को मुख्य नाम माना जाता है जो अकीका (इस्लामी नामकरण संस्कार), निकाह, स्कूल कॉलेज के सर्टिफिकेट आदि में दर्ज होता है।

मैटिसन माइन्स ने अपने लेख तमिलनाडु के मुसलमानों में सामाजिक स्तरीकरण में संस्कृति के इस संघर्ष को उकेरने का प्रयास किया है, लिखते हैं कि, "उत्तरी तमिलनाडु के मुसलमानों में उस प्रक्रिया के कुछ साक्ष्य भी पाए जाते हैं जिसे 'इसलामीकरण' कहा जा सकता है। उनके नामों का तमिल चरित्र समाप्त हो चुका है और उन्होंने अरबी नाम अपना लिए हैं। व्यक्तियों के नामों (मसलन शैख मुहम्मद राठोर) से उपसमूहों के नामों को निकालने की एक प्रवृत्ति भी देखी जा रही है। अनेकानेक का आग्रह है कि उर्दू को भारतीय मुसलमानों की भाषा स्वीकार की जाए और उत्तरी तमिलनाडु के अनेक तमिल मुसलमानों ने घर के अंदर बोलचाल की भाषा के रूप में तमिल की जगह उर्दू को स्वीकार किया है। इसके अलावा अभी हाल तक तबलीग का आंदोलन बहुत लोकप्रिय

रहा है। भारत में दूसरी जगहों के मुसलमानों की तरह तमिलनाडु के मुसलमान भी अपने हिंदू पड़ोसियों से अलग पहचान के प्रति सजग हुए हैं। लेकिन वास्तव में तमिल मुसलिम बाकी भारतीय मुसलमानों से अनेक अर्थों में भिन्न हैं, केवल तमिल धरोहर के मुआमले में ही नहीं बल्कि सामाजिक ढांचे के एतबार से भी।"[21] इसी कश्मकश को पाकिस्तान के प्रसिद्ध पंजाबी भाषा संस्कृति कार्यकर्ता तारिक गुजर ने अपनी कविता में दर्शाने का प्रयास किया है-

एक बेनाम कविता[22]
मेरे घर में
मेरी माँ ने
मेरा नाम
उस बोली की डिक्शनरी
से रखा है
जिसे वो खुद से भी
पढ़ नहीं सकती
(मूल पंजाबी कविता जो नास्तालिक लिपि में लिखी हुई है, से अनुवाद करने की कोशिश)

परंपराएँ, रीति-रिवाज, आस्था एवं मान्यताएँ

देशज पसमांदा अपने नए धर्म इस्लाम को अपनाने के बाद भी अपने पूर्वजों की स्थानीय परंपराओं, रीति-रिवाज मान्यताओं एवं धार्मिक आस्था से पूरी तरह दूर नहीं हो पाए।

नौमाना किरण लिखती है कि "ग्रामीण मुसलमान स्वदेशी लोग थे, इसलिए वे अपनी पूर्व संस्कृति और परंपराओं से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने इस्लाम का सही तरीके से पालन करने के लिए अतिरिक्त समय लिया।"[23]

गौस अंसारी लिखते है कि, "दूसरी ओर, स्वदेशी धर्मांतरित लोगों ने अपनी कई मूल जाति प्रथाओं और रीति-रिवाजों को बरकरार रखा। दोनों मामलों में अशराफ और स्वदेशी धर्मांतरित (पसमांदा) लोगों के बीच समायोजन की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप मुस्लिम सामाजिक राजनीति की एक श्रेणीबद्ध योजना बनी जिसमें अशराफ को सबसे ऊपर स्थान दिया गया।[24]

विलियम जे चार्ल्स अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं, "इस प्रांत में रहने वाले मुसलमान संभवत: निम्न जाति के हिंदुओं के वंशज हैं, जिन्होंने सामाजिक स्तर पर खुद को ऊपर उठाने के लिए, या अपने नए स्वामियों का अनुग्रह पाने के लिए, या जाति नियमों के उल्लंघन के कारण अपने ही समाज से निष्कासित कर दिए जाने के कारण, या किसी अन्य कारण से, पिछले 600 वर्षों में विभिन्न समयों पर मुसलमान धर्म को अपनाया,... फिर भी, मुसलमान धर्म अपनाने वाले (कम से कम उत्तरी भारत के) लोगों ने नया धर्म अपनाते समय अपने पूर्वजों की आदतों और आचार-विचार (सभ्यता-संस्कृति) को पूरी तरह से नहीं छोड़ा, इसके विपरीत वे कई मामलों में जातिगत रीति-रिवाजों के पालनकर्ता बने रहे।

हिंदू आचार-विचार से बंधे होने के मामले में इन लोगों में काफी अंतर है। उनमें से कुछ लोग ऊपर बताए गए हिंदू रीति-रिवाजों का पालन करते हैं,तो कुछ लोग केवल कुछ रीति-रिवाजों का; उनमें से कुछ लोग इन सभी रीति-रिवाजों को अस्वीकार करते हैं।[25]

चर्चाओं से यह बात सामने आई है कि मुसलमानों की पूजा-अर्चना की कुछ प्रथाओं का उनके हिंदू मूल से संबंध है। उदाहरण के लिए, पिंजारा और नदाफ जैसे उप-समूह पूजा-अर्चना की कुछ हिंदू परंपराओं का पालन करना जारी रखते हैं। हालाँकि अल्लाह के अलावा किसी अन्य ईश्वर की पूजा करना गैर-इस्लामिक है, पिंजारा मंदिर जाते हैं और स्थानीय हिंदू देवताओं की पूजा करते हैं। इसी तरह, इस्लाम के अन्य समूहों का मानना है कि पिंजारा कड़ाई से नमाज (प्रार्थना) नहीं करते हैं और "इसे दिन में पाँच बार नहीं करते हैं"। जैसा कि अध्ययन क्षेत्र में देखा जा सकता है, पिंजारा के गाँव में अलग मस्जिदें हैं

चर्चाओं से यह बात सामने आई है कि मुसलमानों की पूजा-अर्चना की कुछ प्रथाओं का उनके हिंदू मूल से संबंध है। उदाहरण के लिए, पिंजारा और नदाफ जैसे उप-समूह पूजा-अर्चना की कुछ हिंदू परंपराओं का पालन करना जारी रखते हैं। हालाँकि अल्लाह के अलावा किसी अन्य ईश्वर की पूजा करना गैर-इस्लामिक है, पिंजारा मंदिर जाते हैं और स्थानीय हिंदू देवताओं की पूजा करते हैं। इसी तरह, इस्लाम के अन्य समूहों का मानना है कि पिंजारा कड़ाई से नमाज (प्रार्थना) नहीं करते हैं और "इसे दिन में पाँच बार नहीं करते हैं"। जैसा कि अध्ययन क्षेत्र में देखा जा सकता है, पिंजारा के गाँव में अलग मस्जिदें हैं। यद्यपि इस क्षेत्र में तब्लीगी जमात जैसे समूहों द्वारा 'शुद्ध इस्लामी परंपराओं' के लिए आंदोलन बढ़ रहा है, फिर भी कई मुसलमान उन अनुष्ठानों का पालन करते हैं जो हिंदू परंपराओं के समान हैं, जिन्हें उन्होंने लंबे समय से आत्मसात किया है।[26]

प्रताप चंद्र अग्रवाल अपने लेख राजस्थान के एक मेव गांव की जातिगत संरचना में मेव जनजाति के बारे में लिखते हैं कि "इस्लाम स्वीकारने के बाद लंबे समय तक वे अधिकांश हिंदू रीतियों का पालन करते रहें।[27] आगे लिखते हैं "मुस्लिम लोहार भी जजमानी के नियमों के अनुसार काम करते हैं। फिर कुछ आगे चल कर लिखते हैं कि "फकीर, सक्का और मिरासी मुस्लिम कमीन(नीच) हैं जो जजमानी के नियमों के अनुसार मेयो भूस्वामियों की सेवा करते हैं"[28]

इसलाम अपनाने के बाद भी अनेक सदियों तक वे (मेव) ब्राह्मणों समेत हिंदू जातियों की मदद से हिंदू रीतियों का पालन करते रहे।[29] मैटिसन माइन्स लिखते हैं कि, "अपनी तमिल धरोहर को स्वीकार करके भी तमिल मुसलमान उत्तर भारत और दकन (पूर्ववर्ती हैदराबाद रियासत - महाराष्ट्र का कुछ क्षेत्र, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश और उत्तरी तमिलनाडु का कुछ क्षेत्र) के मुसलमानों से अपने को भिन्न ठहराते हैं। इस रूप में वे अपने-आपको स्थानीय आबादी का अभिन्न अंग मानते हैं, विदेशी मूल के भूतपूर्व शासकों के वंशज नहीं। वे मुसलिम भाईचारे

के विचार को स्वीकार करते हैं पर साथ ही वे खुद को सच्चे तमिल समझते हैं।

जाहिर है कि जहाँ तमिल मुसलमान अपने को तमिल हिंदुओं से घनिष्ठ रूप से जोड़ते हैं, वहीं वे वास्तव में उनसे लोकाचार और सामाजिक ढाँचे में भिन्न हैं। पल्लवरम के तमिल मुसलमान इस अंतर को लेकर सजग हैं। अपने इसलामी विश्वासों के कारण वे भारत की वृहत्तर मुस्लिम आबादी से भी खुद को जोड़ते हैं। फिर भी यह जुड़ाव किसी भी तरह मुकम्मल नहीं है। वे एक तमिल सांस्कृतिक परिवेश में रहते हैं और उसे अपना समझते हैं। इसके अलावा सामाजिक ढाँचे में वे भारत में अन्यत्र स्थानों के मुसलमानों से भिन्न दिखाई देते हैं। मेरा एक मुसलिम प्रत्यर्थी बँटवारे के बाद पाकिस्तान चला गया था और फिर वहाँ से मोहभंग का शिकार होकर पल्लवरम लौट आया। उसने इस, न यह न वह वाली पहचान को साफ तौर पर व्यक्त किया। उसने कहा कि वह मुसलिम भातृत्व का अंग बनने के लिए पाकिस्तान गया था, पर इसलिए तमिलनाडु लौट आया कि तमिल मुसलमानों और तमिल हिंदुओं में जितने भेद हैं उससे अधिक भेद पाकिस्तानी मुसलमानों में हैं। पल्लवरम के तमिल मुसलमान एक सोपानबद्ध समाज में रहते हुए आश्चर्यजनक सीमा तक समतावादी हैं। हिंदू तमिल समाज और वृहत्तर मुस्लिम आबादी, दोनों से खुद को जोड़ने वाले ये लोग किसी के भी अभिन्न अंग नहीं बन सके हैं।[30]

भिश्ती जाति के प्रथाओं का वर्णन करते हुए गौस अंसारी लिखते है, "और क्योंकि उनके कुछ रीति-रिवाज इस्लाम की शिक्षाओं के बिल्कुल विपरीत हैं, इसलिए हमें यह अनुमान लगाने के लिए ठोस तर्क दिए गए हैं कि वे (भिश्ती) स्वदेशी मूल के हैं। क्रुक ने देखा कि अल्लाह और कुछ मुस्लिम संतों के अलावा, वे अपने मशक (चमड़े की पानी की थैली) की भी पूजा करते हैं।"[31,32]

एक अन्य जगह लिखते हैं कि, "अशराफ और उच्च मुस्लिम व्यावसायिक जातियाँ दोनों ही ठीक से वध किए गए जानवरों का मांस खाती हैं, यानी इस्लामी मानकों के अनुसार जो निर्दिष्ट करते हैं कि जानवरों को चाकू (जबीहा) से मारा जाना चाहिए। इस प्रकार उच्च मुस्लिम जातियों के बीच एकमात्र स्वीकार्य मांस ठीक से वध किए गए जानवर-गाय या बकरी का मांस रहा है।

इसी इबारत के हाशिए में लिखते हैं कि, "कुछ निम्न मुस्लिम जातियाँ, जैसे गद्दी, धोबी, तेली, भंगी, चमार, प्राय: जबीहा मांस को कोई विशेष महत्व नहीं देते हैं और वे आम तौर पर झटका मांस (यानी मुस्लिम तरीके से चाकू से नहीं बल्कि अन्य तरीकों से मारे गए जानवर, जैसा कि निम्न हिंदू जातियों में प्रचलित है) खाने में कोई आपत्ति नहीं करते हैं।"[33]

इसी के आगे कसाई जाति की उत्पत्ति के बारे में स्पष्ट करते हैं कि, "हिंदुओं में मांस का कारोबार करने वाली जाति खटिक है कुछ समय पहले तक खटिक का मुस्लिम समकक्ष चिकवा ही मुसलमानों को मांस की आपूर्ति करने वाली एकमात्र जाति थी। हालाँकि चिकवा अभी भी एक अलग मुस्लिम जाति के रूप में मौजूद है, लेकिन चिकवा अपने वंश की परंपराओं के कारण गायों का वध नहीं करते हैं, लेकिन ऐसी जाति की जरूरत थी जो अशराफ को गोमांस के साथ-साथ अन्य प्रकार के मांस की आपूर्ति कर सके। इस प्रकार धीरे-धीरे कसाब जाति अस्तित्व में आई, वे सभी प्रकार के मांस की आपूर्ति करते थे और गायों को काटने में संकोच नहीं करते थे।[34]

इसलिए चिक/चिकवा कसाई/कसाब से शादी विवाह का संबंध नहीं रखते हैं।[35]

आज भी चिक समाज, कसाई समाज को बड़े जानवर (गाय, भैंस आदि) के मांस काटने के कारण हेय दृष्टि से देखते हैं और स्वयं को उनसे उच्च समझते हैं। कास्ट और इस्लाम अध्याय में ब्लंट ने लिखा है, "लेकिन अन्य हिंदू रीति-रिवाज अभी भी बचे हुए हैं। उदाहरण के लिए, घोसी और किंगरिया (गाने वाली जाति) न तो खुद गोमांस खाते हैं और न ही किसी ऐसे मुसलमान के साथ खाते पीते हैं जो गोमांस खाता हो।"[36]

मोहन दास नैमिशराय ने लिखा है कि, "रोमिला थापर का भी लगभग ऐसा ही मानना है कि मुस्लिम बन जाने के बाद भी दलित मुस्लिमों के प्रति जाति अलगाव समाप्त नहीं हुआ। निश्चित ही तबलीग आंदोलन की इसे खामी भी कह सकते हैं। धर्म परिवर्तन के बाद में जाति की क्या भूमिका रही, इसका एक उदाहरण 1884 में बीजापुर जिले के गजेटियर का विवरण है। यहाँ मुस्लिम जनसंख्या को तीन वर्गों में बाँटा गया है। प्रथम, मुस्लिम जो बाहर से आए, दूसरे यहीं के निवासी, और तीसरे वे जो उत्तरी भारत से आए। इनमें से तीसरे वर्ग के बारे में हम विवरण देना चाहेंगे। तीसरे वर्ग का मुस्लिम, जो जिले में बहुत अधिक संख्या में है, कुछ मामलों में अन्य वर्ग के मुसलमानों से अलग था। स्थानीय स्तर पर उन्होंने मुस्लिम धर्म अपनाया। जिन्होंने जाति नामों का प्रयोग किया जैसे मोमीन, कसाब, पर कुछ ने वही पुराने नाम रहने दिए, जो धर्म परिवर्तन से पहले के थे। जैसे गौंडी, पिंजारा, पारवाली। ये जाति नाम, पहले से ही उनके पेशे से जुड़े थे। इस तरह के मुस्लिम बने लोग उर्दू भी कम बोलते थे और कन्नड़ तथा मराठी अधिक प्रयोग करते थे। इन्हें ढीले-ढाले सुन्नी (उदार सुन्न) कहा जाता था जो बहुत कम मस्जिद जाते थे और हिंदू देवी-देवताओं की पूजा करते थे। हिंदू त्योहार मनाते और गाय का मांस नहीं खाते थे। रोमिला थापर लिखती हैं कि गाय का मांस न खाना ही उन्हें अछूतों से अलग करता है, जो बीफ खाते थे।[37] मुस्लिम तेली जाति का हिंदू तेली जाति से समानता के बारे में गौस अंसारी लिखते हैं कि, "प्रांत(उत्तर प्रदेश) के पूर्वी जिलों में मुस्लिम तेली अपने हिंदू भाइयों के बहिर्विवाह के नियमों का पालन करते हैं और कुल के भीतर विवाह नहीं करते हैं।"[38]

आगे लिखते हैं कि, "आज उत्तर प्रदेश में ज्यादातर भंगी लाल बेगी होने का दावा करते हैं; मुस्लिम और गैर-मुस्लिम दोनों शाखाएँ अक्सर खुद को इसी नाम से पुकारती हैं। हर साल, एक ख़ास समय पर, वे लाल बेग का त्यौहार मनाते हैं जिसमें मुस्लिम और गैर-मुस्लिम दोनों भंगी हिस्सा लेते हैं।[39]

रिजले ने लिखा है कि लालबेगी मुसलमानों के मजहबी रीति-रिवाज आधे हिंदुओं की तरह तो आधे मुसलमानों की तरह होते हैं।... कुछ लालबेगी रमजान के रोजे रखते हैं, हालाँकि वे सार्वजनिक मस्जिद में जाने की हिम्मत नहीं करते।... मृतकों को मुसलमान कब्रिस्तान में नहीं दफनाया जाता, बल्कि उन्हें किसी बंजर और जंगल वाली जगह पर दफनाया जाता है।...दीवाली और

होली को वर्ष के सबसे बड़े त्योहारों के रूप में मनाते हैं।[40]

लालबेगी समाज वाकई सम्मिश्र संस्कारों से युक्त है। पहली बार हमने अहमदनगर में यह महसूस किया। लालबेगी सफाई कामगार इस्माइल चाव्हाण के घर जब हम गए तो वे मुहर्रम की तैयारी में व्यस्त थे। उनके घर की दीवार पर राम-कृष्ण इष्ट देवताओं के चित्र थे। इनके अलावा महात्मा गांधी, इंदिरा गांधी, सरस्वती आदि की तस्वीरें भी थीं। इस संबंध में अधिक जानकारी देते हुए इस्माइल चाव्हाण ने बताया कि हम दोनों मजहबों के त्योहार मनाते हैं। केवल त्योहार ही क्यों उनके रीति-रिवाजों पर भी दोनों धर्मो का प्रभाव परिलक्षित होता है। पहले वे शादी-ब्याह के लिए काजी को बुलाते थे पर अब हिंदू पद्धति से विवाह करते हैं। किंतु पुरोहित उनके घर भोजन नहीं करते। केवल आटा-दाल आदि ले लेते हैं। किसी की मैयत हो जाने पर पूर्व में गवारा लाते थे और भजन भी गाते थे। किंतु इस पद्धति की खिल्ली उड़ाए जाने पर अब अर्थी बनाकर ही शवों को ले जाते हैं। किंतु उन्हें जलाते नहीं, दफन करते हैं। मेहतरों का मरघट अलग रहा है। अन्य मुसलमानों से उनके संबंध ठीकठाक हैं किंतु एक विशिष्ट दूरी बराबर बनी हुई है।[41]

पसमांदा जनजाति से संबंध रखने वाले प्रसिद्ध खोजकर्ता रसूल गलवान जिनके नाम पर गलवान घाटी का नाम है, जब पहली बार यात्रा के लिए निकल रहे थे तो अपनी मां के पैर छू कर आशीर्वाद लिया। वो स्वयं लिखते हैं, "और आखिर में मैंने माँ को सलाम किया, अपने हाथों से माँ के पैर छुए, सलाम किया"[42]

प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता तमन्ना ईनामदार ने एक इंटरव्यू में बताया कि, "लोगों ने अपना धर्म तो बदल लिया लेकिन अभी भी पूर्वजों की परंपरा का निर्वहन करते हैं शादी के अवसर पर जैसे हिंदू समाज भगवान की पूजा करने, पितरों से आशीर्वाद लेने की परंपरा है, वैसे ही मुसलमानों में पूर्वजों को शांत करने के लिए कुछ कुरआन शरीफ पढ़ाया जाता है या कुछ खाना खिलाया जाता है। हिंदू समाज में कुल देवता की पूजा करने की परंपरा रही है उसी तरह मुसलमानों में भी है। वे इसके लिए कुरआन पढ़ते हैं,

लालबेगी समाज वाकई सम्मिश्र संस्कारों से युक्त है। पहली बार हमने अहमदनगर में यह महसूस किया। लालबेगी सफाई कामगार इस्माइल चाव्हाण के घर जब हम गए तो वे मुहर्रम की तैयारी में व्यस्त थे। उनके घर की दीवार पर राम-कृष्ण आदि इष्ट देवताओं के चित्र थे। इनके अलावा महात्मा गांधी, इंदिरा गांधी, सरस्वती आदि की तस्वीरें भी थीं। इस संबंध में अधिक जानकारी देते हुए इस्माइल चाव्हाण ने बताया कि हम दोनों मजहबों के त्योहार मनाते हैं। केवल त्योहार ही क्यों उनके रीति-रिवाजों पर भी दोनों धर्मो का प्रभाव परिलक्षित होता है। पहले वे शादी-ब्याह के लिए काजी को बुलाते थे पर अब हिंदू पद्धति से विवाह करते हैं

शादी में हल्दी-मेंहदी रस्म निभाते हैं।[43]

अभी कुछ ही दिन पहले राजस्थान से एक खबर आई थी कि मुस्लिम परिवार ने हिंदू बहन की बेटी के ब्याह में भात देने की परंपरा को निभाया। पूरी घटना इस प्रकार है, सालरमाला गांव में शंकर सिंह राव की सुपुत्रियों का विवाह था शंकर सिंह राव ने 20 साल पहले मोड़ का निंबाहेड़ा की रहने वाली दुर्गा कंवर राव से ब्याह रचाया था। दुर्गा कंवर के न तो भाई हैं और न ही बहनें हैं। बचपन में माता-पिता भी चल बसे थे।

दुर्गा ने बचपन में ही अपने पीहर (मोड़ का निंबाहेड़ा) में रहने वाले जाकिर हुसैन रंगरेज को राखी बांधकर अपना भाई मान लिया था। जब दुर्गा कंवर राव का विवाह कार्यक्रम आयोजित हुआ था, तब भी मुस्लिम परिवार ने सगी बहन समझकर कपड़े और आभूषण देकर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। तब से ही इस भाई बहन के अटूट बंधन को लगातार आगे बढ़ते हुए मुस्लिम परिवार(पसमांदा) इस बहन के हमेशा सुख-दुख में साथ रहे। बचपन में जाकिर हुसैन रंगरेज ने दुर्गा कंवर को वचन दिया था कि "अगर आपका भाई नहीं है, मैं आपका सगा भाई हूँ और आपके यहाँ भात जरूर लेकर आऊंगा।"[44]

लेखक के दादा कुर्बान मियाँ ने अपने मित्र शिवराम सिंह की इकलौती बेटी ललिता सिंह का कन्यादान स्वयं अपने हाथों से किया था।[45] सुप्रीम कोर्ट के अधिवक्ता रमेश चन्द्र मिश्र ने अपने गाँव के मक्की हसन के बारे में बताया कि वो युवक मंगल दल के अध्यक्ष थे और रामलीला के उद्घाटन का फीता सबसे पहले वही काटते थे।[46]

मांगणियार/ मांगनियार मुसलमान आज भी हिंदू देवी-देवता के भजन गाते हैं।[47] बिहार के मिथिला क्षेत्र में झरनी गीत में मगही भाषा में इस्लाम और कर्बला से संबन्धित गायन का चलन आज भी है।[48] देशज मुसलमानों में आज भी बहुत से क्षेत्रों में बड़ी बहन की दीदी कहने का रिवाज पाया जाता है।

वर्तमान समय में भी पूरे भारत के देशज मुसलमानों की महिलाओं में साड़ी पहनने की परंपरा चली आ रही है (पंजाब और हरियाणा आदि अपवाद को छोड़कर) हालांकि अब सलवार समीज का चलन इधर धीरे-धीरे बढ़ रहा है फिर भी देशज मुसलमानों की ब्याहता महिलाएँ साड़ी को ही प्राथमिकता देती हैं। विशेष रूप से त्यौहारों और विवाह या किसी अनुष्ठान के समय। लेखक ने अपनी 75 वर्षीय माता और दादी (मृत्यु 2015, 97 वर्ष की आयु में), को साड़ी के अलावा किसी अन्य परिधान धारण करते नहीं देखा है।

त्योहार

इस्लाम में केवल दो ही त्यौहारों का चलन मिलता है[49] ईद और बकरीद (ये देसी नाम है इसका इस्लामी नाम ईद अल अझहा है)। लेकिन भारतीय मुसलमानों में उसके अतिरिक्त कई त्योहारों का चलन है। चूँकि भारत पर्व त्यौहारों का देश रहा है इसलिए मतांतरित होने के बाद भी देशज मुसलमानों ने इस्लाम में भी नए त्यौहारों की गुंजाइश निकाल ही ली। इसमें प्रमुख रूप से कुंडाला या कुंडा और शब-ए-बरात है, कुंडा में खीर

और पूरी को मिट्टी के कुंडे में भरकर खिलाने का रिवाज है, इसलिए इस त्योहार का नाम कुंडा पड़ गया है। लोग अपनी मन्नतों को लेकर तरह-तरह के पकवान से कुंडे को भरते हैं। पिछले साल किए गए कर्मों का लेखा-जोखा तैयार करने और आने वाले साल की तकदीर तय करने वाली रात को शब-ए-बरात कहा जाता है। इस रात को पूरी तरह इबादत में गुजारने की परंपरा है। नमाज, तिलावत-ए-कुरआन, कब्रिस्तान की जियारत (दर्शन) आदि। ब्लंट ने शब-ए-बरात की चर्चा करते हुए लिखा है कि, "अंतत:, एक विशिष्ट मुसलमान धार्मिक अनुष्ठान को एक समान रूप से विशिष्ट हिंदू अनुष्ठान के समान बनाने के लिए संशोधित किया गया है। भारतीय मुसलमान अब मानते हैं कि यह समारोह मृतक पूर्वजों को प्रत्यक्ष आध्यात्मिक लाभ प्रदान करता है; और यहाँ तक कि इसे न करने से पिछले वर्ष में मरने वाले परिवार के सदस्यों के लिए स्वर्ग के द्वार बंद हो जाएंगे। यह, निश्चित रूप से, हिंदू श्राद्ध की याद दिलाता है। हिंदू से धर्मांतरित लोगों (देशज मुसलमान) की कई जातियाँ, सामान्य अवसर पर यह भेंट चढ़ाने से परहेज नहीं करती हैं, इसे एक या दूसरे ईद पर दोहराती हैं, कभी-कभी दोनों ईद पर।[50]

यहाँ यह जानना बहुत ही महत्वपूर्ण है कि मुहम्मद (स०) की जयंती केवल भारतीय उपमहाद्वीप में ही मानने का चलन है शेष इस्लामी दुनिया में यह बहुत दुर्लभ है और इस्लाम में मुहम्मद (स०) की जयंती को एक त्यौहार के रूप में मनाने की परंपरा नहीं रही है।

विवाह, तलाक, दुख्तरी हिस्सा

देशज मुसलमानों में विवाह आदि में भी स्थानीय रीति रिवाज एवं परंपराओं का ही बोल बाला रहता है केवल निकाह ही इस्लामी रीति से होता है, हल्दी, मेंहदी सहित दुल्हन को साड़ी, सिंदूर, मंगल सूत्र आदि देने की परंपरा आज तक चली आ रही है। हमारे यहाँ निकाह के लिए लड़के वाले की तरफ से लड़की और उसके घर की औरतों के लिए जो समान जाता है उसे डाला कहते हैं उसमे जेवर, सिंदूर, विभिन्न मसालों की छह पुड़िया के अलावा कपड़े भी होते हैं और उसमे दुल्हन के लिए एक बनारसी साड़ी आवश्यक है फिर उसकी माँ, चाची, फूफी सबके लिए कपड़े के रूप में साड़ियाँ ही दी जाती हैं उसके बाद दूसरी साड़ियाँ भी होती हैं जो पौनी (घर में काम करने वाली औरतें, प्राय: पाँच की संख्या, नाऊन, धोबन, मालन आदि) के लिए होती हैं।

ब्लंट ने भी इसका अवलोकन किया है लिखते हैं कि, "विवाह के मामले में हिंदू धर्म से मतांतरित लोगों से उत्पन्न समुदायों के रीति-रिवाज अक्सर हिंदू और मुसलमान रीति-रिवाजों का एक विचित्र मिश्रण होते हैं।[51]

चूँकि भारतीय संस्कृति में विवाह को जन्म जन्मांतर का संबंध माना गया है इसलिए देशज मुसलमानों में तलाक को बहुत ही खराब नजर से देखा जाता है और वैवाहिक जीवन को किसी भी प्रकार से निभाने पर बल दिया जाता है। इसलिए देशज मुसलमानों में तलाक की परंपरा उस तरह से आम नहीं है, यदि किसी कारण तलाक हो जाता है तो समाज में इसे खराब माना जाता है और लड़के-लड़की का तलाकशुदा होना एक दोष के रूप में देखा जाता है। इसलिए लड़का-लड़की दोनों को दूसरा जीवनसाथी मिलने में अत्यधिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

एक से अधिक पत्नी का चलन भी देशज मुसलमानों में न के बराबर मिलता है। ये भी उन पर उनके पूर्वजों की संस्कृति का असर स्पष्ट करता है। एक से अधिक पत्नी वाले पुरुष को देशज मुस्लिम समाज अच्छी नजरों से नहीं देखता, भले ही दूसरे या तीसरे विवाह का कोई उचित कारण हो।

इस्लाम में एक चौथाई ही सही, पुत्री को पिता की संपत्ति में हिस्सा मिलता है, जिसे दुख्तरी (दुख्तर=पुत्री) कहते हैं, लेकिन देशज मुसलमानों में इस्लाम के इस कानून का पालन विरले ही देखने को मिलता है और यदि किसी लड़की ने अपना दुख्तरी हिस्सा ले लिया है तो उसे समाज में अच्छा नहीं माना जाता है।

अन्नप्राशन संस्कार

बंगाल के पसमांदा मुसलमानों में आज भी हिंदू समाज की तरह अन्नप्राशन (शिशु का प्रथम अन्न ग्रहण) की परंपरा पाई जाती है। बंगाल में नौकरी के दौरान लेखक को इसका व्यक्तिगत अनुभव हुआ, हुगली जिले के एक सुदूर गाँव, जेलेपाड़ा में चिकित्सीय शिविर के दौरान जुमा के नमाज के बाद मस्जिद से बाहर निकल रहे लोगों को मिठाई बाँटी जा रही थी। पूछने पर पता चला कि मिठाई बाँटने वाले सज्जन हीरा दा के घर पर आज अन्नप्राशन संस्कार है जिसकी खुशी में नमाजियों को मिठाई बाँटी जा रही है।[52]

उपर्युक्त भूत वर्तमान के तथ्यों और अनुभवों पर आधारित विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि एक बाहरी मजहब को आध्यात्मिक रूप से स्वीकार करने के बाद भी देशज मुसलमान अपने दैनिक जीवन में अपने पूर्वजों के परंपराओं, मान्यताओं, रीति-रिवाजों और आस्थाओं के ताने-बाने से बुना हुआ है। लेकिन अशराफ मुसलमान जो मुस्लिम समाज का हर क्षेत्र में नेतृत्व करता उसकी रुचि इस्लाम के नाम पर देशज पसमांदा को उसके भारतीय सभ्यता संस्कृति से काट कर अरबीकरण/ईरानीकारण में अधिक रहती है और देशज पसमांदा के राजनैतिक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक क्षेत्रों में समुचित भागेदारी की उपेक्षा करता है।

संदर्भ-

1. गौस अंसारी, मुस्लिम कास्ट इन उत्तर प्रदेश, [1960], द एथ्नोग्रैफिक ऐंड फोक कल्चर सोसायटी, यू.पी., लखनऊ, पृ. 30
2. अशफाक हुसैन अंसारी, बेसिक प्रॉब्लम ऑफ ओबीसी मुस्लिम, (2004), सेंटर ऑफ बैकवर्ड मुस्लिम ऑफ इंडिया, गोरखपुर, पृ. 185
3. मोहन दास नैमिशराय, भारतीय दलित आंदोलन का इतिहास भाग -1, (2017), राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली पृ. 320
4. वयोवृद्ध पसमांदा कार्यकर्ता शब्बीर अंसारी एवं डॉ एजाज अली से दिनांक 05.04.2025 को बातचीत पर आधारित।
5. https://www.facebook.com/share/

p/1T3rFuu4de/ accessed on 07.04.25

6. केवड़ा,पुनपुन, पटना बिहार में साप्ताहिक चिकित्सा शिविर में वर्ष 2020 से 2021के दौरान स्वास्थ्य लाभ के लिए मुझसे मिलते थे।
7. जिन्होंने मस्जिद बनाई थी, जो भटवा की मस्जिद के नाम से आज प्रसिद्ध है https://www.facebook.com/share/p/16HagkRBKv/ accessed on 07.04.258-
8. चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता एवं पसमांदा कार्यकर्ता मुस्तकीम मल्लाह की माता जी का नाम जिन्होंने शामली जिले में 2020 के पंचायत चुनाव में भाग लिया था।
9. बाबा कबीर की पत्नी का नाम, कबीर, डॉ० राम रतन भटनागर, (1948), किताब महल, जीरो रोड इलाहाबाद, मुद्रक:गंगा दीन जायसवाल श्याम प्रिंटिंग प्रेस इलाहबाद, पृ.31
10. मेरे बचपन के दोस्त का नाम है, जो तहसील मुहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर के सामने फल की दुकान लगाते हैं।
11. ये तीनों नाम लेखक के पूर्वजों के नाम हैं।
12. लेखक के चाचा 76 वर्षीय मुनव्वर अली से दिनांक 06.04.25 को बातचीत पर आधारित (वैसे हम सब भाई बहन बचपन से ये बातें सुनते आए हैं)
13. अबुल अहद मुहम्मद नूर - एक तारीख साज शख्सियत, सैयद मतीऊर रहमान, 2003, क्राउन ऑफसेट प्रेस, पटना - 4, पृ. 17-19
14. अली अनवर, मसावात की जंग, (2001), वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. 220-221
15. https://vimarsh.org/peer-muhammad-moonis-kalam-ka-satyagrahi/, https://www.bbc.com/hindi/india-39603451 accessed on 07.04.2516.
16. सतलज इंदौरी से बातचीत के आधार पर, रात्रि 9:55, 19 मार्च 2025
17. https://hindi.idronline.org/features/padamshri-madhu-mansuri-hansmukh-ne-jharkhand-aandolan-ko-di-nai-disha/ accessed on 07.04.25
18. अली अनवर मसावात की जंग, पृ. 210
19. भारतीय दलित आंदोलन का इतिहास भाग-1), पृ. 325
20. मसूद आलम फलाही, हिंदुस्तान में जात पात और मुसलमान(उर्दू),थर्ड एडिशन (2020), अलकाजी पब्लिशर, आमिना अपार्टमेंट फोर्थ फ्लोर, शाहीन बाग, जामिया नगर, नई दिल्ली, पृ. 292,
21. इम्तियाज अहमद, अनुवादक नरेश 'नदीम', भारत के मुसलमानों में जातिव्यवस्था और सामाजिक स्तरीकरण, प्रथम हिंदी संस्करण (2003), श्यामबिहारी राय द्वारा ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली से प्रकाशित ,पृ. 156,
22. https://www.facebook.com/share/p/18uSNXQinV/ accessed on 07.04.2523-
23. नौमान किरन, क्लास स्ट्रक्चर ऐंड सोशल स्ट्रेटिफिकेशन इन अर्ली मुस्लिम इंडिया (1206-1526 ई.), (2008), जर्नल ऑफ द रिसर्च सोसायटी ऑफ पाकिस्तान, पृ. 179
24. गौस अंसारी. पृ. 52
25. विलियम्स, जे. चार्ल्स, द रिपोर्ट ऑन द सेंसस ऑफ अवध, (1869), लखनऊ अवध गवर्नमेंट प्रेस, पृ. 79-80
26. जॉर्ज, सोबिन ऐंड अडिगा, श्रीनिधि (2017), कास्ट एमंग मुस्लिम्स: एथ्नोग्राफिक अकाउंट फ्रॉम अ कर्नाटक विलेज वर्किंग पेपर सिरीज, सं. मर्चांग रेमिंगम, पृ. 7
27. इम्तियाज अहमद,भारत के मुसलमानों में जातीय व्यवस्था और सामाजिक स्तरीकरण, पृ. 145
28. वही, पृ. 146
29. वही, पृ. 148
30. वही, पृ. 157 - 158
31. गौस अंसारी, पृ. 43
32. विलियम क्रुक, द ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑफ द नॉर्थ=वेस्टर्न प्रॉविंसेज ऐंड अवध, खंड-2, कलकत्ता, (1896), पुनर्प्रकाशन कॉस्मो पब्लिकेशन दिल्ली से (1975),पृ.99
33. गौस अंसारी, पृ. 44
34. गौस अंसारी, पृ. 45
35. जॉन कोलिंसन नेसफील्ड, ब्रीफ व्यू ऑफ द कास्ट सिस्टम ऑफ द नॉर्थ-वेस्टर्न प्रॉविंसेज ऐंड अवध, 1885, इलाहाबाद, पृ. 127
36. ई.ए.एच. ब्लंट, द कास्ट सिस्टम ऑफ नॉर्दर्न इंडिया, 1969, एस.चांद एंड कंपनी, नई दिल्ली, पृ. 202
37. मोहन दास नैमिशराय, भारतीय दलित आंदोलन का इतिहास भाग -1, पृ. 324
38. गौस अंसारी, पृ. 48
39. गौस अंसारी, पृ. 51
40. हर्बर्ट होप रिस्ले, द ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑफ बंगाल: एथ्नोग्राफिक ग्लॉसरी, खंड-2, 1892, बंगाल सेक्रेटरिएट प्रेस, कलकत्ता से मुद्रित, पृ. 3-4
41. मोहन दास नैमिशराय, पृ. 324
42. ससूल गलवान, सर्वेंट ऑफ साहब, (1924), कैंब्रिज, डब्ल्यू हेफर ऐंड संस लि., पृ. 25
43. देखें 16:14, 17:50 और 19:10 मिनिट पर, https://youtube/whvKwU8QYlE?si=e1-MR3J1ht6wKegf accessed on 06.04.2025
44. https://www.aajtak.in/rajasthan/story/muslim-family-performed-rituals-in-hindu-sisters-sons-wedding-according-to-hindu-customs-in-bhilwara-lcln-dskc-2149182-2025-01-23?utm_source=atweb_story_share accessed on 05.04.2025
45. शिवराम सिंह के सुपुत्र डॉ. दिलीप कुमार सिंह से बातचीत पर आधारित। सायं 6:30, 07 अप्रैल 2025। वैसे दोनों परिवारों के बड़े बुजुर्गों से ये बात मैं बचपन से सुनता आ रहा हूँ। गाँव के लोग भी प्राय: इस बात की चर्चा करते थे। ललिता बुआ अब इस संसार में नहीं, बासुदेव फूफा लगभग 86 वर्ष के हो चुके हैं।
46. रमेश चन्द्र मिश्र से बातचीत पर आधारित 01 मार्च 2025, रात्रि 10:30
47. https://youtu.be/rhz82vP2un4?si=qZhyBaT2BdKWHmRZ accessed on 05.04.2025
48. सोनू यादव के फेस बुक पोस्ट से साभार https://www.facebook.com/share/v/181RHYDpax/Accessed on 06.04.2025
49. सहीह सुनन अबू दाऊद हदीस न० 1134, सहीह सुनन अन नसाई हदीस न० 1556, इस हदीस को इमाम अबू दाऊद और इमाम नसाई ने रिवायत किया है और इसे सहीह करार दिया गया है।
50. ई.ए.एच. ब्लंट, पृ. 202
51. वही, पृ. 201
52. ग्राम जेलेपाड़ा, बेलमुड़ी, धनियाखाली, हुगली पश्चिम बंगाल, वर्ष 2019 के दौरान प्रत्येक शुक्रवार को साप्ताहिक शिविर।

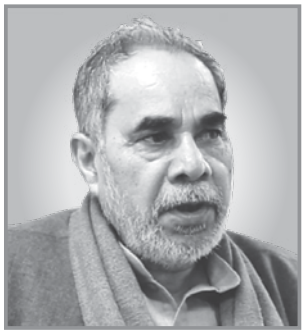

रामबहादुर राय

संविधान सभा में पृथक निर्वाचन क्षेत्र बनाम आरक्षण

सामाजिक सुधार के मामले में जिन बातों को लेकर दूसरे देशों में खून-खराबे हुए भारत की संविधान सभा ने उन्हें संवाद के जरिये सुलझा लिया और वह संवैधानिक क्रम अभी भी बना हुआ है। समाधान की दिशा में एक शोधपरक दृष्टि

संविधान के जाने-माने विशेषज्ञ फली एस. नरीमन भी लिखते हैं कि संविधान निर्माताओं ने कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को भविष्य पर छोड़ दिया। इसके उदाहरण में वे भाषा के उलझे प्रश्न का विस्तार से उल्लेख अपनी पुस्तक में करते हैं।[1] लेकिन क्या यही बात स्वतंत्र भारत के जटिल सामाजिक प्रश्नों के बारे में कही जा सकती है? इसका उत्तर संविधान में है। वह यह कि संविधान सभा ने जटिल सामाजिक प्रश्नों पर समग्रता में विचार कर उनका समाधान निकाला। वे समाधान ही संविधान के अनुच्छेदों में सूत्ररूप में वर्णित हैं। अक्सर इस बात के लिए संविधान की आलोचना की जाती है कि इसमें दुनिया के दूसरे संविधानों से शब्द, मुहावरे और विचार उधार लिए गए हैं। इसे डॉ. अंबेडकर ने भी स्वीकार किया था। उन्होंने यह भी कहा था कि इसके लिए मुझे कोई खेद नहीं है। लेकिन आज जिसे हर नागरिक को जरूर जानना चाहिए उसे एडवोकेट अभिनव चंद्रचूड़ ने रेखांकित कर लिखा है कि "संविधान सभा ने विधायिकाओं, सरकारी नौकरियों, शैक्षिक संस्थाओं में आरक्षण के लिए संविधान में जिस आधार पर कोटा के प्रावधान किए वह अनूठे प्रकार का भारतीय ढ़ंग है।"[2]

संविधान के इन प्रावधानों में जरूरत पड़ने पर संशोधन भी हुए हैं। इन्हें ध्यान में रखकर ज्यादातर संविधान विशेषज्ञों ने लिखा है कि सामाजिक सुधार का संवैधानिक क्रम इस समय भी बना हुआ है। स्वाभाविक रूप से यह विषय विमर्श में जहाँ है वहीं उस पर निरंतर शोध भी हो रहे हैं। वे दो तरह के हैं। एक का प्रकार राजनैतिक है। जिसका लक्ष्य पुनः पृथक निर्वाचन प्रणाली ले आना है। जिसके लिए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के आरक्षण पर अनर्गल प्रश्न उठाए जा रहे हैं। यह ज्वलंत प्रश्न हो गया है क्योंकि पिछले साल लोकसभा के चुनाव में इसे कांग्रेस ने एक चुनावी मुद्दा बना दिया। दुनिया के दूसरे देशों में ऐसे जटिल सामाजिक प्रश्नों पर वर्षों खून-खराबे हुए हैं। लेकिन भारत की संविधान सभा ने उसे संवाद और सहमति से सुलझा लिया। जो सुलझ गया है उसे उलझने की राजनीति के समानांतर समाधानकारक शोध के उल्लेखनीय उदाहरण भी हैं।

ऐसा ही एक शोधपूर्ण लेख है जिसका यहाँ उल्लेख करना अत्यंत प्रासंगिक है। उसके लेखक और शोधकर्ता अरविंद कुमार हैं।[3] उन्होंने संविधान सभा की कार्यवाही में गहरे उतरकर खोजा है कि पृथक निर्वाचन प्रणाली की समाप्ति एक सहमति से हुई थी। संविधान सभा के ज्यादातर अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्यों ने अपनी सहमति तब व्यक्त की थी। इसी प्रकार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण का प्रावधान सामाजिक समानता उत्पन्न करने के लक्ष्य से किया गया था। अरविंद कुमार ने अपने इस लेख में यह सिद्ध किया है कि सामाजिक भेदभाव मिटाने के लिए संविधान सभा ने जो-जो प्रावधान किए वे स्पष्ट और सुविचारित हैं। उनसे स्पष्ट अर्थ प्रकट होता है। जिसमें अतीत, वर्तमान और भविष्य का एक वृत्त बनता हुआ अनुभव किया जा सकता है। आज जिसे पुनः राजनैतिक प्रश्न बनाया जा रहा है उसका उत्तर उनके शोध प्रबंध में है। यह शोध सामाजिक श्रेणी में गिना जाएगा।

इसलिए संविधान सभा की प्रासंगिक बहस को एक नहीं, अनेक बार और बार-बार पढ़ने की जरूरत है। ऐसा जो करेगा वह संविधान सभा की इससे संबंधित बहस का पुनर्पाठ कर सकेगा।

उससे भ्रम के निवारण में सहायता मिलेगी। संविधान सभा ने शुरूआत में ही महत्त्वपूर्ण विषयों पर अध्ययन कर परामर्श देने के लिए समितियों का गठन किया था। उसमें से एक थी, अल्पसंख्यक अधिकार संबंधी परामर्श समिति। जिसके अध्यक्ष सरदार वल्लभ भाई पटेल थे। उस समिति ने अपनी रिपोर्ट संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद को सौंप दी।[4] परामर्श समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि "सबसे पहला प्रश्न जिसको कि हमने निपटाया है, पृथक चुनाव का है। हमने स्वयं अल्पसंख्यकों के लिए तथा सामूहिक रूप में देश के राजनैतिक जीवन के निमित्त इसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण समझा है। बहुत बड़े बहुमत से यह निश्चय किया है कि पृथक चुनाव विधि को अवश्य ही इस संविधान से निकाल दिया जाना चाहिए। हमारे विचार में अतीत में इस विधि ने सांप्रदायिक भेदों को इस घातक सीमा तक भड़का दिया है कि वे आज स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन की उन्नति के रास्ते में मुख्य रूकावट का साधन बने हुए हैं। देश में जो नए राजनैतिक हालात पैदा हो गए हैं, उनमें तो इन खतरों को हटाना और भी आवश्यक जान पड़ता है। इस दृष्टि को सामने रखते हुए तो पृथक चुनाव के विरूद्ध युक्तियाँ पूर्णरूपेण निश्चयात्मक प्रतीत होती हैं। अत: हम सिफारिश करते हैं कि केंद्रीय और प्रांतीय विधान सभाओं के सब चुनाव सम्मिलित चुनाव विधि से होने चाहिए।[5]

उस आधार पर सरदार वल्लभ भाई पटेल ने संविधान सभा में एक प्रस्ताव रखा। जिसे स्वीकार किया गया। इससे पृथक निर्वाचन प्रणाली समाप्त हुई। जिससे संयुक्त चुनाव प्रणाली प्रारंभ हुई। उससे पहले पृथक निर्वाचन प्रणाली थी। उसका उद्‌गम कैसे हुआ? यह जानना चाहिए। "ब्रिटिश शासन में पृथक निर्वाचन प्रणाली को सबसे पहले 1909 में लागू किया गया। इसका एक इतिहास है। आगा खान के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल वायसराय मिंटो से मिला। कहते हैं कि वायसराय की टीम ने ही आगा खां को इसके लिए तैयार किया था। उस प्रतिनिधिमंडल ने माँग की कि मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र बनाया जाना चाहिए। अंग्रेज सरकार ने यह मांग तुरंत मान ली क्योंकि उसे पृथकता का विष-बीज बोना था। 1916 में इस माँग ने अपने पंख फैलाए। कांग्रेस ने भी मुस्लिम समर्थन के लिए इस सांप्रदायिकता भरी माँग को अपना सहयोग दिया। इतिहास में इसे लखनऊ समझौते के नाम से जाना जाता है। 1932 के कम्युनल एवार्ड ने आरक्षण और पृथक निर्वाचन प्रणाली का राजमार्ग बनाया। 1935 के अधिनियम ने उसे संविधान में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। कांग्रेस ने अपने अनुभवों से सीखा और सांप्रदायिकता को समाप्त करने के लिए संवैधानिक मार्ग अपनाया।"[6]

"भारत विभाजन के बाद सलाहकार समिति में नए मुस्लिम प्रतिनिधि नियुक्त हुए। वे थे- तजामुल हुसैन और बेगम एजाज रसूल। कुछ समय पहले तक तजम्मुल हुसैन मुस्लिम लीग के उत्साही नेता थे। भारत विभाजन के बाद वे पाकिस्तान नहीं गए। यहीं रहना पसंद किया। सलाहकार समिति पर विभाजन का प्रभाव स्पष्ट था। उसकी पहली बैठक में अनेक सदस्यों ने नोटिस दिया कि अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। उनमें एक नोटिस तजम्मुल हुसैन का भी था। लेकिन डॉ. भीमराव अंबेडकर की अलग राय थी। वे आरक्षण को इस आधार पर बनाए रखना चाहते थे, क्योंकि संविधान के प्रारूप में उसे हटाया नहीं गया था। सरदार पटेल ने निर्णय सुनाया कि सलाहकार समिति पर कोई बंधन नहीं है। वह इस मामले पर पुन: विचार कर सकती है। उन्होंने यह भी कहा कि इस बारे में अल्पसंख्यक समुदाय के प्रतिनिधियों में आम राय होनी चाहिए। अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण का प्रश्न विवाद का बड़ा कारण था। मुस्लिम समुदाय में मौलाना आजाद के नेतृत्व में राष्ट्रवादी मुसलमानों ने भी माँग की थी कि आरक्षण रहना चाहिए। मौलाना हफीजुर रहमान इस समूह के प्रवक्ता थे। तजामुल हुसैन ने राष्ट्रवादी समूह की आक्रामक भाषा में आलोचना की। उन्होंने वास्तव में परोक्ष रूप से मौलाना आजाद पर हमला किया।"[7] उन्होंने कहा कि "अतीत को भूल जाएँ और सेकुलर राज्य बनाने में मदद करें।"[8] उनके इस सीधे और आक्रामक रुख से बेगम एजाज रसूल को बल मिला। उन्होंने इसे थोड़ा और विस्तार दिया। बेगम एजाज रसूल ने धारदार शब्दों में कहा कि "पाकिस्तान बन गया है। भारत में जो मुसलमान हैं, उनके हितों का तकाजा है कि वे अलग-थलग न रहें बल्कि भारत की मुख्यधारा में रहने का विचार बनाएँ। इसलिए आरक्षण की माँग को छोड़ देना बेहतर है।"[9] के.एम. मुंशी ने लिखा है कि "उस वाद-विवाद में अल्पसंख्यक अधिकार समिति के अध्यक्ष सरदार पटेल अक्सर मौन रहते थे। कभी-कभार वे वातावरण को हल्का-फुल्का करने के लिए मजाक भरी टिप्पणी करते थे।"[10] जैसे ही बेगम एजाज रसूल का भाषण समाप्त हुआ कि सरदार ने कहा कि "मुस्लिम समुदाय के प्रतिनिधियों में अभी भी दो तरह के मत हैं। इसलिए आम सहमति बनाने के लिए उन्हें हमें थोड़ा समय देना चाहिए। तब तक हमें इंतजार करना चाहिए।"[11]

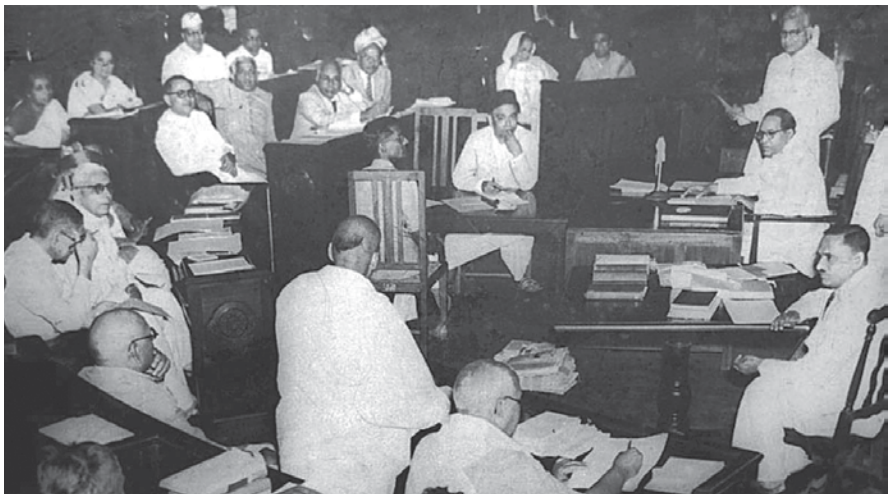

साभार : *https://akm-img-a-in.tosshub.com/sites/lallantop/wp-content/uploads/2021/03/constitution-assembly-b-r-ambedkar_250321-121204.jpg*

इस तरह अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण का विषय विचारार्थ बना रहा। 11 मई, 1949 को पुनः यह विषय परामर्श समिति के सामने आया। वह कठिन समय था। उस बैठक में राष्ट्रवादी मुसलमानों के प्रतिनिधि मौन थे। के.एम. मुंशी ने लिखा है कि "मुझे बाद में पता चला कि मौलाना आजाद ने उन्हें निर्देश दिया था कि आरक्षण का आग्रह नहीं करना है।"[12] तजम्मुल हुसैन एक प्रतिनिधि मंडल में विदेश गए थे। बेगम एजाज रसूल इस अंदेशे में हिम्मतपस्त थीं कि राष्ट्रवादी मुस्लिम समुदाय उन पर हमलावर हो सकता है, इसलिए वे बोलने से कतरा रही थीं। इस कारण संयुक्त चुनाव क्षेत्र के लिए कोई बोलने वाला नहीं था। तब सरदार पटेल ने के.एम. मुंशी की तरफ देखा। वे बेगम एजाज रसूल की बगल वाली सीट पर बैठे थे। उन्होंने बेगम को धीरे से कहा कि "सरदार चाहते हैं कि आप बोलें।"[13] उन्होंने साहस जुटाया और वे बोलीं। उन्होंने कहा कि "मुस्लिम आरक्षण को समाप्त करना चाहिए। विभाजन के बाद जो मुसलमान यहाँ रह गए हैं वे राष्ट्र के अभिन्न अंग हैं। उन्हें अब सकारात्मक भूमिका निभानी चाहिए।"[14] इतना सुनना था कि सरदार पटेल बोल पड़े कि "मुझे प्रसन्नता है कि मुस्लिम समुदाय ने संयुक्त चुनाव क्षेत्र के लिए आम सहमति प्रकट की है।"[15]

के.एम. मुंशी ने लिखा है कि उसके बाद परामर्श समिति की बैठक स्थगित हो गई। वह बैठक 30 दिसंबर, 1948 को हुई थी। उसके बाद 11 मई, 1949 की बैठक में एच.सी. मुखर्जी ने प्रस्ताव रखा कि "अल्पसंख्यकों के लिए कोई आरक्षण नहीं होना चाहिए।"[16] वह प्रस्ताव तीन के मुकाबले 58 मतों से पारित हुआ। उसके बाद सरदार पटेल ने 25 मई, 1949 को संविधान सभा में दो प्रस्ताव रखे। पहला प्रस्ताव मुस्लिम आरक्षण को समाप्त करने के लिए था। दूसरा प्रस्ताव था कि पूर्वी पंजाब की निम्नलिखित जातियों को अर्थात मजहबी, रामदासी, कबीरपंथी, और सिकलीगरों को प्रांत की अनुसूचित जातियों की तालिका में शामिल किया जाए, ताकि ये भी विधानमंडलों में अनुसूचित जातियों को दिए गए प्रतिनिधित्व के लाभ के अधिकारी हो सकें।[17]

इन दोनों प्रस्तावों को संविधान सभा ने स्वीकार किया। इससे अंग्रेजों की विभाजक नीति का अंत हुआ। संविधान सभा की कार्यवाही में यह तारीख है, 26 मई, 1949 की। ऐसा बिलकुल नहीं था कि संविधान सभा में इस पर बहस न हुई हो। दो दिनों की जबर्दस्त बहस हुई। मुस्लिम लीग के सदस्य मोहम्मद इस्माइल साहब ने विरोध में एक संशोधन प्रस्ताव रखा था। इसी कारण बहस हुई। मोहम्मद इस्माइल साहब ने अपने संशोधन के पक्ष में लंबा भाषण दिया। उनके लंबे भाषण की प्रतिक्रिया भी हुई। अनेक सदस्यों ने अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद से पूछा कि उनके भाषण की कोई समयसीमा है या नहीं। विरोध का यह संसदीय तरीका था। मोहम्मद इस्माइल साहब मद्रास से आते थे। मुस्लिम लीग के सदस्य थे। वहीं से एस. नागप्पा भी थे। उन्होंने अपने भाषण में अल्पसंख्यकों के अधिकार की कमेटी के अध्यक्ष सरदार पटेल और अन्य सदस्यों को बधाई दी। कहा कि "अंग्रेजों ने दो शताब्दियों में जिसे समस्या बनाया, उसका सरदार ने दो वर्ष में समाधान कर दिया। अंग्रेजों ने फूट फैलाई थी। कमेटी ने एकता का सूत्र दिया।"[18]

उस बहस में डॉ. एच.सी. मुखर्जी ने अपनी बात रखी। वे ईसाई समुदाय से आते थे। उन्होंने अपने भाषण में कहा कि हमें सरदार पटेल के प्रस्ताव पर स्वयं से दो प्रश्न पूछने चाहिए। "पहला यह कि जब हम कहते हैं कि हम एक असांप्रदायिक राज्य स्थापित करना चाहते हैं तो क्या हम इस बारे में सच्चे हैं? दूसरा प्रश्न यह है कि क्या हम एक ही राष्ट्र चाहते हैं? इनका एक ही उत्तर है कि हम धर्म के आधार पर अल्पसंख्यकों को राजनैतिक आरक्षण की मान्यता नहीं दे सकते।"[19] बेगम एजाज रसूल ने भी अपने भाषण में कहा कि "मैं सरदार पटेल के प्रस्ताव का समर्थन करती हूँ। मोहम्मद इस्माइल साहब के संशोधन का सार यह है कि पृथक निर्वाचक प्रणाली को रहने दिया जाए। मुझे यह अर्थहीन लगता है।[20]

संविधान के 75 साल पूरा होने पर अनेक विश्लेषणात्मक लेख लिखे गए हैं। हर लेख में लेखक का अपना अभिमत भी रहता ही है। इस तरह के लेखों से एक विमर्श उत्पन्न होता है। ऐसा ही एक लेख रोहन जे. अलवा का है। वे लिखते हैं कि "एक साधारण अनुबंध का प्रारूप बनाना कई बार बहुत जटिल हो जाता है। जरा सोचिए कि नव स्वतंत्र राष्ट्र का संविधान बनाना उस समय कितना कठिन रहा होगा क्योंकि परिस्थितियाँ अत्यंत जटिल थी। फिर भी संविधान बना और वह समय की शिला पर अपनी अमिट उपस्थिति शानदार ढंग से बनाए हुए है। वह दिनोदिन अधिक प्रकाशवान और शक्तिशाली हो रहा है।"[21] आरक्षण के प्रश्न का समाधान संविधान निर्माताओं ने जिस कुशलता से किया, वह तब सुस्पष्ट होता जाता है जब उसे पृथक निर्वाचन क्षेत्र की विभाजक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखा जाए। आरक्षण के मुख्यतः दो रूप हैं। राजनैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक।

इन तीनों पहलुओं को आज के संदर्भ में जाँचने-परखने के लिए भी संविधान सभा की उस बहस का पुनर्पाठ जरूरी है। जिससे यह जानना संभव है कि उस समय की परिस्थितियाँ क्या थी? संविधान सभा ने उस पर किस तरह विचार किया? क्यों आरक्षण की सूची में नए समूह को जोड़ने की माँग उठती रहती है? इन प्रश्नों के संदर्भ में राष्ट्रपति आदेश-1950 की सूची पर भी ध्यान देना जरूरी है। यह सच है कि आरक्षण का दायरा बढ़ा है। जो 1950 में था उसका विस्तार हुआ है। नवीतम विस्तार 2019 में हुआ। जिससे आर्थिक आधार पर आरक्षण का एक प्रावधान हुआ। मूल संविधान में सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ेपन के लिए आरक्षण का प्रावधान था। जो अब महिला, अनुसूचित, अनसूचित जनजाति के अलावा ओबीसी और ई.डब्ल्यू.एस. (आर्थिक रूप से पिछड़ों की श्रेणी) के लिए भी आरक्षण का प्रावधान हो गया है। यह सरकारी नौकरियों, शिक्षा और विधायिकाओं में लागू है। इसे समय-समय पर चुनौती भी दी जाती रही है। संविधान के अनुच्छेद-15 और 16 के आधार पर एक जनहित याचिका सुप्रीम कोर्ट में दायर की गई कि यह आरक्षण भेदभाव मूलक है। क्योंकि ये प्रावधान धर्म, जाति, लिंग और जन्म के आधार पर भेदभाव को असंवैधानिक ठहराते हैं। सुप्रीम कोर्ट ने सुनवाई की। उसने बहुमत के फैसले से संविधान संशोधन को उचित ठहराया। यह आरक्षण की कड़ी में नया अध्याय है। इससे फिर बहस बढ़ी। उसके केंद्र में

अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण का विषय है। तर्क यह है कि दलित मुस्लिम और ईसाई भी इस आरक्षण के हकदार हैं। उन्हें यह अवसर मिलना चाहिए।

इससे भारत की जटिल सामाजिक परिस्थितियों में किसे वंचित माना जाए और कौन है जो आरक्षण के अवसर से वंचित रह गए हैं इस पर पुनः नई बहस शुरू हो गई। इसमें मूल प्रश्न आज जो है वह यह है कि समाज के सबसे निचले पायदान पर कौन-कौन रह गए हैं? यह ऐतिहासिक बहस की नई कड़ी है। संविधान सभा ने आरक्षण के लिए जो सिद्धांत निर्धारित किए वे आज भी जस के तस हैं। वे हैं, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकता, विकास, पंथनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय। इसी आधार पर संविधान सभा ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को आरक्षण दिया। पृथक निर्वाचन प्रणाली को संविधान सभा ने समाप्त किया। मंडल आयोग की संस्तुतियों के आधार पर जो आरक्षण की नई व्यवस्था हुई उसमें अल्पसंख्यकों में पिछड़े को पिछड़े वर्ग और अनुसूचित जाति के लोगों को आरक्षण मिला है। इसे बहस के कोने में छिपा दिया जाता है।

अयोध्या आंदोलन से उत्पन्न प्रखर राष्ट्रीयता की लहर में आरक्षण का प्रश्न पुनः नए रूप में गहन चर्चा का विषय है। इसे वे उठा रहे हैं जो भारत की विविधता को फिर से विभिन्नता में परिवर्तित करना चाहते हैं। ऐसे विवाद के जनक यूरोप और अमेरिका में हैं। उनका अनुसरण उनके भारत के हमराही करते रहते हैं। उनका एक तर्क प्रश्न के रूप में है कि क्या संविधान सभा ने आरक्षण को धर्मसापेक्ष श्रेणी में रखा था? इस पर दो मत हैं। संसदीय राजनीति की दलीय व्यवस्था जिस तर्क से संचालित होती है उसमें वोट का गुणा-भाग प्रमुख होता है। उससे ही सत्ता पाने और न पाने का गणित निर्धारित होता है। उसी के हिसाब-किताब से यूपीए सरकार ने पहले सच्चर कमेटी बनाई। उसे हर प्रश्न की छानबीन करनी थी। सच्चर कमेटी ने छानबीन कम की और अपने नियोक्ता का ध्यान ज्यादा रखा। उसकी रिपोर्ट पर हवा गर्म हो गई। इतनी कि भारत सरकार ही उसमें पिघल गई। सच्चर समिति की सिफारिश अगर लागू होती तो पुनः पृथक निर्वाचन प्रणाली के लिए राह बन जाती। प्रश्न है कि क्या ऐसा वास्तव में जरूरत है? क्या इसका औचित्य है?

क्या होगा अगर ईसाई और मुस्लिम समुदाय को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के आरक्षण का अवसर दे दिया जाता है? पहली बात तो यह कि वे दूसरी श्रेणी के आरक्षणों में अवसर प्राप्त कर रहे हैं। दूसरी ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात है कि वे अनुसूचित जाति की श्रेणी में कहीं से नहीं आते। फिर भी क्यों यह माँग की जाती है। इसकी शुरुआत कैसे हुई? यह बिना जाने वगैर समस्या को समझना असंभव है। ईसाई संगठनों ने सबसे पहले यह माँग लिख-पढ़कर उछाली। आल इंडिया क्रिश्चियन काउंसिल और कैथोलिक बिशप कॉन्फ्रेंस ने यह माँग उठाई। यह माँग पुरानी है जिसे वामपंथी बुद्धिजीवियों ने अयोध्या आंदोलन के दिनों में लपक लिया। दिमागी नकल की यह नई मिसाल है। इससे एक ही तर्क वे रख सके कि सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ापन को आधार बनाया जाए न कि धर्म को। वे समझते हैं कि इससे धरती का एक टुकड़ा अपने लिए मुस्लिम समाज और ईसाई समाज में वे सुरक्षित रख सकेंगे।

इस आधार पर पसमांदा मुसलमानों और दलित ईसाइयों के लिए अनुसूचित जाति के आरक्षण में कोटा निर्धारित करने की माँग जोर-शोर से उठाई जा रही है। लेकिन इस माँग का मुस्लिम समाज का परंपरागत नेतृत्व विरोध कर रहा है। वह भयाक्रांत है। उसका वर्चस्व खतरे में है। यह एक बात है। लेकिन दूसरी बात यह है कि क्या यह माँग उचित है? अपने राजनैतिक हितों को साधने के लिए 2004 में यूपीए सरकार ने भाषाई और धार्मिक अल्पसंख्यक आयोग बनाया। वह रंगनाथ मिश्र आयोग था। वह बहुरंगा नहीं था। एकरंगा था। संविधान के अनुच्छेद-338 के अधीन अनुसूचित जाति आयोग कार्य कर रहा है। उस आयोग ने 2001 में पसमांदा मुस्लिम और दलित ईसाइयों के आरक्षण की माँग को सप्रमाण ठुकरा दिया था। फिर भी मिश्र आयोग का गठन क्या उचित था? उसकी संस्तुतियों से नए विवाद को आधारभूमि मिली। विवाद में आए राष्ट्रपति आदेश-1950, 1956, 1990 आदि। इन पर तरह-तरह के प्रश्न खड़े किए जा रहे हैं। यह एक यथार्थ है कि अनुसूचित जाति का दर्जा पाने से अवसरों के दरवाजे खुद-ब-खुद खुलते जाते हैं। जिन्हें यह अवसर प्राप्त होता है उनकी उन्नति होती जाती है। यह भी एक बड़ा कारण है कि अनुसूचित जाति श्रेणी में आने के लिए वे सभी लालायित हैं जो अवसरों से स्वयं को वंचित समझते हैं। ऐसे वातावरण में उनके नए-नए बौद्धिक प्रवक्ता बन गए हैं। जहाँ तक पसमांदा मुसलमानों और दलित ईसाइयों का प्रश्न है तो वे अनुसूचित जाति में आने के लिए उतने लालायित नहीं हैं जितने कि वे सामाजिक समानता के लिए अपने मजहब में आवाज उठा रहे हैं। वह

अयोध्या आंदोलन से उत्पन्न प्रखर राष्ट्रीयता की लहर में आरक्षण का प्रश्न पुनः नए रूप में गहन चर्चा का विषय है। इसे वे उठा रहे हैं जो भारत की विविधता को फिर से विभिन्नता में परिवर्तित करना चाहते हैं। ऐसे विवाद के जनक यूरोप और अमेरिका में हैं। उनका अनुसरण उनके भारत के हमराही करते रहते हैं। उनका एक तर्क प्रश्न के रूप में है कि क्या संविधान सभा ने आरक्षण को धर्मसापेक्ष श्रेणी में रखा था? इस पर दो मत हैं। संसदीय राजनीति की दलीय व्यवस्था जिस तर्क से संचालित होती है उसमें वोट का गुणा-भाग प्रमुख होता है। उससे ही सत्ता पाने और न पाने का गणित निर्धारित होता है। उसी के हिसाब-किताब से यूपीए सरकार ने पहले सच्चर कमेटी बनाई। उसे हर प्रश्न की छानबीन करनी थी। सच्चर कमेटी ने छानबीन कम की और अपने नियोक्ता का ध्यान ज्यादा रखा

आवाज नक्कारखाने में तूती की नहीं रह गई है। दूर तक सुनाई पड़ रही है। ऐसी तमाम आवाजें आज हैं। वे एक सामाजिक मंथन का रूप ले चुकी हैं। संविधान के 75 वर्ष पूरे होने पर इसे उपलब्धि माने या प्रश्नों का पिटारा! पसमांदा मुसलमान और दलित ईसाई में यह मंथन इस समय सामाजिक और सांस्कृतिक ज्यादा है। इसकी राजनैतिक दिशा अस्पष्ट और भविष्य के गर्भ में है।

संविधान निर्माताओं ने सामाजिक समानता के जिस सिद्धांत की संविधान में स्थापना की और उसके लिए समुचित प्रावधान किए, वह अपनी बुनावट में अक्षुण्ण है। उसमें भारतीयता की भावभूमि है। वह समय के प्रवाह में गतिमान है। उसका समसामयिक विकास भी होता जा रहा है। जड़ता और गति का अंतर इन प्रावधानों में दिखता है। जो नहीं दिखता वह आरक्षण का गतिशास्त्र है। उसे अनुभव करना पड़ता है। फिर भी जो लोग उस सामाजिक समानता के सुनिश्चित सिद्धांत को समझ नहीं पाते वे प्रश्न उठाते रहते हैं। ऐसे अवसर पर यह बार-बार याद दिलाना जरूरी हो जाता है कि संविधान सभा ने इस प्रश्न को किस तरह देखा और उसका निराकरण कैसे किया। यह जानने के लिए वियाबान में भटकने की जरूरत नहीं है। किसी मृगमरीचिका के व्यामोह में पड़े बगैर इसे पढ़कर जाना जा सकता है, क्योंकि संविधान सभा में बोला गया हर शब्द लिखित रूप में उपलब्ध है।

उन शब्दों के अनुसरण और उनमें अवगाहन से अर्थ प्रकट होने लगता है। सिर्फ शर्त एक ही है। वह यह कि खुले मन से उसे पढ़ें। उसे समझें। प्रयास करें कि जिस महापुरुष के बोल को पढ़ें, उनकी भावनाओं और भंगिमाओं को अपने मन में उतारते जाएँ। अगर इस प्रक्रिया से उन्हें पढ़ा गया तो प्रकट वही होगा जो शब्द अपने को अभिव्यक्त करेगा। ऐसा करते हुए कोई भी यह समझ सकेगा कि संविधान सभा में आम सहमति सी थी कि अनुसूचित जाति और जनजाति को आरक्षण दिया जाना चाहिए। जिससे वे सामाजिक विभेद की ऊँची दीवार को पार करने की ऊर्जा से स्वयं को भर सके। स्वाधीनता संग्राम में यह एक बड़ा प्रश्न भी था। उसे हल करने का अवसर संविधान सभा में उपस्थित हुआ। स्वतंत्र भारत ने इसे उपलब्ध कराया। संविधान सभा उस अवसर का सदुपयोग कर रही थी। जो असहमत थे वे सहमत हुए। समय ने उन्हें समझाया। जो विरोध में थे वे अविरोधी बने। इस तरह अनेक चक्रव्यूह को भेदते हुए संविधान सभा ने सर्वानुमति से निर्णय किया कि संविधान के लागू होते ही राष्ट्रपति एक सूची जारी करेंगे। वह अधिसूचना के रूप में होगी। उस अधिसूचना में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की सूची होगी।

यहाँ यह अवश्य याद रखना चाहिए कि संविधान का जो प्रारूप संविधान सभा में प्रस्तुत किया गया था उसमें अनुसूचित और अनुसूचित जनजाति की लंबी सूची थी। उस सूची का आधार वर्णित था। उसकी परिभाषा भी दी गई थी। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने 16 सितंबर, 1949 को संविधान सभा के समक्ष यह प्रस्ताव रखा, "आरंभ में हमने संविधान में दो भाग रखने का प्रस्ताव किया था जिनमें कुछ समुदाय अनुसूचित जातियों के रूप में परिगणित किए गए थे और कुछ समुदाय अनुसूचित आदिम जातियों के रूप में परिगणित किए गए थे। अब हम इन दो भागों को निकालने का प्रस्ताव रख रहे हैं। हमने यह विचार किया कि इनके फलस्वरूप संविधान पर बहुत भार पड़ जाएगा और अच्छा यह होगा कि इस उद्देश्य की पूर्ति राष्ट्रपति के आदेश द्वारा की जाए। इस समय हमारा प्रस्ताव यही है। इस दशा में, मेरे विचार से, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों की परिभाषा संबंधी खंड संविधान के किसी अन्य भाग में रखने होंगे और उन्हें एक अनुच्छेद में ही स्थान देना होगा जिसमें यह कहा जाएगा कि राष्ट्रपति इसकी परिभाषा करेगा कि अनुसूचित जातियाँ कौन हैं और अनुसूचित आदिम जातियाँ कौन हैं।"[22] वी. आई. मुनिस्वामी पिल्लै ने तत्क्षण इसका समर्थन किया। संविधान सभा के अध्यक्ष ने घोशणा की कि इस पर सदन में सहमति है। इस तरह डॉ. भीमराव अंबेडकर का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अब बारी थी, अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए आरक्षण पर विचार की। यह विषय 17 सितंबर, 1949 को विचार के लिए संविधान सभा में आया। उस समय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की परिभाषा का प्रश्न बड़ा था। वह आज भी उठता रहता है। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इसकी प्रक्रिया बताई कि जिस राज्य की सूची बनाई जाएगी उस पर राष्ट्रपति राज्यपाल से परामर्श करेंगे। जो सूची अधिसूचित होगी अगर उसमें संशोधन किया जाता है तो वह संसद करेगी। जहाँ तक परिभाषा का प्रश्न है, उसे वी. आई. मुनिस्वामी पिल्लै ने अपने भाषण में स्पष्ट किया। उन्होंने कहा, "राष्ट्रपति 26 जनवरी, 1950 को ऐसी जातियों की सूची प्रकाशित करेंगे जो अनुसूचित जातियों की श्रेणी में आती हैं। किंतु मैं इस सदन को उस पृष्ठभूमि से अवगत कराना चाहता हूँ जिससे 'अनुसूचित जातियाँ' बनी। हिंदू जाति में युगों से अस्पृश्यता का सामाजिक दोष प्रचलित है उसी से सरकार और जनता को पता लगा कि कुछ ऐसे लोगों का वर्ग है जो हिंदुओं की श्रेणी में आता है और फिर भी उन्हें हिंदुओं के समाज के बाहर रखा जाता है। 1916 में सरकार ने देखा कि अछूत लोगों के लिए कुछ करना है (जब वे अछूत वर्ग कहते थे तो उनका सदा आशय हिंदुओं से होता था) और उन्हें मान्यता देनी है। मद्रास में छः जातियाँ थीं जो इस वर्गीकरण में आती थीं। मौन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों में उनकी संख्या 10 कर दी गई थी। 1930 में जब महात्मा गांधी का प्रसिद्ध अनशन आरंभ हुआ, केवल तभी देश को पता लगा कि असली अछूत वर्ग कौन हैं। और 1935 के अधिनियम में, सरकार ने सब चीज पर पूरी तरह विचार किया और जहाँ तक मद्रास प्रांत का संबंध है, उन्होंने इस सूची अथवा श्रेणी में 86 जातियाँ रख दीं, यद्यपि उनमें कुछ सवर्ण जातियाँ भी थीं। अब अधिक विचार के पश्चात प्रांतीय सरकार ने एक सूची बनाई है और मेरे विचार में संशोधन के प्रस्तावक के सुझावों के अनुसार, वे सब जातियाँ जो अछूतों की श्रेणी में आती हैं और जो हिंदू धर्म की अनुयायी हैं अनुसूचित जातियाँ होंगी, क्योंकि मैं धर्म पर बल देना चाहता हूँ। मैं इस पर इसलिए बल देता हूँ कि हाल ही में इधर-उधर कुछ आंदोलन हुए हैं, कई लोग हिंदू धर्म तथा अनुसूचित जाति को छोड़ चुके हैं और दूसरे धर्मों को स्वीकार कर चुके हैं और वे भी अनुसूचित जाति होने का

दावा करते हैं। इन धर्मांतरितों को सरकार कोई रियासत दे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है, पर मेरे बहुत प्रबल विचार हैं कि इन्हें अनुसूचित जातियों में नहीं रखना चाहिए।"[23]

"मैं मसौदा समिति का तथा उस समिति के सभापति का भी अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने इसके दूसरे भाग को बहुत स्पष्ट कर दिया है कि भविष्य में एक बार राष्ट्रपति यह घोषणा कर देंगे कि कौन अनुसूचित जातियाँ होंगी, तत्पश्चात यदि अनुसूचित जातियों की सूची में किसी जाति को समाविष्ट करने या उसमें से किसी जाति को निकालने की आवश्यकता होगी तो वह संसद की आज्ञा से ही हो सकेगा। इस खंड के लिए मैं उनका अनुगृहीत हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ, कि वास्तव में, जब हरिजन स्वतंत्र रूप से व्यवहार करते हैं या अपने अधिकारों की माँग करते हैं तो कुछ प्रांतों के मंत्री केवल उन सदस्यों के विरूद्ध ही कार्यवाही नहीं करते वरन उस व्यक्ति की जाति के भी विरूद्ध हो जाते हैं; और इस प्रकार केवल वही व्यक्ति नहीं, वरन उस अनुसूचित जाति के सब लोग भी तंग किए जाते हैं। मेरे विचार में इस उपबंध से यह जोखिम दूर हो जाती है।"[24]

इस ऊपर लिखित उद्धरण में तीन बातें हैं। पहली कि अनुसूचित जाति के लिए आरक्षण क्यों जरूरी है। दूसरी कि यह मात्र एक प्रशासनिक और वैधानिक प्रश्न ही नहीं है, इसका संबंध इतिहास के उन पन्नों से है जो हिंदू समाज में अछूत की हालत को बनाने के लिए जिम्मेदार हैं। इसलिए स्वतंत्र भारत में उन उपायों को संवैधानिक दर्जा देना जरूरी है जो अछूतों को समान सामाजिक सम्मान दिला सके। तीसरी यह कि यह हिंदू धर्म और समाज की अपनी समस्या है। जिसका समाधान इस उपाय में है। लेकिन जो हिंदू धर्म छोड़ चुके हैं और वे अनुसूचित जाति का अपना दर्जा खो चुके हैं, वे अनुसूचित जाति होने का दावा नहीं कर सकते। फिर भी सरकार उन्हें कोई रियायत देती है तो उसकी श्रेणी अलग होगी। याद करें कि वी.आई. मुनिस्वामी पिल्लै पूना पैक्ट संभव बनाने वालों में एक थे और हस्ताक्षरकर्ता भी थे। संविधान सभा में वे महात्मा गांधी के प्रतिनिधियों में भी एक थे।

संविधान सभा में जब उस प्रारूप पर चर्चा प्रारंभ हुई तो अल्पसंख्यक प्रावधानों की भी आलोचना की जा रही थी। इसका कारण भारत विभाजन से बनी मानसिकता और परिस्थितियाँ थीं। फिर भी अल्पसंख्यक अधिकार समिति के सुझावों को प्रारूप में शामिल कर लिया गया था। वह भारतीयता के अनुरूप ही था। उससे ही शासन प्रणाली में पंथनिरपेक्षता का समावेश हुआ। यह असाधारण भविष्य दृष्टि का एक प्रमाण भी है जिसमें डॉ. भीमराव अंबेडकर अपने उत्तर में देते हैं। वही सम्यक समाधान भी है। उन्होंने कहा, "प्रारूप समिति की इसलिए भी आलोचना की गई है क्योंकि यह अल्पसंख्यकों को संरक्षण प्रदान करता है

वी. आई. मुनिस्वामी पिल्लै ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की परिभाषा निर्धारित करने का एक स्पष्ट आधार संविधान सभा में प्रस्तुत किया। वह ऐतिहासिक और सामाजिक था। उसे स्वीकार किया गया। संविधान सभा के समक्ष दो प्रश्न थे। पहला, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण। दूसरा, पृथक निर्वाचन प्रणाली का समाधान। पृथक निर्वाचन प्रणाली का संबंध अल्पसंख्यक समुदाय के अधिकार से भी था। लेकिन यह अकेला विषय नहीं था। इससे संबंधित कई विषय परस्पर संबद्ध थे। इसलिए संविधान सभा ने समग्रता में विचार के लिए एक अल्पसंख्यक अधिकार समिति बनाई। जिसके अध्यक्ष सरदार वल्लभ भाई पटेल थे। यह समिति 24 जनवरी, 1947 को बनी। जिसने अपनी रिपोर्ट 27 अगस्त, 1947 को दे दी। इस रिपोर्ट के आधार पर प्रारूप संविधान में अल्पसंख्यक समुदाय के हितों के लिए समुचित प्रावधान किए गए।

संविधान सभा में जब उस प्रारूप पर चर्चा प्रारंभ हुई तो अल्पसंख्यक प्रावधानों की भी आलोचना की जा रही थी। इसका कारण भारत विभाजन से बनी मानसिकता और परिस्थितियाँ थीं। फिर भी अल्पसंख्यक अधिकार समिति के सुझावों को प्रारूप में शामिल कर लिया गया था। वह भारतीयता के अनुरूप ही था। उससे ही शासन प्रणाली में पंथनिरपेक्षता का समावेश हुआ। यह असाधारण भविष्य दृष्टि का एक प्रमाण भी है जिसमें डॉ. भीमराव अंबेडकर अपने उत्तर में देते हैं। वही सम्यक समाधान भी है।

उन्होंने कहा, "प्रारूप समिति की इसलिए भी आलोचना की गई है क्योंकि यह अल्पसंख्यकों को संरक्षण प्रदान करता है।... व्यक्तिगत रूप से मुझे कोई संदेह नहीं है कि अल्पसंख्यकों के लिए संरक्षण की व्यवस्था करके संविधान सभा ने बुद्धिमानी का काम किया है। इस देश में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों ने गलत रास्ता अपनाया है। बहुसंख्यक वर्ग की यह गलती है कि उसने अल्पसंख्यक वर्ग का अस्तित्व नहीं स्वीकार किया, और इसी प्रकार अल्पसंख्यक वर्ग की यह गलती है कि उसने अपने को सदा के लिए अल्पसंख्यक बनाए रखा। अब एक ऐसा मार्ग निकालना ही होगा जिससे ये दोनों गलतियाँ दूर हों। मार्ग ऐसा होना चाहिए जो अल्पसंख्यकों का अस्तित्व मान कर इस संबंध में आगे बढ़े। और साथ ही मार्ग ऐसा भी हो जिससे कि एक दिन अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों ही वर्ग आपस में मिलजुल कर एक हो जाएँ। इस संबंध में संविधान सभा ने जो उपाय रखा है वह निस्संदेह अभिनंदनीय है, क्योंकि इससे हमारे उपरोक्त दोनों ही उद्देश्य सिद्ध हो जाते हैं।"[25] डॉ. अंबेडकर ने अपने कथन में अल्पसंख्यक शब्द का उपयोग किया है। वैसे तो अल्पसंख्यक के दायरे में वे आते हैं, जो हिंदू नहीं हैं। उस समय जो परिस्थिति थी उसमें अल्पसंख्यक से आशय मुसलमान समुदाय से था।

भारत विभाजन ने देश को हिंदू मुसलमान में बाँट दिया। यह विभाजन बनावटी, राजनैतिक और विदेशी हाथ का गढ़ा हुआ था, लेकिन वह हो सका क्योंकि वैसी विषम परिस्थिति में स्वतंत्रता के दीपक को बुझने

से बचाना जो था। संविधान सभा का मुख्य दायित्व यही था कि वह स्वतंत्र भारत में स्वराज के लिए संविधान बनाए। इस दृष्टि से संविधान सभा को एक चुनौती स्वीकार करनी थी। अंग्रेजी शासन के प्रारब्ध से प्राप्त उसे दो अभिशाप मिटाने थे। एक, हिंदू समाज में सामाजिक असमानता को दूर करना था। दो, अंग्रेजी भारत के विभाजक चिह्न भी उसे मिटा देना था। वह था, पृथक निर्वाचन क्षेत्र की रचना। इसी भावना से पृथक निर्वाचन प्रणाली को समाप्त करने में संविधान सभा के ज्यादातर मुस्लिम सदस्यों ने भी सहयोग दिया। इसे सरदार पटेल के भाषण से पूरे संदर्भ सहित पढ़ा जा सकता है।

सरदार पटेल ने यह भाषण सरदार हुकम सिंह के आरोपों के उत्तर में दिया। लेकिन इसमें वह विवरण और तथ्य है जो सिद्ध करता है कि मुस्लिम सदस्यों ने ही नहीं, अल्पसंख्यक समुदाय के प्रतिनिधियों ने आरक्षण की व्यवस्था को अपनी ओर से समाप्त कराया था। जिससे अल्पसंख्यकों के लिए नौकरियों में आरक्षण और पृथक निर्वाचन प्रणाली समाप्त हो सकी। सरदार पटेल ने बताया कि "जब अल्पसंख्यक समिति का मुझे सभापति नियुक्त किया गया था तब मैं सभी अल्पसंख्यक वर्गों को साथ लेकर चला था। अल्पसंख्यक समिति और मंत्रणा समिति के निर्णय प्राय: सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए थे। इन समितियों के कामों की इस सभा ने सराहना की थी। इसके लिए मुझे धन्यवाद दिया था।...महान देशभक्त ईसाई नेता एच.सी. मुखर्जी के नेतृत्व में यह प्रस्ताव पास किया कि आरक्षण की व्यवस्था को वे समाप्त कर देना चाहते हैं। किस आरक्षण को समाप्त करने का प्रस्ताव उन्होंने पास किया था? न सिर्फ नौकरियों में स्थान आरक्षण की क्षुद्र व्यवस्था को बल्कि विधानसभाओं के लिए भी स्थान आरक्षण की जो बड़ी व्यवस्था थी उसको भी वह नहीं रखना चाहते थे। संसद और प्रांतीय विधानसभाओं में भी वे आरक्षण नहीं चाहते।"[26]

सरदार वल्लभ भाई पटेल ने 27 अगस्त, 1947 को संविधान सभा में एक प्रस्ताव रखा-'केंद्रीय और प्रांतीय विधान सभाओं के सब चुनाव संयुक्त विधि से होंगे।'[27] इससे पृथक निर्वाचन प्रणाली समाप्त हुई। लेकिन उसे कार्यरूप देने के लिए संविधान सभा ने इस प्रस्ताव को भी पारित किया, "अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण की पद्धति को समाप्त कर दिया जाए।"[28] इससे ही अंग्रेजों के जमाने से चली आ रही पृथक चुनाव प्रणाली का अंत हुआ और आरक्षण की भी नई व्यवस्था बनी। सरदार पटेल का कहना था कि "यह निर्णय अल्पसंख्यकों के विचारों से बहुमत के विचारों के समन्वय का परिणाम है।"[29] वह निर्णय एच.सी. मुखर्जी के प्रस्ताव से हुआ। उन्होंने प्रस्ताव किया था कि "अल्पसंख्यकों के लिए कोई आरक्षण की आवश्यकता नहीं है।"[30] इस तरह संयुक्त निर्वाचन प्रणाली प्रारंभ करने का निर्णय हुआ। संविधान के लागू होने पर 1952 से यह प्रणाली कार्यरत है।

संदर्भ-

1. यू मस्ट नो योर कांस्टीट्यूशन, फली एस. नरीमन, अध्याय-2, हाउ इंडिया'ज कांस्टीट्यूशन आलमोस्ट नेवर गाट फाइनलाइज्ड, पृ. 65-67
2. आवर्स टू कीप, ह्वाई इंडिया'ज कांस्टीट्यूशन थ्राइव्स आफ्टर 75 ईयर्स ऑफ स्क्रुटिनी, इंडियन एक्सप्रेस, आइडिया पेज, 5 फरवरी, 2025
3. एक्सक्लूजन ऑफ पसमांदा मुस्लिम्स एंड दलित क्रिश्चियन्स फ्रॉम द शिड्यूल्ड कास्ट कोटा, साउथ एशिया रिसर्च, खंड-43 (2), पृ.192-209, अरविंद कुमार लंदन में रहते हैं। उनका शोध प्रबंध 2023 में छपा।
4. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण), खंड-4, पुस्तक संख्या-2 अल्पसंख्यकों के अधिकार पर रिपोर्ट, सी.ए/24/कॉम./47 पृ.92-107
5. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण), खंड-4, पुस्तक संख्या-2 अल्पसंख्यकों के अधिकार पर रिपोर्ट, अंक-5 संख्या-8, 27 अगस्त, 1947, पृ.93
6. भारतीय संविधान, अनकही कहानी, रामबहादुर राय, अध्याय-36, सांप्रदायिकता का पाठ शोधन, पृ.238
7. वही, पृ.239
8. इंडियन कांस्टीट्यूशनल डाक्यूमेंट्स, पिलग्रिमेज टू फ्रीडम, के.एम. मुंशी, अध्याय-4: आफ्टर पार्टीशन, पृ.207
9. वही, पृ.207
10. वही, पृ.207
11. वही, पृ.207
12. वही, पृ.207
13. वही, पृ.208
14. वही, पृ.208
15. वही, पृ.208
16. वही पृ.208
17. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण), अंक-8, संख्या-8, 25 मई, 1949, पृ.431-432
18. वही, पृ.458
19. वही, पृ.466
20. वही, पृ.469
21. 75 एंड गोइंग स्ट्रांग, रोहन जे अलवा, टाइम्स ऑफ इंडिया, 25 जनवरी, 2024
22. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण) खंड-9(ख), पुस्तक संख्या-8, अंक-9, संख्या-36, 16 सितंबर, 1949, पृ.2494
23. वही, 17 सितंबर, 1949, पृ.2584-2585
24. वही, 17 सितंबर, 1949, पृ.2528
25. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण) खंड-7 (क) पुस्तक संख्या-3, 4 नवंबर, 1948 पृ.77-78
26. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण) खंड-10, पुस्तक संख्या-9, 14 अक्टूबर, 1949, पृ.3094-3095
27. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण) खंड-4, पुस्तक संख्या-2, अंक-5, संख्या-8, 27 अगस्त, 1947, (अल्पसंख्यक संबंधी परामर्श समिति की रिपोर्ट, पृ.-93
28. वही, पृ.93
29. वही, पृ.93
30. इंडियन कांस्टीट्यूशनल डाक्यूमेंट्स, पिलग्रिमेज टू फ्रीडम, के.एम. मुंशी, अध्याय : आफ्टर पार्टीशन, पृ. 208

डॉ. उपासना तिवारी

पसमांदा मुसलमानों की जड़ें : जाति, धर्मांतरण और सामाजिक स्तरीकरण

इस्लाम में स्तरीकृत पदानुक्रम उद्भव के देश और पैगंबर के साथ निकटता पर आधारित है। पसमांदा मुसलमानों की सामाजिक स्थिति का एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारत में पसमांदा मुसलमानों के अनुभव गहरी जड़ें जमाए बैठी असमानताओं के समक्ष समुत्थान्शक्ति और संघर्ष के इतिहास को उजागर करते हैं। भारत में मुसलमानों के सामाजिक-राजनीतिक इतिहास को प्राय: एक ही दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया जाता है, तथापि यह समुदाय बहुत विविधतापूर्ण है, और इसके भीतर महत्वपूर्ण असमानताएँ हैं। मुस्लिम आबादी में सबसे ज्यादा हाशिए पर पड़े लोगों में पसमांदा मुसलमान हैं , जिसका अर्थ है "जो पीछे छूट गए।"[1] ऐतिहासिक रूप से, पसमांदा मुसलमानों को व्यवस्थित सामाजिक-आर्थिक बहिष्कार का सामना करना पड़ा है, और मुख्य रूप से वे सब्जी विक्रेता, मछुआरे, कुम्हार, कसाई, लोहार, मेहतर, चूड़ी विक्रेता और सफाईकर्मी जैसे निम्न काम करते हैं। अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) सूची में शामिल होने के बावजूद, उन्हें शिक्षा, सरकारी नौकरी और सामाजिक-आर्थिक उन्नति के सीमित अवसरों के साथ इन श्रेणियों के लिए इच्छित लाभों तक पहुँचने में चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

इस हाशिए पर जाने में योगदान देने वाले अंतर्निहित कारकों में न केवल वर्ग-आधारित बहिष्कार शामिल है, बल्कि मुस्लिम समुदाय के भीतर जाति का अंतर्संबंध भी शामिल है। जहाँ पसमांदा मुसलमान व्यापक मुस्लिम आबादी के साथ एक धार्मिक पहचान साझा करते हैं, वहीँ उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति अक्सर उनकी निचली जाति की पृष्ठभूमि से परिभाषित होती है। जाति और वर्ग के इस अंतर्संबंध का परिणाम इनकी गरीबी की निरंतर स्थिति, सीमित शैक्षिक संभावनाएँ और उन सरकारी कल्याण कार्यक्रमों तक सीमित पहुँच है जो इन समुदायों का उत्थान करने के लिए थे। संरचनात्मक भेदभाव से अभिवृद्ध राज्य की उदासीनता ने इन मुद्दों को संबोधित करने के उद्देश्य से लाये विकास पहलों के प्रभावी कार्यान्वयन में बाधा उत्पन्न की है।

परन्तु वर्तमान में इसमें एक महत्वपूर्ण अंतर आ रहा है। पसमांदा मुसलमानों की बढ़ती संख्या अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हो रही है, और यह बढ़ती जागरूकता उनके बीच अधिक एकता की ओर ले जा रही है। जैसे-जैसे वे एक सामूहिक शक्ति के रूप में एक साथ आ रहे हैं, वैसे ही वे उन राजनीतिक और सरकारी प्रणालियों को चुनौती देना शुरू कर रहे हैं जिन्होंने ऐतिहासिक रूप से उनकी जरूरतों की उपेक्षा की है। यह उभरता हुआ पसमांदा आंदोलन स्पष्ट रूप से धर्मनिरपेक्ष है, और उस प्रतिक्रियात्मक, धार्मिक रूप से प्रेरित राजनीति से अलग है जो पहले भारत में मुस्लिम विमर्श पर हावी थी। इस नए दृष्टिकोण में, पसमांदा मुस्लिम संगठन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, और उस राजनीतिक परिदृश्य को बदलने के व्यापक प्रयास का प्रतिनिधित्व करते हैं जो लंबे समय से मुस्लिम समुदाय के हाशिए के समूहों की तुलना में कुलीन अशरफ मुसलमानों के पक्ष में रहा है । पसमांदा आंदोलन का उदय इन समुदायों के चल रहे संघर्षों और उनके सशक्तिकरण की बढ़ती संभावना दोनों को उजागर करता है। जैसे-जैसे पसमांदा मुसलमान अपने अधिकारों पर बल देना जारी रखते हैं, यह आंदोलन भारत के राजनीतिक और सामाजिक ताने-बाने को नया रूप देने का एक महत्वपूर्ण अवसर प्रस्तुत करता है, तथा मुस्लिम समुदाय के हाशिए पर पड़े लोगों के लिए अधिक समावेश और समानता की आशा प्रदान करता है।

यह पत्र पसमांदा मुसलमानों के अनुभव का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करना है, जिसमें उनके हाशिए पर होने की जड़ों, उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में जाति और वर्ग के अंतर्संबंध, तथा उस उभरती हुई राजनीतिक चेतना का परिक्षण किया जाएगा, जो समकालीन भारत में समानता और न्याय के लिए उनके संघर्ष को परिवर्तित कर रही है।

भारतीय मुसलमानों के मध्य जाति विभाजन का ऐतिहासिक उद्भव

यद्यपि इस्लाम समानता का उपदेश देता है, जीवंत धर्मों चाहे हिंदू हो या मुसलमान से मिलकर बना भारतीय समाज असमानता के सिद्धांत पर आधारित है, जिससे पदानुक्रम का निर्माण होता है। इस्लाम में उप-विभाजन प्राथमिक रूप से बिरादरी, मूल, जातीयता और पेशा के सिद्धांतों पर आधारित है जिनको आधार मानकर विद्वानों ने भारत में मुसलमानों को अशराफ़, अजलाफ़, अरज़ाल में उप-विभाजित किया है।

इससे पहले मुसलमानों को दो व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया गया था - अशराफ़ और अजलाफ़। विदेशी मूल का दावा करने वाले अरबी, तुर्की, मध्य एशियाई और ईरानी मुसलमान को पूर्व वर्ग और निचली जाति के स्थानीय धर्म-परिवर्तित मुसलमान बाद के वर्ग के माने जाते हैं। लेकिन इस विभाजन ने मुसलमानों के बीच एक जटिल सामाजिक स्तरीकरण प्रस्तुत किया, जहाँ ये श्रेणियां बदले में सामाजिक संपर्क के माध्यम से विभिन्न छोटी इकाइयों में विभाजित हो जाती हैं। इम्तियाज अहमद के अनुसार, ".. अशरफ और अजलफ के रूप में मुस्लिम समाज के भेद पर अधिक जोर दिया जाना भारतीय मुस्लिम सामाजिक स्तरीकरण की प्रकृति और जटिलता का गलत और विकृत चित्रण प्रस्तुत करता है"।[2]

स्तरीकृत पदानुक्रम मूल के देश और पैगम्बर से निकटता पर आधारित था। शीर्ष स्तर पर सैय्यद हैं जो स्वयं को सीधे पैगंबर की बेटी फातिमा के वंश से आये मानते हैं, और जिन्हें शक्ति और प्रतिष्ठा में काफी समृद्ध माना जाता है। उसके पश्चात शेख या शरीफ, मुगल और पठान आते हैं। अजलाफ़ श्रेणी में मुख्य रूप से बढ़ई और बुनकर जैसे कारीगर समूहों से आने वाली स्वदेशी आबादी शामिल है, जिनका पेशा साफ-सुथरा है। समतावादी इस्लाम में इस धर्मांतरण से उनकी सांस्कृतिक प्रथाओं और स्थानीय वातावरण पर कोई असर नहीं पड़ा। अरज़ाल की निचली श्रेणी उन शूद्रों और आदिवासियों की मानी जाती है जो हिन्दू समुदाय के दलित जाति से इस्लाम में धर्मान्तरित हो गए और उनका हाल में पसमांदा के नाम से नामकरण किया गया।

वंशानुगत व्यवसाय जातियों की परस्पर आर्थिक निर्भरता की विवेचना द्वारा प्रचलित जाति व्यवस्था के साथ घनिष्ठ संबंध दर्शाता है। प्रभावशाली जाति द्वारा व्यवहार में लाई जाने वाली जजमानी प्रणाली ने समाज में आदान-प्रदान के हेतु को बखूबी पूरा किया, जैसा कि उत्तर प्रदेश के कसौली में जरीना भट्टी के शोध से स्पष्ट है । वे कहती हैं कि- 'ऊंची जाति' (उच्च जाति) और 'नीची जाति' (निम्न जाति) के बीच अंतर्क्रिया जजमानी प्रणाली द्वारा स्थापित संरक्षक-ग्राहक संबंधों द्वारा विनियमित होती है। संरक्षक, जो ऊँची जात से संबंधित हैं, को जजमानी कहा जाता है, तथा ग्राहक, जिनमें नीची जात की विभिन्न व्यावसायिक जातियां शामिल होती हैं, को कमीन के रूप में जाना जाता है। कमीन, जो वंशानुगत रिश्ते में प्रमुख अशराफ़ वंश से जुड़े होते हैं, अशराफ़ सदस्यों को विशेष सेवाएँ प्रदान करते हैं जिसके लिए उन्हें पारंपरिक रूप से नकद या वस्तु का भुगतान किया जाता है। कमीन को जजमानों द्वारा घर बनाने के लिए भूमि प्रदान की जाति है और खेती के लिए जजमानी से पट्टे पर भूमि भी प्राप्त कर सकते हैं।[3]

भारत में 12वीं और 17वीं शताब्दी के बीच की अवधि में सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य, विशेष रूप से जातिगत गतिशीलता के संबंध में, गहरा परिवर्तन देखा गया। इस समय के दौरान, धार्मिक रूपांतरण की प्रक्रिया ने सामाजिक संरचनाओं को नया रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने धर्मांतरण के लिए दो प्राथमिक उपकरणों का उपयोग किया: तलवार और सूफीवाद। तलवार, जिसे अक्सर बल और बलात से जोड़ा जाता है, का उपयोग आबादी के धर्मांतरण के साधन के रूप में किया गया था, इस प्रक्रिया के माध्यम से बड़ी संख्या में लोग मुसलमान बन गए, मुगीसुतदीन नामक काजी ने अलाउद्दीन खिलजी को सलाह दी, "काफिर के सामने दो विकल्प थे या तो मौत या इस्लाम।" अधिकांश हिंदू समुदाय अपने धर्म में बने रहने के लिए जजिया दे रहे थे लेकिन मुस्लिम उलेमाओं को यह पसंद नहीं था कि हिंदू जजिया देने के बाद भी अपने धर्म का पालन करें। जियाउद्दीन बरनी ने शिकायत की कि यदि सुल्तान एक नए सिक्के के बदले में काफिरों की धार्मिक स्वतंत्रता को जारी रखता है, तो इस्लाम का झंडा भारत में ऊंचा नहीं फहर पाएगा।[4] इसी तरह सूफीवाद, निम्न या 'अछूत' जातियों के व्यक्तियों के साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में नए आजीविका के अवसरों की तलाश करने वालों को विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित करने में एक अधिक सूक्ष्म और समावेशी उपकरण के रूप में उभरा।

सूफीवाद, जो व्यक्तिगत आध्यात्मिकता, ईश्वर के समक्ष समानता और सामाजिक न्याय पर जोर देता है, भारत में हाशिए पर पड़े समुदायों के साथ विशेष रूप से गुंजायमान हुआ। इस्लामी रहस्यवाद का यह रूप, जो ईश्वर के साथ सीधे और व्यक्तिगत संबंध पर ध्यान केंद्रित करने की विशेषता रखता है, हिंदू समाज के लिए एक विकल्प लेकर आया। आध्यात्मिक समानता का वादा और एक दयालु और समावेशी ईश्वर की दृष्टि ने उन व्यक्तियों को आकर्षित किया जिन्हें जाति व्यवस्था द्वारा बहिष्कृत किया गया था, और जिन्हें इसमें सामाजिक गतिशीलता और आध्यात्मिक सांत्वना दोनों प्राप्त करने का अवसर दिखा। परिणामस्वरूप, वंचित पृष्ठभूमि से कई लोग इस्लाम की ओर यह मानते हुए आकर्षित हुए कि नया धर्म उन्हें आध्यात्मिक और भौतिक दोनों अवसर प्रदान करेगा।

इस धर्मांतरण प्रक्रिया की विडंबना यह है कि जहाँ इस्लामी विचारधारा की एकात्मक प्रकृति ने आस्तिकों के बीच एकता और समानता पर जोर दिया, वहीँ नव-धर्मांतरित मुस्लिम आबादी को वह सामाजिक स्थिति और सम्मान नहीं मिला जिसकी उन्हें

उम्मीद थी। सूफीवाद के समावेशी संदेशों के बावजूद, धर्मांतरित लोगों ने खुद को भारत में बड़े मुस्लिम समुदाय के भीतर हाशिए पर पाया, खासकर मध्य एशियाई मुस्लिम अभिजात वर्ग द्वारा जो भारत में आये और स्वयं को यहाँ प्रमुख अभिजात वर्ग के रूप में स्थापित कर लिया था। इन अभिजात वर्ग, जिनकी सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक शक्ति उनके कुलीन वंश द्वारा मजबूत की गई थी, ने सत्ता और सामाजिक प्रतिष्ठा पर मजबूत पकड़ बनाए रखी, जिससे व्यापक मुस्लिम पदानुक्रम के भीतर निचली जाति के धर्मांतरित लोगों के लिए बहुत कम जगह बची।

यह तथ्य मिन्हाज-ए-सिराज जैसे लोगों द्वारा धर्मांतरित मुसलमानों की निंदा से स्पष्ट किया गया है, जिन्होंने सुझाव दिया कि ये नए धर्मांतरित लोग राज्य सेवा में पदों के लिए प्रारंभिक मध्य एशियाई प्रवासियों के कुलीन परिवारों के साथ प्रतिस्पर्धा कर रहे थे।[5] एक अन्य महत्वपूर्ण इतिहासकार बरनी ने तर्क दिया कि निम्न-जन्म वाले धर्मांतरित लोगों के बच्चों को मदरसों में प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि ऐसी शिक्षा उन्हें सरकारी पदों के लिए योग्य बनाती है।[6] उनका मानना था कि केवल ईश्वर द्वारा चुने गए कुलीन परिवार ही शासन करने और समाज में न्याय और स्थिरता बनाए रखने के लिए उपयुक्त हैं। इस संदर्भ में, गियासुद्दीन तुगलक द्वारा अमरोहा के एक लेखाकार को उसके पिता के इस्लाम में धर्मांतरण के आधार पर अस्वीकार कर दिया जाना, उन गहरी सामाजिक पदानुक्रमों को और अधिक रेखांकित करता है जो धर्मांतरित मुसलमानों को हाशिए पर रखना जारी रखते हैं।[7]

सार रूप में, जहाँ इस्लाम में धर्मांतरण ने धार्मिक पहचान और आध्यात्मिक समानता का विकल्प दिया, यह आवश्यक रूप से नए धर्मांतरित लोगों को सामाजिक सशक्तीकरण की ओर नहीं ले जा सका। इसके बजाय, इन व्यक्तियों ने खुद को दो दमनकारी सामाजिक संरचनाओं के बीच फँसा पाया - मौजूदा हिंदू जाति व्यवस्था और मध्य एशियाई मुस्लिम अभिजात वर्ग, जहाँ दोनों ने उन्हें हाशिए पर डाल दिया। धार्मिक रूपांतरण, जाति और सामाजिक गतिशीलता के बीच यह जटिल अंतर्संबंध एक गहरे स्तरीकृत समाज में सामाजिक समानता प्राप्त करने के साधन के रूप में धार्मिक रूपांतरण की सीमाओं को उजागर करता है।

भारत में धार्मिक रूपांतरण के अध्ययन में कई विद्वान समूहों द्वारा उजागर किया गया एक महत्वपूर्ण पहलू उन लोगों के लिए आत्म-शुद्धिकरण या प्रायश्चित के प्रावधानों की कमी है, जिन्होंने इस्लाम धर्म अपना लिया था और बाद में अपने मूल हिंदू धर्म में वापस लौटना चाहते थे। प्रायश्चित या शुद्धिकरण की एक संरचित प्रक्रिया की अनुपस्थिति अक्सर उन नए धर्मांतरित मुसलमानों के हाथ बांध देती है जो हिंदू धर्म में वापस लौटना चाहते हैं, क्योंकि इस्लामी परंपराओं के भीतर पुनः धर्मांतरण के लिए कोई स्थापित या व्यापक रूप से स्वीकृत अनुष्ठान नहीं थे। औपचारिक आध्यात्मिक सामंजस्य और शुद्धिकरण की इस कमी ने उन लोगों के लिए एक जटिल सामाजिक और धार्मिक परिदृश्य तैयार किया जो अपनी पिछली आस्था प्रणालियों में वापस लौटना चाहते थे।

फिर भी, ऐसे कई ऐतिहासिक उदाहरण हैं, जिनमें ऐसे लोग शामिल हैं, जो औपचारिक तंत्र की कमी के बावजूद हिंदू धर्म में वापस लौटने में कामयाब रहे। ऐसा ही एक उदाहरण खुसरो खान का है, जिन्हें अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल के दौरान गुलाम बनाकर इस्लाम में परिवर्तित कर दिया गया था। एक युवा लड़के के रूप में, उन्हें कैदी के रूप में लिया गया और बाद में उनका धर्म परिवर्तन किया गया। बाद के जीवन में, खुसरो खान ने अपनी इस्लामी आस्था को त्याग दिया और हिंदू धर्म में वापस आ गए।[8] उनका पुनः धर्मांतरण एक ऐसे व्यक्ति का उल्लेखनीय उदाहरण है, जो सामाजिक चुनौतियों के बावजूद धर्मांतरण की बाधाओं से मुक्त होने और अपनी हिंदू पहचान को पुनः प्राप्त करने में सक्षम रहा।

एक और प्रसिद्ध उदाहरण विजयनगर साम्राज्य के राजा बुक्का प्रथम का है, जो राजनीतिक उथल-पुथल के दौर में इस्लाम में परिवर्तित हो गए थे। इस्लामी शासन की जटिलताओं और चुनौतियों का सामना करने के बाद, बुक्का प्रथम ने अपने भाई हरिहर के साथ मिलकर बाद में हिंदू धर्म अपना लिया और विजयनगर की हिंदू राजशाही को फिर से स्थापित किया।[9] ऐसे प्रमुख व्यक्तियों का पुनः धर्मांतरण न केवल धार्मिक पहचान की व्यक्तिगत इच्छा को उजागर करता है, बल्कि मध्यकालीन भारत में धर्मांतरण और पुनः धर्मांतरण के व्यापक राजनीतिक और सांस्कृतिक निहितार्थों को भी दर्शाता है।

देवलस्मृति (10वीं शताब्दी का हिंदू विधि और धार्मिक ग्रंथ) जैसे हिंदू ग्रंथों में पुनः धर्मांतरण के प्रावधान हैं जो दर्शाता है कि पुनः धर्मांतरण हिंदू परंपरा के भीतर एक मान्यता प्राप्त प्रथा थी। देवलस्मृति, जो उस समय के दौरान लिखी गई थी जब इस्लाम में बड़ी संख्या में धर्मांतरण हुए थे, विशेषकर भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमांत क्षेत्रों में, के भीतर यह सुझाव दिया गया था कि धर्मांतरण की सामाजिक और धार्मिक गतिशीलता अस्थिर थी। पुनः धर्मांतरण के लिए यह प्रावधान प्राचीन भारत में धार्मिक पहचान की व्यापक सांस्कृतिक समझ को दर्शाता है, जहाँ व्यक्ति, इस परिवर्तन को सुविधाजनक बनाने के लिए कुछ अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों के साथ, धर्मांतरण की अवधि के बाद अपने मूल धर्म में वापस लौट सकते थे।

ये उदाहरण और ऐतिहासिक अभिलेख बताते हैं कि पुनर्धर्मांतरण की प्रक्रिया, हालांकि आधिकारिक रूप से औपचारिक नहीं थी, लेकिन पूरी तरह से असामान्य भी नहीं थी। वे हिंदू धार्मिक पहचान के लचीलापन की ओर भी इशारा करते हैं, जिसने राजनीतिक और धार्मिक दबावों द्वारा उत्पन्न चुनौतियों के बावजूद व्यक्तियों को अपने मूल धर्म को फिर से अपनाने की संभावना की अनुमति दी। लेकिन पुनर्धर्मांतरण की प्रक्रिया बहुत सीमित थी और इससे नए धर्मांतरित मुसलमानों के लिए मुस्लिम धर्म में बने रहने का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसलिए हम कह सकते हैं कि नए धर्मांतरित लोगों को वह विशेषाधिकार नहीं मिले जो कुलीन मुसलमानों को मिले थे, उदाहरण के लिए शिक्षा का अधिकार, काम करने का अधिकार, बोलने, लिखने का अधिकार या समानता का अधिकार। इस्लाम में धर्मांतरण के बावजूद वे अपने धार्मिक कर्मकांडों और रीति-रिवाजों का

पालन करते रहे हैं, जो उनकी मौखिक परंपरा और जीवन शैली में झलकते हैं। वे समाज में पीछे रह गए और उन्हें वह स्थान नहीं मिला जो प्रवासी मुसलमानों को भारतीय समाज में मिला। मध्यकालीन भारत में धार्मिक धर्मांतरण ने सामाजिक-राजनीतिक संरचनाओं को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जहाँ इस्लाम, एकेश्वरवादी धर्म के रूप में, विश्वासियों के बीच समानता पर जोर देता था, वहीँ ऐतिहासिक साक्ष्य बताते हैं कि मुस्लिम समुदाय के भीतर सामाजिक पदानुक्रम कायम रहा है। पसमांदा मुसलमान, जो बड़े पैमाने पर निचली जाति के हिंदू धर्मांतरित लोगों के वंशज हैं, को सत्तारूढ़ मध्य एशियाई मुस्लिम अभिजात वर्ग से लगातार भेदभाव का सामना करना पड़ा।

अशराफ प्रभुत्व और पसमांदा मुसलमानों की उपेक्षा

मुस्लिम संस्कृति की तीन व्यापक श्रेणियों को दर्शाने वाले शब्द : *अशराफ़*, *अजलाफ़* और *अरज़ाल* शब्द हिंदी या संस्कृत की बजाय अरबी शब्द हैं। "यदि मुस्लिम संस्कृति में जाति/ *बिरादरी* नहीं थी तो इन शब्दों की उत्पत्ति कहाँ से हुई? *अशराफ़* अरबी शब्द *"शरीफ"* से लिया गया है जिसका अर्थ है "कुलीन"। इस समूह में 4 उच्च जाति के मुसलमान शामिल हैं यानी सैयद, शेख, मुगल और पठान। ये सभी अरब, मध्य एशिया, अफगानिस्तान और भारत के बाहर अन्य उपमहाद्वीपों के वंशज हैं।[10] ये समूह अपने साथ सांस्कृतिक और सामाजिक श्रेष्ठता की भावना लाये। इन समूहों ने स्थानीय धर्मान्तरित समूहों *अजलाफ़* और *अरज़ाल* से खुद को अलग करने के लिए अपने गैर-भारतीय मूल पर जोर दिया। *अजलाफ़* और *अरज़ाल* साथ मिलकर *"पसमांदा"* बनते हैं। *अशराफ़* अभिजात वर्ग ने शासन, धार्मिक नेतृत्व और शिक्षा में अधिकार के पदों तक अत्यधिक पहुंच का दावा किया। वे अक्सर अपने वंश को पैगंबर मुहम्मद से जोड़ते थे। यह फर्क अंतर-सामुदायिक ढांचे का विश्लेषण करने में मदद करता है, जहां *अशराफ़* पहचान पवित्रता और प्रतिष्ठा से जुड़ी हुई थी, वहीँ पसमांदा जैसे 'निम्न' जाति के मुस्लिम समुदाय का वर्तमान समय में और अधिक हाशियाकरण हुआ है। इसलिए, मुस्लिम समाज में उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक जातिगत भेदभाव मौजूद है। इसके बावजूद, *अशराफ़* नेता संपूर्ण मुस्लिम आरक्षण (TMR) की मांग करते हैं, उनका तर्क है कि पूरा मुस्लिम समाज पिछड़ा हुआ है और सामाजिक-आर्थिक, शैक्षिक, और राजनीतिक पिछड़ेपन के कष्ट से त्रस्त है।[11] दूसरी ओर, *पसमांदा* और दलित पृष्ठभूमि के नेताओं और विद्वानों का दावा है प्राकृतिक पिछड़ापन पूरे समुदाय का नहीं बल्कि *अजलाफ़* और *अरज़ाल* जाति समूह के 85% लोगों का है। अशराफ़ का वर्चस्व राजनीतिक क्षेत्र में भी देखा जाता है। यदि हम *अशराफ़* बनाम *पसमांदा के बीच के अंतर को गहराई से देखें* तो एक व्यवस्थित असंतुलन देखा जाता है जहाँ एक छोटा ऐतिहासिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त समूह "*अशराफ़*" हावी रहता है। अली अनवर के अनुसार, "यदि हम पहले से चौदहवें आम चुनावों में संसद के सदस्यों को देखें तो यह ऐसा प्रतीत होता है कि 7500 सदस्यों में से 400 मुस्लिम समुदाय से थे। 2001 की जनगणना के अनुसार, मुस्लिमों की संख्या 13.4% है। कुल मुस्लिम आबादी में *अशराफ़ की हिस्सेदारी करीब 15% है। इसमें बताया गया है कि 2.01* प्रतिशत अशराफ़ मुसलमान हैं और लोकसभा में उनका प्रतिनिधित्व 4.5% है। यह उनकी जनसंख्या के दोगुने से भी अधिक है जबकि *पसमांदा* मुसलमानों की आबादी 11.3% है किन्तु लोकसभा में उनका प्रतिनिधित्व केवल 0.8% है।"[12]

अशराफ़ का यह अधिक प्रतिनिधित्व राजनीतिक क्षेत्र में उनके प्रभुत्व को दर्शाता है क्योंकि संसद में उनकी हिस्सेदारी उनकी जनसंख्या प्रतिशत से दोगुनी से भी अधिक है। अशराफ़ों का यह अधिक प्रतिनिधित्व और पसमांदा मुसलमानों का कम प्रतिनिधित्व समानतामूलक लोकतंत्र के सिद्धांत को कमजोर करता है। पसमांदा मुसलमानों की यह उपेक्षा स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा और आर्थिक अवसरों तक उनकी पहुँच को सीमित करके मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। खराब स्वास्थ्य सेवाएँ, कम साक्षरता दर और पसमांदाओं में उच्च गरीबी स्तर उनके जीवन की गुणवत्ता और समग्र विकास को कम करते हैं।

हमें यह समझना होगा कि अशराफ़ अभिजात वर्ग प्रभावशाली होने के कारण पिछड़े वर्गों के लिए बनाए गए सरकारी कार्यक्रम और धन पर अक्सर कब्जा कर पसमांदा मुसलमानों को हाशिए पर डाल देते हैं। इससे पसमांदा गरीबी और कम प्रतिनिधित्व में फंसे रहते हैं, जबकि उनकी आबादी कुलीन अशराफ़ों की तुलना में अधिक है। पसमांदा और दलित मुसलमानों को आरक्षण उनके उत्थान में प्रमुख भूमिका निभा सकता है और समानता के गुण को अग्रसर कर सकता है यदि हिन्दू दलित, सिख दलित इत्यादि की तरह मुस्लिम दलित के लिए भी वैसे ही विशेष प्रावधान किये जाएँ।

पसमांदा महिला: समाज में दोहरी उपेक्षा

पसमांदा महिलाओं पर काम करना एक चुनौती है क्योंकि ऐसा कोई दस्तावेजी कार्य मौजूद नहीं है जो उनकी स्थिति, अनसुनी आवाजों और हाशिए पर होने के बारे में विचार करता हो। पसमांदा महिलाओं को समझने के लिए, मैं 'हाशिये पर डालने' की बजाय 'दोहरे हाशिए पर डालने' की शब्दावली पसंद करूंगी क्योंकि इन औरतों को भेदभाव केवल इसलिए ही नहीं झेलना पड़ता है कि वे मुसलमान हैं और गरीब हैं बल्कि इसलिए भी कि वे 'महिला' हैं, 'निचला जाति' की हैं और 'अशिक्षित' हैं। यहाँ 'स्त्री' की बजाय 'महिला' शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है क्योंकि यह समाज ही है जो 'स्त्री' को 'महिला' बनाता है।

इन पसमांदा महिलाओं को, जिन्हें गंभीर भेदभाव का सामना करना पड़ता है, नारीवादियों द्वारा भी उपेक्षित किया जाता है। नारीवादियों द्वारा पसमांदा महिलाओं के मुद्दों उठाने की असफलता उन्हें समाज में और अधिक हाशिए पर धकेल दिया। यहां तक कि *अंजुमन तरक्की पसंद मुसन्नफिन-ए-हिंद* भी पसमांदा महिलाओं को सामाजिक न्याय प्रदान करने में विफल रहा है। आंदोलन के भीतर, इस्मत चुगताई और कृष्ण चंदर जैसे लेखकों द्वारा अशराफ़ महिलाओं की

समस्याओं जैसे जबरन विवाह, महिलाओं पर प्रतिबंध, पर्दा प्रथा, और शिक्षा के अवसरों में बाधाओं को दर्शाया गया है। इस्मत चुगताई की लघु कहानी *लिहाफ* (रजाई) इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण है।[13] यह कहानी अशराफ़ समाज की महिलाओं के पर्दा पर केंद्रित है। मुख्य पात्र अपनी शादी में अकेलापन और भावनात्मक रूप से उपेक्षित महसूस कर लेती है। परिणामस्वरूप, वह अपनी महिला नौकरानी के साथ घनिष्ठ और अंतरंग संबंध विकसित करती है। इस कहानी के माध्यम से चुगताई ने कुलीन मुस्लिम घरों में महिलाओं की छिपी हुई इच्छाओं और उन पर लगाए गए प्रतिबंधों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। जब *लिहाफ* प्रकाशित हुई तब इसने एक बड़ा काण्ड सा कर दिया क्योंकि इसमें महिला कामुकता पर खुलकर चर्चा की गई थी, और जो एक ऐसा विषय था जिस पर उस समय साहित्य में शायद ही कभी बात की जाती थी। हालाँकि इस्मत चुगताई एक मुखर लेखिका थीं, फिर भी उन्होंने पसमांदा महिलाओं की कठिनाइयों पर ध्यान केंद्रित नहीं किया, जिसके कई कारण थे: पहला, उन्होंने जाति-आधारित दृष्टिकोणों के बजाय लिंग संबंधी दृष्टिकोणों पर अधिक ध्यान केंद्रित किया, दूसरा, इस्मत के पाठक और उनका सामाजिक दायरा संभवत: अशराफ़ समुदाय से संबंधित था। दलित मुस्लिम महिलाओं के बारे में लिखने से उनके पाठक उनसे अलग हो सकते थे।

यह देखा गया है कि पसमांदा पुरुष, भारतीय राज्य द्वारा अनुसूचित जाति के रूप में आधिकारिक मान्यता पाने की अपनी लड़ाई में अपनी महिलाओं को राजनीतिक पहचान, जो उनकी धार्मिक पहचान के आधार पर भेदभाव करता है, के लिए उनके अधिकारों का दावा करने इस सामूहिक संघर्ष में भागीदार के रूप में बामुश्किल शामिल करते हैं। अपनी अनेक तरह से वंचित सामाजिक स्थिति के कारण, ये महिलाएँ शिक्षा (मुस्लिम महिलाओं में साक्षरता दर केवल 4% है) और रोजगार की दृष्टि से सबसे पिछड़ी हुई हैं। इसके अलावा, मुख्यधारा के नारीवादी, दलित, और मुसलमान कार्यकर्ताओं के राजनीतिक विमर्शों में भी पसमांदा महिलाओं के लिए मुक्ति और सामाजिक न्याय की कार्यसूची को बुरी तरह से प्रतिबिंबित किया जाता है। इससे भी आगे, मुस्लिम समुदाय में प्रचलित ऐसी कोई भी अमानवीय प्रथा अपनी पूर्ण प्रकृति से ही इस्लाम के मुख्य सिद्धांत के विरुद्ध है। इसलिए, उन्हें बोलने का अवसर देने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि एक ऐसा वातावरण बनें जो उन्हें ऐसा करने में सक्षम बनाता है। लेकिन तब तक दलित नारीवादियों और इस्लामी नारीवादियों को 'उनके लिए बोलने' की जरूरत है। (स्पीवक 1988) यहाँ तक कि यह भी बुरी तरह से हाशिए पर पडीं पसमांदा महिलाओं को दृश्यता प्रदान करने के लिए पर्याप्त होगा और रसातल में पड़ी उनकी आवाज को पुन: प्राप्त करने में मदद करेगा।

शिक्षा तक पहुँच: पसमांदा मुसलमानों के लिए एक बाधा

जियाउद्दीन बरनी की एकमात्र ज्ञात हिन्द-फारसी रचना *'द फतवा-ए-जहाँदारी'* मुसलमानों में अपनाई जाने वाली वर्ग संरचना की मूल विशेषता को प्रदर्शित करती है। वह कुलीन मुसलमानों को जातियों और उपजातियों में विभाजित करना चाहते थे, जिससे उन्हें कुलीन विशेषाधिकार प्राप्त हो सकें। चूँकि शिक्षा निम्न जन्म वाले मुसलमानों को चुनौती देने और सवाल करने का अधिकार देती है, इसलिए वह निम्न सामाजिक वर्गों के मुसलमानों को शिक्षित करने के विचार के खिलाफ थे क्योंकि उन्हें डर था कि इससे वे अभिजात वर्ग को चुनौती देने या यहां तक की उन्हें पार करने हेतु सशक्त हो जाएँगे। यहां तक कि बरनी ने उन लोगों के खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई करने का समर्थन किया जो इन तथाकथित 'निम्न-जन्म' वाले व्यक्तियों, जिन्हें वे उन्नति के अयोग्य मानते थे, को शिक्षित करने का प्रयास करते थे।[14]

मुस्लिम श्रमिक वर्ग के लिए बरनी का दृष्टिकोण उन्हीं के शब्दों में उद्धृत किया गया है - "प्रत्येक प्रकार के शिक्षकगण को कड़ाई से आदेश दिया जाना चाहिए कि वे कीमती पत्थरों को कुत्तों के गले के नीचे या सूअरों और भालुओं के गले में सोने के पट्टे न डालें - अर्थात् नीच और निकम्मे लोगों की सहायता करना, दुकानदारों और निम्न वर्ग के लोगों को नमाज, उपवास, धार्मिक दान और हज यात्रा के नियमों के साथ-साथ कुरान की कुछ आयतें और ईमान के कुछ सिद्धांत, जिसके बिना उनका धर्म अधूरा है और वैध प्रार्थना संभव नहीं है, सिखाने के अलावा और कुछ नहीं सिखाना है। इसके अलावा उन्हें कुछ भी नहीं पढ़ाना है जिससे कि कहीं ऐसा न हो कि इससे उनकी नीच आत्माओं को सम्मान मिले। उन्हें पढ़ना-लिखना नहीं सिखाया जाना चाहिए, क्योंकि ज्ञान में निम्न-जन्म वाले लोगों के कौशल के कारण बहुत सी गड़बड़ियाँ पैदा होती हैं। धर्म और राज्य के सभी मामलों में जो अव्यवस्था फैली हुई है, वह निम्न-जन्म के लोगों के कार्यों और शब्दों के कारण है जो अब कुशल बन गए हैं। यदि शिक्षक अवज्ञाकारी हैं तो निम्न-जन्म के लोग अपने कौशल से अब 'वे प्रशासक बन जाते हैं (इंतजार), राजस्व-संग्राहक (अमी), लेखा परीक्षक (मुतसर्रिफ), अधिकारी (फरमान-देली) और शासक (फरमान-रवा) - और यह जांच के समय पता चला है कि यदि उन्होंने निम्न-जन्म वालों को पढ़ने या लिखने का ज्ञान दिया है तो अनिवार्यत: उनकी अवज्ञा के लिए उन्हें दण्ड दिया जाएगा।"[15]

इस तरह बरनी उन लोगों की निंदा करता है ज्जिन्होने अपनी निजी पसंद से इस्लाम स्वीकार कर लिया, और उनका मानना था कि इस्लाम, एक अच्छी शराब की तरह, मांसपेशियों में परिपक्व होना चाहिए और यह वंशानुगत होना चाहिए।

शिक्षा पर बरनी के विचार उनके समय के दौरान मुस्लिम समाज के भीतर गहरे सामाजिक विभाजन को उजागर करते हैं। निचली जाति के मुसलमानों के लिए शिक्षा को प्रतिबंधित करने के उनके प्रयासों ने प्रणालीगत असमानताओं की नींव रखी जो पसमांदा मुसलमानों सहित हाशिए के समूहों को प्रभावित करना जारी रखती है। पसमांदा मुसलमानों और अन्य हाशिए के समुदायों के लिए शैक्षिक समानता के लिए समकालीन संघर्ष इस ऐतिहासिक विरासत का प्रत्यक्ष जवाब है।

बरनी के तर्कों का आलोचनात्मक परिक्षण करते हैं हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा

को सामाजिक गतिशीलता और सशक्तिकरण के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। जाति या वर्ग के आधार पर समाज के कुछ वर्गों को शिक्षा से वंचित करना केवल गरीबी और भेदभाव के चक्र को बढ़ाता है। आज, चुनौती इन ऐतिहासिक गलतियों को दूर करने की और ऐसी नीतियों को लागू करने की है जो शिक्षा तक समान पहुंच सुनिश्चित करती हैं, तथा जिससे जाति और वर्ग की वे बाधाएं टूटती हैं जो सामाजिक प्रगति में बाधा बनती रहती हैं।

'निम्न-जन्म' वाले मुसलमानों के लिए शिक्षा के प्रति बरनी का दृष्टिकोण इस बात की मार्मिक याद दिलाता है कि कैसे ज्ञान तक पहुँच को प्रतिबंधित करने जैसी संस्थागत प्रथाओं के माध्यम से जाति-आधारित भेदभाव को कायम रखा जा सकता है। यह इतिहास हाशिए पर पड़े मुस्लिम समुदायों जैसे कि पसमांदा मुसलमानों, जो आधुनिक भारत में शिक्षा और सामाजिक न्याय तक समान पहुँच के लिए अभी भी संघर्ष कर रहे हैं, के जीवन को आकार देना जारी रखता है।

निष्कर्ष

अत: जाति-आधारित विभाजन तब तक जारी रह सकता है जब तक कि एक अधिक समतावादी समाज की ओर बदलाव न हो जो जाति-आधारित भेदभाव को न केवल नाम में बल्कि व्यवहार में भी खारिज करता हो। यदि सत्ता का असंतुलन जारी रहता है, तो पसमांदा समुदाय जाति और वर्ग दोनों के कारण भेदभाव का सामना करते रहेंगे। पसमांदा महिलाओं को दोहरे हाशिएकरण का सामना करना पड़ता है। यदि नारीवादी आंदोलन और दलित आंदोलन उनके मुद्दों को आवाज देने के लिए मिलकर काम करते हैं, तो उनका हाशिए पर जाना कम हो सकता है। भारतीय मुख्य धारा के नारीवादियों, दलित और मुसलमान नारीवादियों के लिए यही समय है कि वे नारीवादी विद्वत्ता में अंतराल को पहचानें। पसमांदा मुसलमान समुदाय में बहुसंख्यक हैं, फिर भी ऐतिहासिक भेदभाव और नीतिगत उपेक्षा उन्हें लगातार शिक्षा में प्रवेश करने से रोकती है। सकारात्मक कार्रवाई की कमी समाज के भीतर उनके हाशिए पर होने की स्थिति को और खराब करती है, खासकर पसमांदा महिलाओं के लिए, जिन्हें जाति और लिंग दोनों बाधाओं का सामना करना पड़ता है। उनका उत्थान काफी हद तक समावेशी शैक्षिक नीतियों पर निर्भर करता है। पसमांदा मुसलमानों के लिए जाति-आधारित सकारात्मक कार्रवाई का कार्यान्वयन, साथ ही इन व्यापक सामाजिक न्याय आंदोलनों में पसमांदा महिलाओं को शामिल करना, उन प्रणालीगत बाधाओं को दूर करने में महत्वपूर्ण होगा जो उनकी प्रगति में बाधा डालती रहती हैं। अंतत:, अधिक समतावादी समाज की ओर बदलाव के लिए मुस्लिम समुदाय के भीतर मौजूद जाति-आधारित विभाजन को संबोधित करना होगा, विशेष रूप से समावेशी शैक्षिक नीतियों और हाशिए पर पड़े समूहों के लिए अधिक राजनीतिक प्रतिनिधित्व के माध्यम से।

संदर्भ-

1. आलम, 2007. न्यू डायरेक्संस इन इंडियन मुस्लिम पॉलिटिक्स: द एजेंडा ऑफ आल इंडिया पसमांदा मुस्लिम महाज, कंटेम्परेरी पर्सपेक्टिव्स, 1(2)
2. इम्तियाज अहमद, श्द अशरफ- अजलफ डाईकोटोमी इन मुस्लिम सोशल स्ट्रक्चर इन इंडिया, द इंडियन इकनोमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यु, 1966, पृष्ठ 271.
3. एम. एन. श्रीनिवास , 'कास्ट- इट्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी अवतार', वाइकिंग, 1996, पृष्ठ 249.
4. तबकत-ए- नासिरी, खंड 1, पृष्ठ. 489, 2, पृष्ठ. 69-70
5. जिया, उद्दीन बरनी, फतवा -ए- जहांदारी, असरफ बेगम और मुहम्मद हबीब, मिडिवल इंडियन क्वार्टरली, अलीगढ, 1958, पृष्ठ. 172
6. जियाउद्दीन बरनी, तारिख - ए - फिरोजशाही , कलकत्ता : बिब्लियोथेका इंडिका, 1862, पृष्ठ 36
7. अजीज अहमद (1962).डेर इस्लाम वॉन कार्ल जे. ट्रबनर. पृ.148, रॉय.वारफेयर इन प्री ब्रिटिश इंडिया, 1500 BCE से 1740 BCE.एशियन स्टेट्स एंड एम्पायर, टेलर एवं फ्रांसिस. पृष्ठ 154
8. अनवर, 2001. मसावात की जंग (हिंदी में), नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
9. मुख्य रूप से सैयद और शेख अपनी उत्पत्ति अरब से मानते हैं, सैयद फातिमा (आरए) और हजरत अली (आरए) के वंशज होने का दावा करते हैं, शेख, जिसका मतलब अध्यक्ष (सरदार) होता है, उनकी उत्पत्ति पैगंबर मुहम्मद (PBUH) के साथियों (सहाबा) से हुई है। पूरे भारत में शेखों के बीच 30 से अधिक उपजाति समूह हैं।सत्तारूढ़ वर्ग, मुगल, भी अब जाति के रूप में स्तरीकृत हो गया है और अपने मूल को मध्य एशिया से मानता है।
10. सिकन्द, वाई. 2003. 'दलित-मुस्लिम' एंड आल इंडिया बैकवर्ड दलितों मोर्चा.
11. विस्तृत विमर्श के लिए, राइट, थ. पी. को देखें। (1997). ए न्यू डिमांड फॉर मुस्लिम रिजर्वेशन इन इंडिया, एशियन सर्वे, 37(9), 852-8
12. यह आल इंडिया पसमांदा मुस्लिम महाज के अद्यतन पर्चे का अनुदित रूप है। आलम, एस. 2019 में उद्धृत। मैपिंग पसमांदा पॉलिटिक्स इन इंडिया: डिमांडस अन्दन चौलेंजस। मेनस्ट्रीम, खंड LVII, संख्या 27, जून 22। यह भी देखें, अंसारी, ए एच (2007), बेसिक प्रोब्लेम्स ऑफ ओबीसी & दलित मुस्लिम्स, नई दिल्ली: सीरियल्स पब्लिकेशन्स, पृष्ठ. 195
13. काजिम, राफिया (2021), रि-रीडिंग दो हाथ एज एन इंटरसेकस्नल टेक्स्ट: इस्मत चुगताई एंड द दलित्स(आगामी)
14. स्पिवाक, गायत्री चक्रवर्ती. 1988. 'कैन द सबाल्टर्न स्पीक?' कैरी नेल्सन और लैरी ग्रॉसबर्ग (संपादक),मर्क्सिस्म एंड द इंटरप्रिटेशन ऑफ कल्चर, में अर्बाना: यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनोइस प्रेस, पृष्ठ. 271-313.
15 हबीब, एम., खान, ए. यू. एस, और बरनी, एफ. जेड. ए. (1961). द पोलिटिकल थ्योरी ऑफ द डेल्ही सल्तनत: इन्क्लुडिंग ए ट्रांसलेशन ऑफ जियाउद्दीन बरनी'ज फतवा-ए-जहांदारी, सिरका, 1358-9 AD.

डॉ. आशीष कुमार शुक्ल

प्रतिनिधित्व की खोज पसमांदा आंदोलन का सामाजिक स्वरूप

पसमांदा आंदोलन वस्तुतः सामाजिक समानता की प्राप्ति के लिए मुस्लिम समुदाय के भीतर लड़ी जाने वाली लड़ाई है। पसमांदा मुसलमानों के प्रतिनिधित्व की खोज का एक विश्लेषण

सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने हेतु सकारात्मक कार्यवाही नीतियाँ भारत के सामाजिक-राजनैतिक परिदृश्य में एक महत्त्वपूर्ण विषय रही हैं। इस विषय के केंद्र में यह प्रश्न है कि वास्तविक समानता कैसे प्राप्त की जाए और हाशिए पर रहने वाले समुदायों द्वारा सामना किए जाने वाले ऐतिहासिक और प्रणालीगत नुकसान का समाधान करते हुए सामाजिक न्याय को किस प्रकार सुनिश्चित किया जाए? इस प्रश्न के समाधानस्वरूप भारतीय संविधान अपने विभिन्न अनुच्छेदों द्वारा अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए सार्वजनिक पदों और सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था देता है। साथ ही यह भी प्रावधान करता है कि आरक्षण के लिए पात्र इन वर्गों का निर्धारण करने की रीति-नीति क्या होगी।

इन्हीं प्रावधानों के इर्द-गिर्द पसमांदा मुस्लिमों द्वारा समाज में 'प्रतिनिधित्व की खोज' शुरू होती है। पसमांदा आंदोलन, अधीनस्थ जाति के मुसलमानों के नेतृत्व में एक अधोस्तरीय प्रयास के रूप में मुस्लिम समुदाय के उस हिस्से की आवाज है जिसने उच्च जाति के 'अशराफ' या 'शरीफ' आख्यानों के प्रभुत्व को चुनौती दी है। परंतु यह समानता प्राप्त करने के लिए मुस्लिम समुदाय के भीतर लड़ी जाने वाली लड़ाई है। पसमांदा द्वारा समानता प्राप्त करने की दिशा में एक लड़ाई समुदाय से बाहर भी लड़ी जा रही है, जिसका लक्ष्य भारतीय संविधान में प्रदत्त सामाजिक न्याय की प्राप्ति है। इस लड़ाई में समानता और प्रतिनिधित्व की खोज में पसमांदा समुदाय सीधे भारतीय राज्य से संवाद करता है। पसमांदा मुस्लिम जिन्हें अली अनवर एक जाति से अधिक एक वर्ग मानने का समर्थन करते हैं, तथा दलित मुस्लिमों को भी पसमांदा में सम्मिलित करते हुए तथा सभी को अन्य पिछड़ा वर्ग के रूप में चिह्नित करते हैं। परंतु एजाज अली, जिन्होने दलित मुस्लिम शब्द का प्रथम प्रयोग किया तथा दलित मुस्लिम आंदोलन के प्रणेता रहे, का मानना है कि दलित मुस्लिमों के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने की दिशा में वे समस्त संवैधानिक लाभ उसी प्रकार से मिलने चाहिए जिस प्रकार से हिंदू, सिख तथा बौद्ध दलितों को मिलता है। एजाज अली तथा दलित मुस्लिम आंदोलन का यह दावा आरक्षण व्यवस्था पर भारतीय संविधान के प्रावधानों, आदेशों व नियमों से परस्पर विरोधी संवाद करता है। इस पृष्ठभूमि में, यह आलेख सामाजिक न्याय विषय पर संविधान सभा की बहसों, संवैधानिक प्रावधानों, न्यायिक निर्णयों की कसौटी पर पसमांदा मुस्लिमों के प्रतिनिधित्व की खोज का विश्लेषण करता है।

पसमांदा कौन?

भारत के समाजशास्त्रीय अध्ययन की शृंखला में जब भी जाति व्यवस्था का उल्लेख किया जाता है तो तमाम विद्वानों का ध्यान हिंदू समाज व्यवस्था की ओर जाता है तथा हिंदू समाज की जाति व्यवस्था का उदाहरण दिया जाता है। परंतु इस संदर्भ में इस तथ्य की उपेक्षा कर दी जाती है कि भारत के अन्य समुदायों में भी यह सामाजिक स्तरीकरण पाया जाता है। यद्यपि अनेक विद्वानों तथा प्रतिवेदनों ने यह स्पष्ट किया है कि भारतीय मुस्लिम समुदाय में भी जाति व्यवस्था की उपस्थिति है जो सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्रों में इस समुदाय के हितों को प्रभावित करती है। पसमांदा शब्द फारसी भाषा

से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'जो पीछे रह गए हैं', दक्षिण एशिया, विशेष रूप से भारत में व्यापक मुस्लिम समुदाय के भीतर एक सामाजिक और आर्थिक रूप से हाशिए पर रहने वाला समूह है। वे मुख्य रूप से इस्लाम में परिवर्तित निचली जाति और मजदूर वर्ग से बने हैं, जिन्हें ऐतिहासिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त अशराफ या शरीफ मुस्लिम अभिजात वर्ग से बाहर रखा गया है (मंडल, 2012)।[1] पसमांदा मुस्लिम भारत में कुल मुस्लिम आबादी का लगभग 85% हिस्सा हैं, जिन्हें लंबे समय से मुस्लिम पहचान और राजनीति के उस विमर्श से बाहर रखा गया है, जिसे अशराफ, या उच्च जाति मुस्लिम अभिजात वर्ग द्वारा आकार दिया गया है।[2] यद्यपि इनके अनुसार भारतीय मुस्लिम समुदाय में हिंदू समाज की भाँति वर्ण व्यवस्था नहीं है, परंतु जाति समूह जरूर हैं, जो आगे विभिन्न उप-जातियों में विभाजित हैं।

यद्यपि, मुस्लिम समुदाय में जातिगत विभेद को धार्मिक समर्थन प्राप्त नहीं है तथा यह माना जाता है कि इस समुदाय में जातिगत विभेद हिंदू समाज के प्रभाव का परिणाम है।[3] इसके विपरीत कुछ विद्वानों का तर्क है कि मुस्लिम जाति व्यवस्था हिंदू समाज से प्रेरित नहीं है बल्कि यह सदैव से ही इस्लाम का एक घटक रही है।[4] मुस्लिम समुदाय का श्रेणीगत विभाजन करने वाले तीन शब्द अशराफ, अजलाफ और अरजाल अरबी भाषा के हैं। पसमांदा आंदोलन के प्रवर्तक अली अनवर अंसारी के अनुसार अशराफ अरबी शब्द शरीफ से आया है, जिसका अर्थ कुलीनता है। इसमें वे जातियाँ शामिल हैं जिनकी उत्पत्ति भारत के बाहर हुई है। इसी तरह, अजलाफ अरबी शब्द जल्फ से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'निम्न' या 'अपमानित'। इसमें मुख्य रूप से वे जातियाँ शामिल हैं जो स्वच्छ पारंपरिक व्यवसायों में लगी हुई हैं। अजलाफ मुस्लिम ओबीसी या मध्यम जाति के मुस्लिम हैं।[5] तीसरा शब्द, अरजल, अरबी शब्द रजल से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'घृणित' या 'नीच'। इस जाति वर्ग में वे जातियाँ शामिल हैं जो अशुद्ध व्यवसायों में शामिल हैं। इन्हें दलित मुसलमानों के रूप में भी जाना जाता है, जो उनके हिंदू दलित समकक्षों के बराबर हैं।[6]

1901 की जनगणना में भी मुस्लिम समुदाय में जातिगत विभाजन का उल्लेख किया गया है: मुसलमानों में दो विशेष सामाजिक विभाजन पाए जाते हैं - 1) अशराफ या शरीफ तथा 2) अजलाफ। अशराफ से तात्पर्य उच्च वर्ग से संबंध रखने वाले लोगों से है और उसमें गैर-भारतीय मुसलमानों के वंशज तथा हिंदू समाज के उच्च वर्गों से धर्मांतरित लोग शामिल हैं। इनमें सय्यद, शेख, पठान, मुगल, मालिक और मिर्जा आते हैं। इसके अतिरिक्त नीची जाति के मुस्लिम अजलाफ जाने जाते हैं, जिनसे दूसरे मुस्लिम मेलजोल नहीं रखना चाहते। इनमें खेतिहर शेख, पिराही और ठकुराई, दर्जी, जुलाहा, फकीर, रंगरेज, बढ़ई, भठियारा, चिक, चूड़ीहार, दाई, धावा, धुनिया, गद्दी, काला, कसाई, बामू, बेड़िया, भट्ट, छमियाँ, डफाली, धोबी, हज्जाम, मोछू, नगारची, नट, पनवरिया, मदरिया, और टाटिया सम्मिलित हैं। अरजाल या सबसे निम्न दर्जे के मुसलमानों में भनार, हलालखोर, हर्जा, काशी, ललबेगी, मंगता, मेहतर सम्मिलित हैं। अशफाक हुसैन अंसारी के अनुसार भारत के मुसलमानों में भी जातिगत विभेद शताब्दियों से उसी प्रकार चलता आ रहा है जैसा कि हिंदू समाज में रहा है। यदि कोई इससे असहमत होता है तो वह तथ्यों से मुँह मोड़ता है।[7]

पसमांदा आंदोलन और सामाजिक न्याय का सरोकार

पसमांदा आंदोलन, जिसने हाल के वर्षों में प्रमुखता प्राप्त की है, भारत में मुस्लिम समुदाय के हाशिए पर पड़े वर्गों की चिंताओं का प्रतिनिधित्व करता है। इस आंदोलन का उद्देश्य अधीनस्थ मुस्लिम जातियों को संगठित करना है, ताकि उच्च जाति के अशराफ या शरीफ मुसलमानों के आधिपत्य को चुनौती दी जा सके। पसमांदा आंदोलन मुस्लिम समुदाय के भीतर विविधता को सामने लाया है, जिसे प्राय: सार्वजनिक मंचों पर एक अविभाज्य इकाई के रूप में चित्रित किया गया है। यह आंदोलन सांस्कृतिक और प्रतीकात्मक मुद्दों के साथ पुराने मुस्लिम अभिजात वर्ग के आकर्षण के विपरीत, बहुजन मुसलमानों के अस्तित्व के लिए रोजमर्रा के संघर्षों से संबंधित सामाजिक मुद्दों को अग्रभूमि में रखकर एक प्रति-आधिपत्यवादी स्थान बनाने की इच्छा रखता है।[8]

भारत में पसमांदा आंदोलन हाशिए पर पड़े मुस्लिम समुदायों, विशेष रूप से दलित, पिछड़े वर्गों और अन्य पिछड़े वर्गों से संबंधित लोगों के अधिकारों और प्रतिनिधित्व पर जोर देने के लिए एक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक और सामाजिक आंदोलन के रूप में उभरा है।[9] पिछले दशक में, पसमांदा आंदोलन ने महत्त्वपूर्ण गति प्राप्त की है, जिसमें कार्यकर्ता और संगठन अशराफ

मुसलमानों के आधिपत्य को चुनौती देने और पसमांदा समुदायों के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सशक्तीकरण की वकालत करने के लिए अथक प्रयास कर रहे हैं। इस आंदोलन ने पसमांदा समुदायों के सामने आने वाली सामाजिक-आर्थिक और राजनैतिक चुनौतियों को उजागर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जैसे कि शिक्षा तक पहुँच की कमी, रोजगार के अवसर और राजनैतिक प्रतिनिधित्व। पसमांदा आंदोलन पिछड़े मुस्लिम समाज के लिए अपने समुदाय के भीतर तथा बाहर आरक्षण के संवैधानिक प्रावधानों में निहित सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने का पक्षधर है, जो ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर रहने वाले समूहों के लिए शिक्षा और रोजगार जैसे क्षेत्रों में सकारात्मक कार्यवाही और अधिमान्य उपचार प्रदान करता है। मुस्लिम जनसंख्या के भीतर दलितों और अन्य पिछड़े वर्गों वाले पसमांदा समुदायों को लंबे समय से व्यवस्थित भेदभाव और सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक बहिष्कार का सामना करना पड़ा है। उनका तर्क है कि उन्हें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को दिए गए प्रावधानों के समान संवैधानिक रूप से गारंटीकृत आरक्षण लाभों के लिए पात्र होना चाहिए।[10]

यद्यपि, अपने इस सरोकार पर पसमांदा दावे को दो तरफ से प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है: एक, अशराफ मुस्लिम अभिजात वर्ग की ओर से, जो अपना प्रभुत्व बनाए रखना चाहते हैं और दूसरा, भारत सरकार से, जो संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर पसमांदा मुसलमानों को सम्मिलित करने के लिए आरक्षण प्रणाली का विस्तार नहीं कर रही है।[11] इसलिए, पसमांदा आंदोलन अपने लिए सामाजिक न्याय और प्रतिनिधित्व को सुरक्षित करने के लिए एक लंबी कानूनी और राजनैतिक लड़ाई में लगा हुआ है। यदि हम मुस्लिम आरक्षण की माँग का विश्लेषण करें तो इसके तीन पक्ष दृष्टिगत होते हैं। एक, समस्त मुस्लिमों को आरक्षण की माँग; दो, ओबीसी सूची के लिए एक अलग कोटा; तीन, दलित मुसलमानों को अनुसूचित जाति की श्रेणी में शामिल करना।[12]

अपने इस सरोकार पर पसमांदा दावे को दो तरफ से प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है: एक, अशराफ मुस्लिम अभिजात वर्ग की ओर से, जो अपना प्रभुत्व बनाए रखना चाहते हैं और दूसरा, भारत सरकार से, जो संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर पसमांदा मुसलमानों को सम्मिलित करने के लिए आरक्षण प्रणाली का विस्तार नहीं कर रही है। इसलिए, पसमांदा आंदोलन अपने लिए सामाजिक न्याय और प्रतिनिधित्व को सुरक्षित करने के लिए एक लंबी कानूनी और राजनैतिक लड़ाई में लगा हुआ है। यदि हम मुस्लिम आरक्षण की माँग का विश्लेषण करें तो इसके तीन पक्ष दृष्टिगत होते हैं

पहली माँग मुस्लिम समुदाय के अशराफ वर्ग से आती है, जो पूरे मुस्लिम समुदाय को 'पिछड़ा' घोषित करने का पक्षधर है, क्योंकि इनके अनुसार पूरा मुस्लिम समुदाय सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक व राजनैतिक रूप से पिछड़ा हुआ है।[13] परंतु दूसरी ओर, पसमांदा और दलित पृष्ठभूमि के नेताओं और शिक्षाविदों का दावा है कि यह पिछड़ेपन पूरे मुस्लिम समुदाय का नहीं है, बल्कि 85 प्रतिशत समुदाय अजलाफ और अरजल जाति समूहों से संबंधित है। सच्चर समिति ने भी बताया कि निचले स्तर की मुस्लिम जातियाँ ही वास्तविक पीड़ित हैं। राजनैतिक क्षेत्र में भी पूरा नेतृत्व अशराफ मुसलमानों के हाथों में रहा है। रंगनाथ मिश्रा आयोग की रिपोर्ट में मुस्लिम और ईसाई धार्मिक समुदायों को आरक्षण देने की भी सिफारिश की गई, जिसमें कहा गया कि देश के सभी अल्पसंख्यकों को 15 प्रतिशत आरक्षण दिया जाना चाहिए, जिसमें से 10 प्रतिशत मुस्लिमों और अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों को शेष 5 प्रतिशत में शामिल किया जाना चाहिए।[14] अपनी रिपोर्ट के माध्यम से आयोग ने 'आरक्षण के धर्म' के निर्धारण का प्रयास किया और निष्कर्ष निकाला कि भारत का संविधान अनुसूचित जाति वर्ग को किसी भी चुनिंदा धर्म तक सीमित नहीं करता है। चूंकि यह अध्ययन पसमांदा और दलित मुसलमानों के आरक्षण की मांगों पर केंद्रित है, इसलिए यह कुल मुस्लिम आरक्षण की बहस में ज्यादा नहीं जाएगा।

दूसरी तरह की माँग पहले से सम्मिलित अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) की सूची के लिए एक अलग कोटा से संबंधित है। कुछ आँकड़ों और अध्ययनों से पता चलता है कि ओबीसी कोटे का लाभ मुस्लिम ओबीसी को नहीं मिल रहा है।[15] इसलिए एक पृथक ओबीसी श्रेणी की माँग की जा रही है। भारतीय मुसलमानों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर विभिन्न आँकड़ों से पता चलता है कि ओबीसी के कोटे का लाभ इन हाशिए के वर्गों तक नहीं पहुँचता है क्योंकि वे उन लाभों को प्राप्त करने में सक्षम नहीं हैं। उपलब्ध आंकड़ों से संकेत मिलता है कि ओबीसी मुसलमानों को हर पक्ष में उनके पिछड़ेपन के कारण लाभ नहीं होता है।[16] जैसा कि मंडल आयोग बताता है, मुस्लिम ओबीसी कुल ओबीसी के 52 प्रतिशत में से 8.44 प्रतिशत हैं। इस आधार पर, अखिल भारतीय पिछड़ा मुस्लिम मोर्चा और अखिल भारतीय पसमांदा मुस्लिम महाज, दोनों पिछड़े मुसलमानों से संबंधित संगठनों ने 1998 में दिल्ली में आरक्षण बचाओ रैली के दौरान माँग उठाई थी कि ओबीसी कोटे के 27 प्रतिशत के तहत मुस्लिम पिछड़ी जातियों के लिए 8.44 प्रतिशत कोटा निर्धारित किया जाना चाहिए।[17]

आरक्षण की तीसरी माँग दलित मुसलमानों को अनुसूचित जाति की श्रेणी में शामिल करने से संबंधित है। शिक्षा, रोजगार, सामाजिक-आर्थिक और राजनैतिक विषयों में समाज के हाशिए पर पड़े वर्ग, दलितों को उनके उत्थान के लिए सकारात्मक भेदभाव की आवश्यकता थी। इस प्रकार, 1950 में, दलित (हिंदू दलित) को राष्ट्रपति के आदेश से शिक्षा, रोजगार और विधायी और संसदीय सीटों में कोटा से लाभ हुआ।[18] 1990 में

इस आरक्षण को बौद्ध दलितों के लिए भी विस्तारित किया गया।[19] इसके अतिरिक्त, उत्थान के लिए विभिन्न नीतियों को लागू किया गया और एससी-एसटी आयोग की भी स्थापना की गई। उनके अधिकारों की रक्षा के लिए संवैधानिक प्रावधान हैं। दलितों के शोषण को नियंत्रित करने के लिए विशेष कानून लागू किए गए हैं। राज्य विधानसभाओं और संसद में उनका प्रतिनिधित्व है। राजनैतिक प्रतिनिधित्व सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन का एक साधन है। 70 वर्षों के बाद दलित सामाजिक-राजनैतिक पहलुओं में उभरे हैं। दलित मुस्लिम आरक्षण के पक्षकारों के अनुसार चूंकि दलित मुस्लिम हिंदू, सिख और बौद्ध धर्मों के दलितों के समान सामाजिक-आर्थिक स्थिति साझा करते हैं, इसलिए राष्ट्रपति के आदेश 1950 के भेदभावपूर्ण रुख पर गौर करना आवश्यक है। इस संबंध में कई याचिकाएं दायर की गई हैं; दलित मुस्लिम समावेशन को सही ठहराने के लिए कई अध्ययन किए गए हैं। सच्चर समिति और रंगनाथ मिश्रा आयोग ने सिफारिश की कि दलित मुसलमानों को अनुसूचित जाति सूची में वर्गीकृत किया जाना चाहिए।[20]

पसमांदा आंदोलन की चुनौतियाँ और प्रतिरोध

उनके दावे के संवैधानिक आधार के बावजूद, प्रतिनिधित्व और सामाजिक न्याय के लिए पसमांदा आंदोलन की खोज को विभिन्न वर्गों से महत्त्वपूर्ण चुनौतियों और प्रतिरोध का सामना करना पड़ा है। पहला, अशराफ मुस्लिम अभिजात वर्ग, जो ऐतिहासिक रूप से मुस्लिम समुदाय के राजनैतिक और सामाजिक परिदृश्य पर हावी रहे हैं, पसमांदा समुदायों को अपनी शक्ति और विशेषाधिकार देने के लिए अनिच्छुक रहे हैं। पसमांदा कार्यकर्ताओं को अशराफ मुसलमानों की आलोचना और विरोध का सामना करना पड़ा है, जो तर्क देते हैं कि आरक्षण प्रणाली में पसमांदा समुदायों को शामिल करने से अशराफ मुसलमानों का प्रतिनिधित्व और प्रभाव कम हो जाएगा।

दूसरा, पसमांदा समुदाय को अनुसूचित जाति में सम्मिलित करने की माँग मुस्लिम समुदाय के उस दावे के भी विपरीत है जहाँ इसे एक भेदभाव व अस्पृश्यता रहित समाज के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया जाता है तथा इसे मुस्लिम समुदाय की एक प्रमुख विशेषता के रूप में दर्शाया जाता है जिसने दलित हिंदुओं को इस्लाम में मतांतरित होने के लिए उत्प्रेरक का कार्य किया है। इसलिए मुस्लिम समुदाय के उच्च-वर्गीय नेताओं ने भी पसमांदाओं कि इस माँग का कभी समर्थन नहीं किया।

तीसरा, भारत सरकार संभावित संवैधानिक और कानूनी बाधाओं का हवाला देते हुए पसमांदा के दावे के प्रति अपने दृष्टिकोण में सतर्क रही है। सरकार ने तर्क दिया है कि धार्मिक अल्पसंख्यकों को आरक्षण के माध्यम से सामाजिक न्याय सुनिश्चित करते के लिए संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता होगी, जिसे महत्त्वपूर्ण राजनैतिक और कानूनी बाधाओं का सामना करना पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त, सरकार ने तर्क दिया है कि पसमांदा समुदायों की सामाजिक-आर्थिक और शैक्षिक स्थिति सामान्य मुस्लिम आबादी से काफी अलग नहीं है, और आरक्षण प्रणाली में उनके समावेश से लाभों के वितरण में असंतुलन पैदा हो सकता है।

पसमांदा मुस्लिम इस आधार पर स्वयं को अनुसूचित जातियों में सम्मिलित करने की माँग कर रहे हैं कि संविधान के अनुच्छेद 341 में परिकल्पित ऐसी सूची को धर्म-तटस्थ माना जाता है, तथा क्योंकि इस अनुच्छेद स्पष्ट शब्दों में धर्म के आधार पर किसी भी बहिष्कार का उल्लेख नहीं है।[21] यद्यपि अनुसूचित जाति को आरक्षण के विषय पर संविधान सभा की बहसों की बारीकी से जाँच करने पर यह दावा निराधार होता प्रतीत होता है।

धार्मिक अल्पसंख्यकों को आरक्षण पर संविधान सभा का मत

भारत में मुस्लिम और ईसाई दलितों के लिए आरक्षण प्रदान करने पर बहस देश की स्वतंत्रता के बाद से एक विवादास्पद विषय रहा है। संविधान सभा, जिसे भारत के संविधान का मसौदा तैयार करने का काम सौंपा गया था, धार्मिक अल्पसंख्यक अधिकारों की मान्यता के साथ अवसर की समानता को संतुलित करने के इस जटिल प्रश्न से जूझ रही थी। स्वतंत्रता के समय स्थापित अवसर की समानता के ढांचे का उद्देश्य एक पंथनिरपेक्ष राज्य बनाना था जो धार्मिक पहचान के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। यद्यपि, इस सार्वभौमिक दृष्टिकोण की आलोचना धार्मिक अल्पसंख्यकों, विशेष रूप से मुसलमानों और ईसाइयों के सामने आने वाली विशिष्ट चुनौतियों का पर्याप्त रूप से समाधान करने में विफल रहने के लिए की गई है, जिन्हें "सुरक्षा, पहचान और अविकसितता के मुद्दों पर नुकसान और भेदभाव का सामना करना पड़ा है"।[22] इन असंतुलनों को दूर करने और हाशिए पर पड़े धार्मिक समुदायों के लिए पर्याप्त समानता सुनिश्चित करने के साधन के रूप में आरक्षण का प्रावधान प्रस्तावित किया गया है।

24 अगस्त 1949 को संविधान सभा की बहस से पता चलता है कि अनुच्छेद 292 के तहत भारतीय संविधान के मूल मसौदे में धार्मिक अल्पसंख्यकों, अर्थात् मुसलमानों, ईसाइयों, सिखों और पारसियों के लिए आरक्षण शामिल था। कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं ने शुरू में इस प्रावधान को स्वीकार किया था, लेकिन दो साल बाद 1949 में पटेल ने मौलिक अधिकारों पर सलाहकार समिति के अध्यक्ष के रूप में धार्मिक समूहों के हितों की रक्षा के लिए विशेष उपाय प्रदान करने के प्रस्ताव को यह कहकर खारिज कर दिया कि:

...अल्पसंख्यकों ने खुद महसूस करना शुरू कर दिया कि हमें अपने निर्णय पर पुनर्विचार करना चाहिए और महान देशभक्त ईसाई नेता के नेतृत्व में, उन्होंने एक प्रस्ताव लाया कि वे आरक्षण छोड़ना चाहते हैं। और कौन से आरक्षण? -यह सेवाओं में अल्पसंख्यकों का छोटा आरक्षण नहीं है-बल्कि केंद्र और प्रांतों दोनों में विधानसभाओं में बड़ा आरक्षण है। वे संयुक्त निर्वाचक मंडल के लिए सहमत हुए और इस सांप्रदायिक अलगाववाद से उनका कोई लेना-देना नहीं था। जब वे ऐसा चाहते तो मैंने अल्पसंख्यक समिति और सलाहकार समिति की बैठक बुलाई। उनके इशारे पर निर्णय लिए गए।[23]

चूंकि पटेल को हिंदू रूढ़िवादियों का प्रतीक माना जाता है, इसलिए धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण के प्रावधान को हटाने के लिए उन पर दोष मढ़ने का प्रयास किया गया है। लेकिन संविधान सभा की बहसों से पता चलता है कि धार्मिक अल्पसंख्यकों के सदस्यों ने स्वेच्छा से अपना आरक्षण छोड़ दिया था, जो औपनिवेशिक सरकार ने उन्हें प्रदान किया था।[24] प्रारंभ में सरदार वल्लभभाई पटेल के इस प्रस्ताव को सदन ने स्वीकार कर लिया कि जहाँ तक मुसलमानों और सिखों का संबंध है, उनके लिए विधानसभाओं में आरक्षण जाना चाहिए। यह एक समझदारी भरा निर्णय था जो हमें राष्ट्रीयता की ओर एक कदम आगे ले गया। आज फिर से हम एक और निर्णय ले रहे हैं जो हमारे आगे बढ़ने की दिशा में एक और कदम है, और वह यह है कि हम राज्य की सेवाओं में अल्पसंख्यक समुदायों, मुसलमानों और सिखों के लिए आरक्षण को समाप्त करने का प्रस्ताव करते हैं।[25]

एम. अनंतशयनम अयंगर का हस्तक्षेप भी इस तर्क की पुष्टि करता है कि 'अनुच्छेद 292 में मूल रूप से कहा गया था कि मुस्लिम समुदाय, भारतीय ईसाइयों और अन्य लोगों के लिए आरक्षण होगा। लेकिन उन्होंने स्वेच्छा से इसे छोड़ दिया है और आरक्षण अब केवल अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए किया जाना है।'[26] इसका स्वागत करने वाले जसपत राय कपूर ने अपना मत दिया कि:

"अलग निर्वाचन क्षेत्रों के लिए सीटों के संबंध में आरक्षण के दावों को छोड़ने का समझौता अल्पसंख्यक समिति में हुआ था। उस समझौते से हमारे मुस्लिम मित्र, हमारे ईसाई मित्र और हमारे सिख भाई भी विभिन्न विधानसभाओं में सीटों के आरक्षण को छोड़ने पर सहमत हुए हैं। मैं इस अवसर पर उन सभी को इस विवेकपूर्ण और साहसिक निर्णय के लिए बधाई देना चाहूंगा जो उन्होंने देश के व्यापक हित में लिया है। मैं अपने मुस्लिम भाइयों को विशेष रूप से बधाई देना चाहूंगा क्योंकि पिछले कई वर्षों से उनके पास अलग-अलग निर्वाचक मंडल और अलग-अलग प्रतिनिधित्व है और वे सोचने लगे थे कि इसमें ही उनका उद्धार है।"[27]

संविधान सभा की बहसों के दौरान एक प्रमुख चिंता औपनिवेशिक राज्य के तहत सांप्रदायिक कोटा की मिसाल थी, जिसे "अल्पसंख्यक समुदाय के मतदाताओं के लिए सांप्रदायिक अपीलों को प्रोत्साहित करने" के रूप में देखा गया था और ध्रुवीकरण में योगदान दिया था जिसके कारण विभाजन हुआ।[28] ऐसी आशंका थी कि मुस्लिम और ईसाई दलितों को आरक्षण देने से धार्मिक विभाजन और बढ़ सकता है और राष्ट्रीय एकता कमजोर हो सकती है। दूसरी ओर, धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण के समर्थकों ने तर्क दिया कि मानदंड धार्मिक संबद्धता के बजाय आर्थिक पिछड़ेपन पर आधारित होना चाहिए, ताकि इन समुदायों के सबसे वंचित वर्गों को लक्षित किया जा सके। राष्ट्रीय धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों के आयोग ने सरकारी सेवाओं में मुसलमानों के लिए 10% आरक्षण की सिफारिश की, यह मानते हुए कि "न्यायपालिका ने भारत में मुसलमानों, ईसाइयों और अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों की रक्षा करने वाले कई ऐतिहासिक और ठोस निर्णय दिए हैं।[29]

अंतत:, संविधान सभा ने धार्मिक पहचान के आधार पर आरक्षण के लिए स्पष्ट प्रावधानों को शामिल नहीं किया, जो समानता, अल्पसंख्यक अधिकारों और औपनिवेशिक व्यवस्था के तहत सांप्रदायिक राजनीति की विभाजनकारी विरासत के बीच जटिल संतुलन को दर्शाता है। यद्यपि, समकालीन भारत में बहस जारी है, क्योंकि विभिन्न समूह धार्मिक अल्पसंख्यक समुदायों की अधिक मान्यता और सशक्तीकरण की माँग करना जारी रखते हैं।

भारत में दलित मुस्लिमों को आरक्षण की मांगों, उसके किए जाने वाले आंदोलनों तथा उस पर विभिन्न आपत्तियों के बीच आरक्षण की संवैधानिक स्थिति का विश्लेषण आवश्यक है। किसी राज्य अथवा संघ राज्य क्षेत्र में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति कौन होगा इसके निर्णय का अधिकार अनुच्छेद 341 तथा 342 के माध्यम से भारतीय राष्ट्रपति को दिया गया है। भारतीय संविधान अपने विभिन्न अनुच्छेदों के माध्यम से सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए समान अवसर व समान प्रतिनिधित्व का प्रावधान करता है

आरक्षण की संवैधानिक स्थिति

भारत में दलित मुस्लिमों को आरक्षण की मांगों, उसके किए जाने वाले आंदोलनों तथा उस पर विभिन्न आपत्तियों के बीच आरक्षण की संवैधानिक स्थिति का विश्लेषण आवश्यक है। किसी राज्य अथवा संघ राज्य क्षेत्र में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति कौन होगा इसके निर्णय का अधिकार अनुच्छेद 341 तथा 342 के माध्यम से भारतीय राष्ट्रपति को दिया गया है। भारतीय संविधान अपने विभिन्न अनुच्छेदों के माध्यम से सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए समान अवसर व समान प्रतिनिधित्व का प्रावधान करता है। अनुच्छेद 15 धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है और राज्य को सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के नागरिकों या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान करने की अनुमति देता है। अनुच्छेद 16 सार्वजनिक रोजगार में समान अवसर की गारंटी देता है और राज्य को इन कम प्रतिनिधित्व वाले समूहों के लिए नौकरियों का एक निश्चित प्रतिशत आरक्षित करने में सक्षम बनाता है। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 330 लोकसभा में तथा अनुच्छेद 332 राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटें आरक्षित करता है, जिससे उनका राजनैतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित होता है। संविधान के 73वें तथा 74वें

संशोधन के द्वारा क्रमशः अनुच्छेद 243-घ तथा अनुच्छेद 243-न, भारत की स्थानीय शासन की विकेंद्रीकृत प्रणाली के सभी स्तरों पर ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों के सदस्यों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित करता है तथा उन आरक्षित स्थानों में इन वर्गों की महिलाओं के लिए एक-तिहाई आरक्षण का भी प्रावधान करता है।

यद्यपि उपरोक्त प्रावधान केवल अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लिए हैं, जिनमें आरक्षण का मापक केवल सामाजिक व आर्थिक स्थिति को बनाया गया है। परंतु इन अनुच्छेदों को समय-समय पर दिये गए विभिन्न संविधान आदेशों के प्रकाश में समझा जाना चाहिए। संविधान (अनुसूचित जातियाँ) आदेश, 1950 तथा संशोधित आदेश, 1990 में यह स्पष्ट किया गया है कि हिंदू, सिख तथा बौद्ध धर्म से अलग किसी अन्य धर्म को मानने वाला कोई भी व्यक्ति अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं माना जाएगा, तथापि अनुसूचित जनजाति के रूप में समझे जाने के लिए कोई धार्मिक रुकावट नहीं है। इन आदेशों के आधार पर पसमांदा मुस्लिमों द्वारा किए जाने वाला आरक्षण संबंधी दावा निराधार होता दिखाई देता है। परंतु पसमांदा आंदोलन की एक प्रमुख माँग यह भी है कि आरक्षण संबंधी ये संवैधानिक आदेश भेदभावपूर्ण हैं, जिनमें संशोधन की आवश्यकता है।

धार्मिक आरक्षण पर प्रमुख न्यायिक निर्णय

भारत में धार्मिक आरक्षण का मुद्दा एक विवादास्पद और जटिल विषय रहा है, जिसमें भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुद्दे के आसपास कानूनी परिदृश्य को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। न्यायपालिका हाशिए पर पड़े धार्मिक समुदायों के लिए सकारात्मक कार्रवाई प्रदान करने की आवश्यकता के साथ भारतीय संविधान में निहित समानता के मौलिक अधिकार को संतुलित करने से जूझ रही है।[30] इस विषय पर ऐतिहासिक फैसलों में से एक 1963 में एम. आर. बालाजी बनाम मैसूर राज्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला था, जहां अदालत ने माना कि केवल धर्म पर आधारित आरक्षण असंवैधानिक थे। अदालत ने इस बात पर जोर दिया कि आरक्षण धार्मिक पहचान के बजाय सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन पर आधारित होना चाहिए।

हालांकि, अदालत का रुख समय के साथ विकसित हुआ है, और इसने कुछ धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए विशेष प्रावधान प्रदान करने की आवश्यकता को स्वीकार किया है। 1992 में इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ मामले में, अदालत ने कहा कि हिंदू जाति प्रणाली हिंदुओं तक ही सीमित नहीं थी और आरक्षण नीति को अन्य धार्मिक समुदायों तक बढ़ाया जा सकता था यदि वे सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े पाए गए।[31] यद्यपि केंद्र एवं विभिन्न राज्यों में मुस्लिम समुदाय को ओबीसी आरक्षण का लाभ तो प्राप्त हो रहा है[32], परंतु धर्म-परिवर्तन कर इस्लाम को स्वीकार कर चुके दलितों को अनुसूचित जाति के आरक्षण का लाभ मिलना चाहिए या नहीं इस विषय से संबंधित याचिकाएँ सर्वोच्च न्यायालय में लंबित हैं। इस संबंध में मतांतरण एवं सामाजिक न्याय से संबद्ध विषयों की जाँच के लिए भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश के. जी. बालकृष्णन की अध्यक्षता में 2022 में आयोग का गठन भी किया गया है, जिसकी रिपोर्ट प्रस्तुत करने की समय सीमा अक्तूबर 2025 है। ईसाई और इस्लाम मत स्वीकार कर चुके दलितों को अनुसूचित जाति का दर्जा देने का राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग ने भी विरोध किया है।[33]

निष्कर्ष

पसमांदा मुस्लिम समाज की प्रतिनिधित्व की खोज जहाँ एक ओर अपने समुदाय के भीतर तथा बाहर सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने पर केंद्रित थी। अपने इस प्रयास में इसका सरोकार समाज से भी है तथा संविधान से भी। इस आंदोलन को दोनों ही स्तरों पर अपनी दावेदारी का औचित्य सिद्ध करना आवश्यक है। अल्पसंख्यकों को आरक्षण के संबंध में संविधान सभा की बहसों, संविधान के प्रावधानों तथा न्यायिक निर्णयों की समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति की सूची कभी भी धर्म-तटस्थ नहीं रही है। जहाँ तक सिख समुदाय के पिछड़े वर्गों को अनुसूचित जाति में सम्मिलित करने का प्रश्न है, तो उन्होने स्वयं को इस सूची में सम्मिलित करने की शर्त पर पृथक-निर्वाचन की व्यवस्था को छोड़ने का निर्णय किया था। परंतु मुस्लिम समुदाय ने अपने पांथिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकारों पर अधिक ध्यान दिया, आरक्षण पर नहीं। मुस्लिम समुदाय को अनुसूचित जाति की सूची से बाहर रखा गया, क्योंकि उनके नेताओं ने ऐतिहासिक रूप से अस्पृश्यता के लिए किसी भी समझौते, विशेष रूप से 1932 के पूना समझौते में भाग लेने से परहेज किया था। उनकी भागीदारी से भारत के अल्पसंख्यक धर्मों की समतावादी प्रकृति के दावों पर सवाल उठ सकते थे। इस संबंध में समस्याओं ने मुस्लिम सदस्यों को संविधान सभा में पसमांदा मुसलमानों के लिए अनुसूचित जाति दर्जे का मुद्दा उठाने से हतोत्साहित किया है, क्योंकि ऐसा करने से उनके धर्म का स्वतंत्र रूप से पालन करने और प्रचार करने के अधिकार

पसमांदा मुस्लिम समाज की प्रतिनिधित्व की खोज जहाँ एक ओर अपने समुदाय के भीतर तथा बाहर सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने पर केंद्रित थी। अपने इस प्रयास में इसका सरोकार समाज से भी है तथा संविधान से भी। इस आंदोलन को दोनों ही स्तरों पर अपनी दावेदारी का औचित्य सिद्ध करना आवश्यक है। अल्पसंख्यकों को आरक्षण के संबंध में संविधान सभा की बहसों, संविधान के प्रावधानों तथा न्यायिक निर्णयों की समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति की सूची कभी भी धर्म-तटस्थ नहीं रही है

की उनकी माँग खतरे में पड़ सकती है। वर्तमान भारत में अनुसूचित जाति के दर्जे की बढ़ती माँग न केवल पसमांदा मुसलमानों तक सीमित है, बल्कि अन्य सामाजिक समूहों तक भी फैली हुई है। पसमांदा मुसलमानों को अनुसूचित जाति से बाहर करने को केवल सांप्रदायिक भेदभाव के मामले के रूप में प्रस्तुत करना, स्पष्ट रूप से ना केवल इसमें सम्मिलित विषयों की जटिलता के साथ अन्याय है अपितु यह आरक्षण संबंधी विभिन्न अनुच्छेदों में निहित संवैधानिक तार्किकता के भी विपरीत है।

संदर्भ-

1. सी. बी. मंडल. (2012). सोशियो-इकनॉमिक पोजिशन ऑफ मुस्लिम्स एंड द क्वेस्चन ऑफ रिजर्वेशन. (*वॉइस ऑफ दलित)*, 5(2), 139-152. doi:https://doi.org/10.1177/0974354520120201
2. तौसिफ अहमद. (2024). पसमांदा एंड दलित मुस्लिम्स: ए डिस्कशन ऑन रिजर्वेशन एंड रिप्रजेंटेशन. (*जर्नल ऑफ पॉलिटी एंड सोसाइटी)*, 15(2), 137-152.
3. जी. अंसारी (1960). *मुस्लिम कास्ट इन उत्तर प्रदेश: ए स्टडी ऑफ कल्चर कांटैक्ट.* लखनऊ: द एथ्नोग्राफिक एंड फोक कल्चर सोसाइटी
4. अली अनवर (2001). मसावत की जंग. न्यू दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
5. तदैव
6. तौसिफ अहमद. (2024). तदैव
7. अशफाक हुसैन अंसारी. (2010). इंट्रोडक्शन. अशफाक हुसैन अंसारी में, *बेसिक प्रॉब्लम्स ऑफ ओबीसी एंड दलित मुस्लिम्स.* न्यू दिल्ली: सीरियल्स पब्लिकेशन.
8. खालिद अनीस अंसारी. (2018). कंटेस्टिंग कम्यूनलिज्म: प्रेलिमिनरी रिफ्लेक्शंस ऑन पसमांदा मुस्लिम्स नैरेटिव्स फ्रॉम नॉर्थ इंडिया. *प्रबुद्ध: जर्नल ऑफ सोशल इक्वेलिटी*, 1(1), 78-104.
9. एम. अली. (2010). पॉलिटिक्स ऑफ 'पसमांदा' मुस्लिम्स: ए केस स्टडी ऑफ बिहार. *हिस्ट्री एंड सोशियोलॉजी ऑफ साउथ एशिया, 4(2)*, 129-144. doi:https://doi.org/10.1177/223080751000400203
10. तौसिफ अहमद. (2024). *तदैव*
11. ए. आलम. (2009). चेलेंजिंग द अशरफ्स: द पॉलिटिक्स ऑफ पसमांदा मुस्लिम महाज1. जर्नल ऑफ माइनॉरिटी अफेयर्स, 29(2), 171-181.doi:https://doi.org/10.1080/ 13602000902943542
12. तौसिफ अहमद. (2024). *तदैव*
13. राइट, टी. पी. (1997). ए न्यू डिमांड फॉर मुस्लिम रिजर्वेशन इन इंडिया. एशियन सर्वे, 37(9), 852-858. http://www.jstor.org/stable/2645702 से पुनर्प्राप्त.
14. राष्ट्रीय धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यक आयोग रिपोर्ट (रंगनाथ मिश्रा आयोग रिपोर्ट), 2007
15. एडीआरआई (2017). स्टेटस ऑफ मुस्लिम यूथ इन बिहार: ए क्वांटिटेटिव स्टेटमेंट. पटना: एशियन डेवलपमेंट रिसर्च इंस्टीट्यूट. सिन्हा, ए. (2010). दलित, डबल एक्सक्लूजन: ए स्टडी ऑन दलित मुस्लिम्स इन सेलेक्टेड स्टेट्स ऑफ इंडिया. इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट, न्यू दिल्ली. अली अनवर (2001). मसावत की जंग. न्यू दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
16. सच्चर कमेटी रिपोर्ट (2006)
17. तौसिफ अहमद. (2024). तदैव
18. संविधान (अनुसूचित जातियाँ) आदेश, 1950
19. संविधान (अनुसूचित जातियाँ) आदेश (संशोधन) अधिनियम, 1990
20. ए. रहमान (2019). डिनायल एंड डेप्रिवेशन: इंडियन मुस्लिम्स आफ्टर द सच्चर कमेटी एंड रंगनाथ मिश्रा कमीशन रिपोर्ट्स. न्यू दिल्ली: मनोहर, पृ॰ 56
21. एम. अली. (2012). इंडियन मुस्लिम ओबीसीश्ज: बैकवर्डनेस एंड डिमांड फॉर रिजर्वेशन. इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 47(36), 74-79. ; एम. एस. आलम. (2010). सोशल एक्सक्लूजन ऑफ मुस्लिम्स इन इंडिया अँड डेफिशिएंट डिबेट्स अबाउट अफरमेटिव एक्शन: सजेशन्स फॉर ए न्यू अप्रोच. साउथ एशिया रिसर्च, 30(1), 43-65.
22. एच. किम. (2019). कॉन्स्टीट्यूशन-मेकिंग, इक्वेलिटी ऑफ अपोर्च्यूनिटी एंड रिलीज्यस माइनोरिटीज: रीअसेसिंग द क्रिटिकल जंक्चर. द स्ट्गल फॉर इक्वेलिटी: इंडियाज मुस्लिम्स एंड रीथिंकिंग द यूपीए एक्सपिरियन्स (पृ. 39-64). में केंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस
23. कॉस्टिट्यूएंट असेंबली डिबेट्स: आधिकारिक रिपोर्ट 6-10-1949 से 17-10-1949 (खंड X-XII) नई दिल्ली: लोकसभा सचिवालय.
24. कॉस्टिट्यूएंट असेंबली डिबेट्स, खंड-9, 24 अगस्त 1949
25. कॉस्टिट्यूएंट असेंबली डिबेट्स, खंड-10, 14 अक्तूबर 1949
26. कॉस्टिट्यूएंट असेंबली डिबेट्स, खंड-9, 24 अगस्त 1949
27. तदैव
28. टी. पी. राइट. (1997). ए न्यू डिमांड फॉर मुस्लिम रिजर्वेशंस इन इंडिया. एशियन सर्वे, 37(9), 852-858. doi:https://doi.org/10.2307/2645702
29. ए. चड्ढा. (6 मार्च 2015). ए केस ऑफ रिजर्वेशन इन फेवर ऑफ रिलीज्यस माइनोरिटीज. एसएसआरएन इलेक्ट्रोनिक जर्नल. doi:https://doi.org/10.2139/ssrn.2574651
30. तदैव.
31. एच. किम. (2019). तदैव.
32. वर्तमान में मुस्लिम समाज की 36 जातियों को केंद्रीय स्तर पर श्रेणी 1 और 2ए के अंतर्गत ओबीसी आरक्षण दिया जाता है। केरल में मुस्लिमों को रोजगार में 10% तथा उच्च शिक्षा में 8% आरक्षण ओबीसी के कोटे से ही दिया जाता है। तमिलनाडु में पिछड़े वर्ग के मुस्लिमों को 3.5% आरक्षण दिया गया है, जिसमें मुस्लिमों की 95% जातियाँ सम्मिलित हैं। बिहार में 2023 में हुए जातिगत सर्वेक्षण में 73% मुस्लिमों को पिछड़ा वर्ग माना गया। कर्नाटक में सभी मुस्लिमों को 4% आरक्षण मिलता है।
33. गीता सुनील पिल्लई. (6 नवंबर 2024). द मूकनायक. https://www.themooknayak.com/dalit/reservation-for-converts-balakrishnan-commission-to-submit-report-next-year-why-is-ncsc-opposed-to-granting-sc-status-to-converted-dalits से, 3 जनवरी 2025 को पुनर्प्राप्त

डॉ. अबू होरैरा

अशराफ़, अजलाफ़ और अरज़ाल मुस्लिम

भारत के मुस्लिम समाज में जाति-व्यवस्था एक जटिल प्रश्न है। इससे जुड़े शब्दों के भाषा वैज्ञानिक विवेचन के साथ एक सामाजिक आकलन

प्रस्तुत शोध आलेख में जिन शब्दकोशों का प्रयोग किया गया है वे मूलत: अरबी, फारसी, उर्दू भाषा के हैं। जो इन भाषाओं के प्रसिद्ध शब्दकोश हैं जिनमें अल्कामुस, फिरोजुल लुगात व फ़रहंग-ए-फारसी है। भाषा भिन्न होने के नाते हमने उन शब्दों के शब्दकोशों का प्रयोग लिप्यंतरण के रूप में किया है। साथ ही अंत में जिसका संदर्भ भी प्रस्तुत किया है।

भारतीय मुसलमानों की सामाजिक व्यवस्था में जाति एक बड़ा जटिल प्रश्न है। किंतु मुसलमान अपने समाज में जात-पाँत, ऊँच-नीच जैसे भेदों के अस्तित्व से इनकार करते हैं। इस कड़ी में सर्वप्रथम जब हम अशराफ़, अजलाफ़ व अरज़ाल शब्दों के उत्पत्ति की पड़ताल करते हैं तो पाते हैं कि 'अशराफ़' शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के 'शर्फ़' शब्द से हुई है, 'अल्कामुस' (अरबी-उर्दू) शब्दकोश के अनुसार 'अल-अशराफ़' (अशराफ़) जिसका अर्थ है- 'बड़े लोग' या 'बा-हैसियत लोग'।[1] 'अजलाफ़' शब्द का मूल शब्द 'जिल्फ' है जिसका बहुवचन रूप 'अजलाफ़' है और अर्थ है- 'उजड्ड', 'बेवकूफ़'[2] और 'अरज़ाल' शब्द की उत्पत्ति 'रज़्ल' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है- 'बदतरीन', 'बहुत घटिया', 'निचले दर्जे का'[3]। ये ध्यातव्य रहे कि उक्त शब्द किसी जाति व्यवस्था से संबंधित नहीं है, इसका कारण यह है कि अरब समाज में भारतीय समाज जैसी जाति व्यवस्था नहीं थी।

फारसी-उर्दू शब्दकोश में, फ़रहंग-ए-फारसी शब्दकोश के अनुसार 'अशराफ़' शब्द का अर्थ- 'बुजुर्ग'।[4] 'अजलाफ़' का अर्थ- 'कमीने लोग', 'अहमक लोग'।[5] व 'अरज़ाल' का अर्थ- 'ज़लील', 'अदना' है।[6]

फारसी-अंग्रेजी शब्दकोश के अनुसार 'अशराफ़' शब्द का अर्थ- 'Noble', 'Grandees', 'Gentlemen', 'Men of high extraction'.[7] 'अजलाफ़' शब्द का अर्थ- 'Ignoble', 'Wretches', 'Tyrants'.[8] व 'अरज़ाल' का अर्थ- 'while', 'ignoble', 'the vulgar', 'the rabble' है।[9]

उर्दू शब्दकोश फिरोजुल लुगात में 'अशराफ़' शब्द का अर्थ- 'आली खानदान वजी इज्जत लोग', 'मोहज्जब' और 'शाइस्ता लोग'।[10] 'अजलाफ़' का अर्थ- 'कमीने', 'शूद्र', 'ज़लील पेशों के लोग'।[11] व 'अरज़ाल' का अर्थ- 'बहुत ज़लील', 'निहायत कमीना' है।[12]

राबिया उर्दू लुगत के अनुसार 'अशराफ़' शब्द का अर्थ- 'भलेमानुस', 'मोहज्जब'।[13] 'अजलाफ़' का अर्थ-'कमीने रजील', 'छोटे तबके के आदमी', 'घटियल', 'शूद्र'।[14] व 'अरज़ाल' का अर्थ- 'निहायत ज़लील', 'निहायत कमीना', 'बहुत ही काबिल-ए-नफरत शख्स' है।[15]

अरबी शब्दकोशों में अशराफ़, अजलाफ़ व अरज़ाल शब्द का अर्थ सामान्य है और ये शब्द किसी जाति या वर्ग से संबंधित नहीं है किंतु उर्दू शब्दकोश में इन तीनों शब्दों का जो अर्थ दिया गया है वह सामाजिक संरचना की ओर संकेत करते हैं और ये शब्द जातीय अस्मिता की निशानदेही करते हैं। भारतीय सामाजिक संरचना के अनुरूप इन शब्दों का अर्थ मनुष्य के व्यवहारिक प्रयोग व पेशों के अनुसार जाति का रूप धारण कर लिया। सच्चर समिति रिपोर्ट के अनुसार- "संवैधानिक (अनुसूचित जाति) आदेश 1950, राष्ट्रपति का आदेश 1950 के नाम से लोकप्रिय, के अनुसार अनुसूचित जातियों का दर्जा केवल उन हिंदू समूहों को है जिनका व्यवसाय स्वच्छ नहीं है। अत: उनके अहिंदू समतूल्यों को मध्यस्तरीय जातियों को परिवर्तित माना गया और इन्हें ओबीसी घोषित किया गया। इसलिए मुस्लिम में ओबीसी की दो मुख्य श्रेणियाँ है। हलालखोर, हेला, लालबेगी

या भंगी (जमादार), धोबी (कपड़ा धुलने वाले), नाई या हज्जाम (बाल काटने वाले), चिक (कसाई), फकीर (भिक्षुक) आदि जो अरज़ाल में आते हैं और जो अछूतों से इस्लाम में परिवर्तित हैं। मोमिन या जुलाहा (बुनकर), दर्जी या इदरिस (कपड़ा सिलने वाले), राईन या कुजड़ा (सब्जी बेचने वाले) वे अजलाफ़ हैं, जो स्वच्छ व्यावसायिक जातियों से परिवर्तित हैं इसलिए मुस्लिमों में तीन समूहों को समझा जा सकता है- (1) वे जिनमें कोई सामाजिक अयोग्यता नहीं है-अशराफ़ (2) वे जो हिंदू ओबीसी के समतुल्य हैं- अजलाफ़ और (3) वे जो हिंदू एससी के समतुल्य हैं- अरज़ाल। वे जो मुस्लिम ओबीसी से संबोधित किये जाते हैं वे श्रेणी (2) और (3) को मिलाकर हैं।[16]" इस तरह से इनके वर्गीय विभाजन को देखें तो अशराफ़ उच्च जाति, अजलाफ़ निम्न जाति व अरज़ाल अति निम्न जाति के लिए रूढ़ हो गया। इस तरह अशराफ़ के अंतर्गत भारतीय मुसलमानों में उच्च जाति व अजलाफ़ और अरज़ाल की श्रेणी के अंतर्गत निम्न-अति निम्न जाति के मुसलमान आते हैं; जिन्हें सामूहिक तौर पर 'पसमांदा' मुसलमान कहा जाता है।

'मुस्लिम कास्ट इन उत्तर प्रदेश' नामक पुस्तक में गौस अंसारी अशराफ़ के संबंध में लिखते हैं- "इस प्रकार भारतीय मुसलमानों में प्राचीनकाल के आर्यों की ही तरह सामाजिक पृथक्करण नस्ली भेद पर आधारित था। भारतीय मुसलमानों की दो मुख्य श्रेणियों के बीच एक स्पष्ट विभाजन विदेशी मूल और देसी मूल के आधार पर है। अशराफ़ और शुरफा जैसे शब्दों में यह साफ दिखाई भी देता है, जिनका प्रयोग उच्च नस्ल के मुसलमानों को (जिनमें अधिकांशत: विदेशी मूल के - सय्यद, शेख, मुगल और पठान हैं) व्यक्त करने के लिए किया जाता है, जो भारतीय मूल के मुसलमानों के सीधे विपरीत हैं। 'अशराफ़' और 'शुरफा' ये दोनों ही शब्द अरबी के शब्द 'शरीफ' के बहुवचन हैं, जिनका अर्थ है 'गणमान्य'।[17]"

वर्गीय व नस्लीय विभाजन की त्रासदी लगभग विश्व में सभी समाज व संस्कृति में किसी न किसी रूप में व्याप्त है। भारत में इस्लाम के फैलने से केवल धर्म का नाम परिवर्तित हुआ किंतु संस्कृति में किसी भी प्रकार का आमूल-चूल परिवर्तन दिखाई नहीं देता। इसका मुख्य कारण है कि भारत में आने वाली संस्कृतियों में जाति-भेद और नस्ल-भेद जैसी व्यवस्था पहले से ही विद्यमान थी। भारत में आने के बाद यहाँ की संस्कृति बाहरी मुसलमानों के लिये अनुकूल सिद्ध हुई। इसलिए सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था यथास्थिति बनी रही। परिणामस्वरूप मुसलमानों ने अपने सिद्धांतों के अनुरूप भारतीय संस्कृति को आत्मसात कर लिया। किंतु वर्गीय, नस्लीय व जाति विभाजन बना रहा। हिंदू निम्न जातियों को सामाजिक रूप से जाति के नाम पर अपमानित, अनादृत, शोषित, प्रताड़ित व उत्पीड़ित किया गया। इस पीड़ा से बचने के लिए उन्हें दूसरी संस्कृति व समाज का सहारा लेना पड़ा और उनके समक्ष विकल्पों में एक विकल्प इस्लामिक संस्कृति भी दिखाई दी। जिसमें अपना पुनरुत्थान हिंदू निम्न जाति वर्ग ने देखा और इस्लामिक संस्कृति को आत्मसात कर लिया। लेकिन उसकी जातीय अस्मिता और सामाजिक व्यवस्था पेशे के अनुरूप बनी की बनी रही। जो प्रत्यक्ष रूप से आज के मुस्लिम समाज में देखने को मिलती है।

भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था के आधार पर जातिगत बंटवारा हुआ। जो पूर्णत: असमानता, वर्चस्व व शोषण पर आधारित है। इसी जातिगत असमानता, वर्चस्व और शोषण के विरूद्ध संघर्ष की एक लंबी परंपरा रही है। जहाँ सदियों से एक समुदाय सामाजिक न्याय के लिए संघर्षरत है। जिसे आज हम दलित समुदाय के नाम से जानते हैं। भारत में व्याप्त धर्म कोई भी हो जातिगत विविधता की संरचना समान ही है। वह चाहे सिक्ख हो, जैन हो, ईसाई हो या मुसलमान। जैसा कि महात्मा गाँधी ने दलित को हरिजन से अभिहित कर सम्मान का नजरिया देने की कोशिश की। वे 'हरिजन' नामक लेख में लिखते हैं- "चाहे कोई हरिजन नाममात्र को एक ईसाई, मुस्लिम या हिंदू और अब एक सिख हो जाए वह तब भी एक हरिजन ही रहेगा। वह तथाकथित हिंदू धर्म से विरासत में प्राप्त धब्बों को नहीं मिटा सकता, चाहे वह अपनी वेश-भूषा बदलकर स्वयं को कैथोलिक हरिजन या मुस्लिम हरिजन या नव मुस्लिम या नव सिख कहला ले, किंतु उसकी अस्पृश्यता पीढ़ियों तक उसका पीछा नहीं छोड़ेगी।[18]"

भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात सामाजिक न्याय का संघर्ष तेज हुआ। इन जातियों ने न्याय के लिए संघर्ष किया। जबकि संविधान में हिंदू, सिक्ख, व जैन धर्म के अंतर्गत आने वाली जातियों को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से सशक्त बनाने व समानता हेतु आरक्षण का प्रावधान किया गया। किंतु यह न्याय अधूरा रहा क्योंकि इस्लाम और ईसाई के अंतर्गत आने वाली इन जातियों के लिए कोई प्रावधान नहीं है। जिसके लिए संघर्ष जारी है।

विशेष रूप से भारतीय सामाजिक संरचना की बात करें तो भारतीय सामाजिक संरचना का आधार जाति है; भारतीय मुस्लिम समाज की सामाजिक संरचना का आधार भी जाति है। यही कारण है कि इस्लाम में समानता के सारे प्रारूपों को मद्देनजर रखते हुए देखते हैं तो हमें मालूम होता है कि यहाँ भी अशराफ़, अजलाफ़ और अरज़ाल जैसे तीन वर्ग हैं। इन तीन वर्गों की भारतीय सामाजिक जाति व्यवस्था के विभाजन का रूप भारतीय सामाजिक हिंदू जाति व्यवस्था के अनुरूप दिखाई पड़ता है। अशराफ़ वर्ग के अंतर्गत आने वाली जातियाँ- सय्यद, शेख, पठान, खान, मुगल, मीर, मिर्जा इत्यादि हैं। अजलाफ़ के अंतर्गत दर्जी, जुलाहा, फकीर, रँगरेज, बाढ़ी, भठियारा, चिक, चूड़ीदार, दाई, धोबी, धुनिया, गद्दीदार, कलाल, कसाई, कुला, कुँजड़ा, लहेरी, माहीफरोश, मल्लाह, नालिया, निकारी आदि जातियाँ आती हैं व अरज़ाल के अंतर्गत भानार, हलालखोर, लालबेगी, भोगता, मेहतर, नट व डफाली आदि आते हैं। चूँकि भारत देश में विविधता है इसलिए यहाँ एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाति की वरीयता प्रदेश के अनुसार भी निर्भर है।

भारतीय सामाजिक न्याय व्यवस्था के अनुसार अशराफ़ वर्ग को सामान्य जाति व अन्य दोनों (अजलाफ़ व अरज़ाल) वर्गों को अन्य पिछड़ा वर्ग व अनुसूचित जनजाति में समाहित किया गया। चूँकि सामाजिक न्याय को लेकर भारतीय स्वतंत्रता के पहले से ही इसकी संकल्पना का सूत्रपात हो चुका था जिसका प्रमाण है 'मोमिन कॉन्फ्रेंस'। तत्पश्चात सामाजिक न्याय को लेकर इन वर्गों में चेतना का विकास हुआ और वे संघर्ष करना शुरू किए।

यह संघर्ष आंदोलन का रूप ले लिया जिसे हम 'पसमांदा' आंदोलन के नाम से जानते हैं। 'पसमांदा' शब्द अजलाफ़ व अरज़ाल वर्ग के जातियों के लिए जाना जाने लगा। पसमांदा

शब्द की उत्पत्ति व इसकी परिभाषा की बात करें तो पसमांदा शब्द फारसी भाषा के दो शब्दों 'पस' और 'मांदा' शब्द से बना है। जदीद फिरोजुल लुगात के अनुसार 'पस' का अर्थ है-'पीछे', 'बाद', 'पीछे-पीछे'।[19] व 'मांदा' का अर्थ- 'जो बाकी रहा है'।[20] राबिया उर्दू लुगत के अनुसार पसमांदा का अर्थ- 'पीछे रहा होना' है।[21] अत: 'पसमांदा' का अर्थ 'जो पीछे छूट गया' अर्थात 'पिछड़ा' या 'निचला'।

"पसमांदा को परिभाषित करते हुए 'मसावात की जंग' में अली अनवर साहब लिखते हैं कि 'पस' फारसी का शब्द है, जिसका मायने 'पीछे' होता है। 'मांदा' का अर्थ है 'छूट गया' अर्थात् 'जो पीछे छूट गया', उसे ही पसमांदा कहा जाता है।"[22]

पसमांदा कार्यकर्ता अब्दुल्लाह मंसूर ने अपने लेख में पसमांदा को इस तरह परिभाषित किया है कि "'पसमांदा' एक फारसी शब्द है, जिसका अर्थ है- 'जो पीछे रह गए हैं'। यह शूद्र (पिछड़े) और अति-शूद्र (दलित) जातियों से संबंधित मुसलमानों को संदर्भित करता है। पसमांदा शब्द वर्तमान में पसमांदा विचारधारा और आंदोलन से जोड़कर देखा जाता है। पसमांदा आंदोलन पोस्ट मंडल आंदोलन के रूप में (1990 के दशक में) मुस्लिम समुदाय के भीतर पसमांदा जातियों द्वारा सामना किए जाने वाले भेदभाव और हाशिएकरण की प्रतिक्रिया के रूप में उभरा।[23]"

उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि पसमांदा शब्द का अभिप्राय उस समुदाय से है, जिसे भारतीय मुस्लिम समाज में सामान्यत: उपेक्षित और हाशिए पर रखा गया है। यह विशेष रूप से उन मुस्लिमों को दर्शाता है जो कुलीन वर्गों से बाहर रहते हैं। पसमांदा समाज का अस्तित्व उन मुस्लिम समुदायों में है जो विभिन्न जातियों, क्षेत्रों, पेशों और पारंपरिक तौर-तरीकों से संबंधित होते हैं। पसमांदा समाज की उत्पत्ति और पहचान मुख्य रूप से भारतीय मुस्लिम समाज की जटिल जाति व्यवस्था से जुड़ी हुई है। मुस्लिम समाज में पारंपरिक रूप से उच्च और निम्न जातियों का विभाजन था और पसमांदा उन मुस्लिमों के रूप में देखे जाते थे, जिन्हें शासक वर्ग या उच्च वर्ग द्वारा सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से उपेक्षित किया गया। भारतीय उपमहाद्वीप में मुस्लिमों के धार्मिक और सामाजिक जीवन में एक प्रकार की ऊँच-नीच की व्यवस्था विकसित हो गई थी, जिसके परिणामस्वरूप पसमांदा समुदाय को मुख्यधारा से बाहर कर दिया गया था।

पसमांदा समाज में जातिगत भेदभाव का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जाता है। विशेष रूप से भारतीय मुस्लिम समाज में, जिनमें कुछ समुदायों को 'उच्च' माना जाता था, जबकि पसमांदा को निचला और पिछड़ा-अतिपिछड़ा माना जाता है। भारतीय मुसलमान केवल मुसलमान नहीं है बल्कि उसके मुसलमान होने से पहले उसे अपनी जाति भी स्पष्ट करना होता है। पसमांदा समाज की एक बड़ी समस्या उनका सामाजिक और आर्थिक पिछड़ापन भी है। जिसका कारण है कि यह समुदाय अक्सर गरीब, ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, और अन्य बुनियादी सुविधाओं से वंचित रहता है। सरकार के द्वारा इनके लिए विशेष योजनाएँ तो बनती हैं किंतु कार्यान्वयन नाम मात्र है। यह वर्ग शैक्षणिक रूप से पिछड़ा होने के कारण भी लाभ नहीं उठा पाता। पसमांदा समुदाय का शिक्षा दर काफी कम है और यह समुदाय शिक्षा के क्षेत्र में पीछे रह जाता है। इसके पीछे मुख्य कारण गरीबी, संसाधनों की कमी, और सामाजिक भेदभाव है।

पसमांदा समुदाय सदियों से सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षणिक तौर पर पिछड़ा हुआ है। जब हम इसके पिछड़ेपन की पड़ताल करते हैं तो हमें यह प्राप्त होता है कि इसका मुख्य कारण जाति व्यवस्था है। अशराफ़ वर्ग ने सामाजिक संरचना के उन सभी आधारों पर अपना स्तंभ स्थापित किया है, जहाँ इन समुदायों को कभी धर्म के नाम पर तो कभी वोट के नाम का 'हम सब एक हैं, हम में गैर बराबरी नहीं है' का हवाला देकर अपने वर्चस्व को कायम रखने के लिए, हर वह दाँव अपनाते हैं। उदाहरण के तौर पर राजनैतिक भागीदारी की बात करें या शैक्षणिक संस्थानों में अध्ययन या अध्यापन की तो अशराफ़ वर्ग का चरित्र एक ही है। पसमांदा मुसलमानों से उनका अधिकार छीनकर अपना अधिकार स्थापित करना, इसका उदाहरण है। अशराफ़ों ने अपने फायदे के अलावा कभी भी पसमांदा मुसलमानों के अधिकार के लिए आवाज नहीं उठाई। पसमांदा के अतिरिक्त अन्य पिछड़ी जातियों के लिए जो अनुसूचित जाति से संबंधित हैं उनके लिए आरक्षण का प्रावधान है। लेकिन मुसलमानों का अशराफ़ वर्ग धार्मिक झुनझुना का हवाला देकर कि इस्लाम में गैर बराबरी नहीं है इस लाभ से भी उन्हें वंचित रखा। जिसके लिए संविधान में आरक्षण दिया गया है जिसे पाकर वह भी अपना विकास कर सकते थे। जबकि 2006 की सच्चर कमेटी की रिपोर्ट ने यह जगजाहिर कर दिया कि मुस्लिम समुदाय में अजलाफ़ और अरज़ाल समुदाय है, जो दलित हिंदू जाति से भी बदतर स्थिति में जीवनयापन कर रहे हैं। अगर राजनैतिक हलके की बात करें तो वर्तमान में दिल्ली विधान सभा का चुनाव होने को है ओखला एक मुस्लिम बहुल विधान सभा है जहाँ पसमांदा मुसलमानों की आबादी सबसे अधिक है जबकि तीनों उम्मीदवार अशराफ़ वर्ग से हैं।

अशराफ़ वर्ग ने शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश प्रक्रिया से लेकर नियुक्ति प्रक्रिया में जाली सर्टिफिकेट बनाकर (विशेष रूप से ओबीसी प्रमाण-पत्र) खुद को स्थापित कर पसमांदा को वंचित रखा है और अपना दबदबा कायम किए हुए हैं। जिसका जिक्र अली अनवर साहब ने 'मसावात की जंग' में किया है-"कुदरत का कुछ निजाम और इंसानी फितरत ही ऐसी है कि समाज में हर तरह के जोर-जुल्म, धोखाधड़ी के खिलाफ लोग अपने तरीके से लड़ते रहते हैं। इंजीनियरिंग सेवा में 'मोमिन' के जाली सर्टिफिकेट पर भर्ती का एक ऐसा ही मामला हाईकोर्ट में रिट याचिका के रूप में दाखिल हुआ। मैंने तो एक सहाफी के नाते इसमें अपनी तरफ से सिर्फ इतना जोड़ कर बता दिया कि आरोपी कोई अदना आदमी नहीं बल्कि राज्य के मुख्यमंत्री रह चुके एक नेता का अपना नवासा (नाती) है। जाहिर है इक्का-दुक्का ऐसे मामले नहीं हैं। जिस तरह से खबरें मिल रही हैं, उससे लगता है कि हजारों ऐसे लोग हैं, जो 'मोमिन' का फर्जी सर्टिफिकेट बनवाकर गजटेड-नॉन गजटेड, राज्य सरकार तथा केंद्र सरकार की नौकरियों में घुस गए हैं। जहाँ एक गलत आदमी को नौकरी मिलती है वहाँ एक सही आदमी का हिस्सा तो कटता ही है।[24]" यहाँ यह भी गौर करने योग्य है कि मुस्लिम बहुल संस्थानों में अशराफ़ वर्ग इस तरह का जाली काम करके

ओबीसी आरक्षण पर भी अपना स्वामित्व बनाए रखता है।

पसमांदा समाज ने हमेशा अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया है। यह समुदाय अपनी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति में सुधार के लिए विभिन्न आंदोलनों का हिस्सा रहा है। पसमांदा समाज के नेता और संगठनों ने विभिन्न मंचों पर यह मुद्दा उठाया है कि मुस्लिम समाज के उच्च वर्ग द्वारा उन्हें हाशिए पर रखा गया है। इसके फलस्वरूप पसमांदा आंदोलन ने सामाजिक न्याय, समान अधिकारों और अवसरों की बात की है। वर्तमान में पसमांदा मुस्लिम महाज जैसे संगठन रहनुमाई कर रहे हैं और इसके संघर्ष को ऊर्जा भी प्रदान कर रहे हैं।

पसमांदा समाज ने अपने अधिकारों की लड़ाई में प्रमुख रूप से जिस मुद्दे को उठाया वह सामाजिक न्याय है। पसमांदा समाज के लिए सामाजिक समानता अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि मनुष्य और मनुष्य के बीच जैविक रूप से कोई भेद नहीं है। पसमांदा समुदाय को भी समाज में समान अधिकार मिलना चाहिए, खासकर उच्च वर्गों के समतुल्य। पसमांदा समुदाय के समक्ष सबसे प्राथमिक समस्या है- उसके शिक्षा दर का कम होना। यदि संविधान में दलित पसमांदा को आरक्षण दिया जाता है; (चूँकि ओबीसी के अंतर्गत जिन पसमांदा मुसलमानों को आरक्षण दिया जाता है उनमें बहुत सी जातियाँ 'अनुसूचित जाति अर्थात अरज़ाल वर्ग' के अंतर्गत आती हैं जिन्हें ओबीसी में समाहित कर दिया गया है उन्हें दलित मुस्लिम अर्थात अरज़ाल मुस्लिम को अनुसूचित जाति के अनुसार आरक्षण मिलना चाहिए, जिसका संविधान में कोई प्रावधान नहीं है, सच्चर समिति 2006 की रिपोर्ट में उल्लिखित है।) तो इन समुदाय के बच्चों को बेहतर शिक्षा और रोजगार का अवसर प्राप्त हो सकता है। यदि सरकारी योजनाओं को सुचारू रूप से क्रियान्वयन किया जाता है तो यह वर्ग भी अपना पूर्णरूपेण विकास कर सकता है।

राजनैतिक दृष्टि से भी देखा जाए तो पसमांदा मुसलमान अति पिछड़ा है। इनका नेतृत्व करने वाला कोई नहीं दिखता। आबादी का 85% से अधिक होने के बावजूद भी इनका नेतृत्व न के बराबर है। चाहे वह राजनैतिक दल हो, लोकसभा या राजसभा हो या अन्य। इनमें गरीबी, बेरोजगारी, बेकारी, संतान वृद्धि आदि समस्याएँ सामान्य हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन वर्गों के पास केवल वोट का अधिकार है, सत्ता का नहीं।

देश में कहीं भी सांप्रदायिक दंगे हो जाएँ वहाँ हलाक होने वाले पसमांदा मुसलमान ही दिखेंगे। ये अति विचारणीय बिंदु है कि जिन पसमांदा मुसलमानों की आवाज तक उठाने वाला कोई नहीं है वहीं जब इन्हें हलाक कर दिया जाए तो इनके परिवार का भरण-पोषण कैसे हो? ऐसे में पसमांदा समाज की औरतें बच्चों को लेकर दर-दर की ठोकरें खाती हैं और इनके नाबालिग बच्चे नगरों, महानगरों या खाड़ी देशों में गुलामी करने को विवश हो जाते हैं। हमें चाहिए कि सबसे पहले इनके पीछे का विज्ञान जानें। तब जाकर किसी सही मुद्दे पर पहुँचा जा सकता है। वरना वही रटी-रटाई चीजों पर ही बात होती रहेगी जिनका कोई औचित्य नहीं है। पसमांदा समाज को राजनैतिक रूप से अधिक प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए, ताकि उनके मुद्दे सही तरीके से उठाए जा सकें।

पसमांदा समाज भारतीय मुस्लिम समुदाय का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है, जो सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से आज भी उपेक्षित और पिछड़ा हुआ है। इस समाज के लिए सामाजिक न्याय, समानता और शिक्षा जैसे मुद्दे बेहद महत्त्वपूर्ण हैं। पसमांदा समुदाय की सामाजिक स्थिति में सुधार लाने के लिए व्यापक जागरूकता, समान अवसरों की उपलब्धता और सरकारी योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन की आवश्यकता है। इसके साथ ही, पसमांदा समाज के अधिकारों की रक्षा के लिए जरूरी है कि उन्हें मुख्यधारा में शामिल किया जाए और सामाजिक भेदभाव को समाप्त किया जाए। पसमांदा आंदोलन और साहित्य को बढ़ाने के लिए यह भी जरूरी है कि इस दिशा में शोध हो। सरकारी या गैर सरकारी स्तर पर परियोजना कार्य कराए जाएँ, लोगों को जागरूक बनाया जाए और भाईचारे की वास्तविकता से अवगत कराया जाए।

संदर्भ

1. अल्कामुस अलवहीद, मौलाना वहीदुज्जमा कासमी कैरानवी, कुतुबखाना हुसैनिया देवबंद, उ.प्र., सितंबर 2017, पृ. 858
2. वही, पृ.273
3. वही, पृ.617
4. फरहंग-ए-फारसी, डॉ. अब्दुल लतीफ, एजुकेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 2006, पृ.31
5. वही, पृ.17
6. वही, पृ.22
7. अ कंप्रेहेंसिव पर्शियन इंग्लिश डिक्शनरी, एफ. स्टीनगस, एशियन एजूकेशनल सर्विसेज, नई दिल्ली, 2008, पृ. 64
8. वही, पृ. 18
9. वही, पृ. 36
10. जदीद फिरोजुल लुगात, मौलवी फिरोजुद्दीन, एतेकात पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2014, पृ.100
11. वही, पृ.70
12. वही, पृ.84
13. राबिया उर्दू लुगत, सईद ए. शेख, इस्लामिक बूक सर्विस, नई दिल्ली, 2007, पृ.86
14. वही, पृ.6
15. वही, पृ.74
16. सच्चर समिति की रिपोर्ट 2006, पृ.182
17. मुस्लिम कास्ट इन उत्तर प्रदेश, गौस अंसारी, द एथनोग्राफिक ऐंड फोक कल्चर सोसायटी, यूपी, लखनऊ, 1960, पृ. 30
18. संपूर्ण दलित आंदोलन पसमांदा तसव्वुर, अली अनवर, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण, 2023, पृ. 9
19. जदीद फिरोजुल लुगात, मकबूल बेग बदखसानी, डॉ. वहीद कुरेशी, एम.आर. पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2016-17, पृ.179
20. वही, पृ.968
21. राबिया उर्दू लुगत, सईद ए. शेख, इस्लामिक बूक सर्विस, नई दिल्ली, 2007, पृ.276
22. मसावात की जंग, अली अनवर, वाणीप्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2021, पृ.15
23. अब्दुल्ला मंसूर https://www.hindi.awazthevoice.in/opinion-news/what-are-demands-of-pasmanda-muslims-31096.html
24. मसावात की जंग, अली अनवर, वाणीप्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2021, पृ.14

डॉ. अयुब राईन

स्वतंत्रता आंदोलन और दलित मुसलमान

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में पसमांदा मुसलमानों का भी उतना ही योगदान रहा है, जितना अन्य जातियों का। यह अलग बात है कि इन्हें इतिहास में समुचित महत्त्व नहीं मिल सका। एक विवरण

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के कई पड़ाव हुए हैं और इन विभिन्न पड़ावों पर दलित मुसलमान, जिसे पसमांदा कहा जाता है, के योगदान को लगभग नजरअंदाज कर दिया गया है। कभी उसकी चर्चा हुई भी तो उनकी जातीय पहचान को गड्डमड्ड कर दिया गया। अब जब कुछ समय बदल रहा है और हर वर्ग, समूह और समाज अपने नायकों की तलाश कर रहा है तो कुछ-कुछ धुँधला और कुछ-कुछ साफ दिख रहा है कि किस तरह से इतिहास के पन्नों से दलित मुस्लिम स्वतंत्रता सेनानियों को भुला दिया गया है।

इस कड़ी में स्वतंत्रता आंदोलन के पड़ाव में से सूफी-संन्यासी आंदोलन, 1857 का प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन, जिसे सर सैयद अहमद खाँ ने बगावत नाम दिया और अंग्रेजों की चापलूसी करते हुए यहाँ तक बोल गए कि इस बगावत में बदजात जुलाहे थे। 1857 के बाद खिलाफत आंदोलन, नमक सत्याग्रह, चौरीचौरा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन से कुछ-कुछ चेहरों को तलाशते और कुरेदते हुए इस शोध के लिए 25 स्वतंत्रता सेनानियों की जीवनी एकत्र करने का प्रयास किया है। इनमें मजनूं शाह मलंग मदारी, शहीद शेख भिखारी, पीर अली खान (कागजी), मौलवी मो. इब्राहिम अंसारी, बत्तख मियाँ अंसारी, बसारत खलीफा (बक्खो), पीर मो. मुनिस अंसारी, अब्दुल्लाह चुड़िहारा, कारी मो. उसमान (अंसारी), रशिदुद्दीन अहमद कुरैशी, आसिम बिहारी (अंसारी), खलील दास (शाह), अब्दुल अहद मो. नूर (अंसारी), अतिकुर्रहमान आरवी (मंसूरी), नेमतुल्लाह अंसारी, अब्दुल कैयुम अंसारी, समी नदवी (अंसारी), सगीर अहमद (अंसारी), भदई कबाड़ी (राईन), बिकाऊ अहमद कुरैशी, अहमद अली अंसारी, अब्दुल वहीद कुरैशी, फिदा हुसैन अंसारी, बिलट दर्जी एवं सिद्दीक चूड़ीफरोश की जीवनी को संकलित करने का एक प्रयास भर किया है।

हजारों साल नर्गिस अपनी बे-नूरी पे रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदा-वर पैदा।।

इन महान स्वतंत्रता सेनानी विभूतियों का जीवन-संघर्ष परिचय संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

मजनू शाह मलंग मदारी (शाह)

बाबा मजनू शाह मलंग मदारी (रह.) 18वीं शताब्दी ईस्वी के बिहार, उड़ीसा और बंगाल क्षेत्र में सूफीवाद के प्रसिद्ध सूफी और ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के कठोर विरोधी स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने दिनाजपुर जिला के हिम्मतआबाद में शाह सुलतान हसन सूर्य बुरहाना की मृत्यु के बाद अठारहवीं शताब्दी के मध्य में बंगाल और बिहार में मदारिया सूफी श्रृंखला को गति प्रदान की।

बाबा मजनू शाह मलंग मदारी (रह.) का जन्म 25.03.1731 ई. को मेवात में हुआ था। उनका असल नाम अबू तालीब बुर्हान था और लकब मजनू शाह मदारी मलंग रहा है। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर हुई। इसके बाद मदरसा पैफजान-ए-आम, मकनपुर से फिकह, तफसीर और आधुनिक शिक्षा प्राप्त की। तदुपरांत बिहार, बंगाल और उड़ीसा में इस्लामी शिक्षा और सामाजिक सुधार का कार्य करते रहे। वह हाफिज-ए-कुरआन भी थे। साथ ही विभिन्न प्रकार की शिक्षाएँ भी प्राप्त की थीं। अंत में तसव्वुफ और रूहानियत से वाबिस्ता हो गए। वह सूफी समुदाय में मलंग श्रृंखला से वाबिस्ता थे।

बाबा मजनू शाह मलंग मदारी (रह.) के समक्ष जब मातृभूमि की रक्षा की समस्या आई

तो वह खानकाह से निकलकर मैदान-ए-जंग में अंग्रेजों के विरुद्ध सेना का नेतृत्व करने लगे और जान लेने व जान देने के लिए तैयार रहे। उन्होंने देश की सेवा के लिए जान व माल सब कुछ न्योछावर कर दिया।[1]

उन्होंने सूफी संतों और योगी संन्यासियों का एक मिश्रित मंच संगठित और सुदृढ़ किया। वह धार्मिक, सामाजिक और स्वतंत्रता संग्राम में दृढ़ता के साथ गतिशील रहे। उन्होंने 1760 से प्रारंभ हुए फकीर संन्यासी विद्रोह का नेतृत्व किया और ईस्ट इंडिया कंपनी के विरोध में 28 वर्षों तक सक्रिय रहे।

स्वतंत्रता संग्राम के लिए शहीद होने वाले शाह (फकीर) समुदाय के हजरत मजनूं शाह मलंग देश के पहले फ्रीडम फाइटर थे। 1760 और उसके बाद के दशकों के फकीर-संन्यासी आंदोलन में मौलाना मजनू शाह मलंग की भूमिका दर्ज की गई है। ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध 1760 में शुरू हुआ आंदोलन 1763 के आसपास तक गति पकड़ चुका था। मजनूं शाह मलंग ने ईस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ विभिन्न लड़ाइयों में भाग लिया था।

वह दिनाजपुर जिला के थाना हिम्मतआबाद के बालिया कुंडी में रहते थे और बोगरा के मदारगंज में उनका निवास स्थान भी था। वह पचास हजार से अधिक फकीरों और संन्यासियों को एक साथ एकत्रित कर सकते थे जो अंग्रेजों के युद्ध का सामना कर सकते थे। वे गोरिल्ला युद्ध में भी निपुण थे। उनकी कार्रवाइयों से कंपनी की कोठियों, रेवेन्यू कार्यालयों और कंपनी के अन्य विभागों में भय का वातावरण बना रहता था। कंपनी की फौजों को आर्थिक क्षति भी उठानी पड़ी थी। उन्होंने 1776 ई. में जिला बोगरा में एक स्थायी सुदृढ़ किला भी बनवाया था जिसका नाम मस्तानगढ़ रखा गया था। कुछ समय बाद एक स्थायी स्थान मदारगंज के नाम से भी स्थापित किया गया।

बाबा मजनू शाह मलंग मदारी (रह.) 08.12.1786 को एक युद्ध में जख्मी हुए। इसके बाद वह दरगाह मदार शाह (कानपुर) आ गए जहाँ उनके जख्मों का इलाज कराया गया। चिकित्सा के क्रम में 26 जनवरी 1788 ई. को मकनपुर शरीफ में उनका देहांत हुआ। उन्हें मकनपुर शरीफ में ही दफन किया गया, जहाँ उनका मजार है।

शहीद शेख भिखारी (अंसारी)

1857 की जंग-ए-आजादी में लड़ने वाले शेख भिखारी का जन्म 02 अक्टूबर 1811 ई. को रांची जिला के होक्टे गांव में एक बुनकर अंसारी परिवार में जागीरदार शेख पहलवान के यहाँ हुआ था। बचपन से वह अपने खानदानी पेशा, मोटे कपड़े तैयार करना और हाट बाजार में बेचकर अपने परिवार की परवरिश करते थे। जब उनकी उम्र 20 वर्ष की हुई तो उन्होंने छोटानागपुर के महाराज के यहां नौकरी कर ली। कुछ ही दिनों के बाद उन्होंने राजा के दरबार में एक अच्छा मुकाम प्राप्त कर लिया। बाद में बड़कागढ़ जगन्नाथपुर के राजा ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव ने उनको अपने यहां दीवान के पद पर रख लिया। शेख भिखारी के जिम्मे में बड़कागढ़ की फौज का भार दे दिया गया, जब अंग्रेजों ने राजा-महाराजाओं पर चढ़ाई करने का मनसूबा बनाया तो इसका अंदाजा राजा-महाराजाओं को होने लगा था, जब इसकी भनक ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव को मिली तो उन्होंने अपने वजीर पाण्डे गणपत राय, दीवान शेख भिखारी, टिकैत उमराँव सिंह से मशवरा किया।[2] इन सभी ने अंग्रेजों के खिलाफ मोर्चा लेने की ठान ली और जगदीशपुर के बाबू कुँवर सिंह से पत्राचार किया। इसी बीच में शेख भिखारी ने बड़कागढ़ की फौज में रांची एवं चाईबासा के नौजवानों को भरती करना शुरू कर दिया।

अचानक अंग्रेजों ने 1857 में चढ़ाई कर दी। विरोध में रामगढ़ के रेजिमेंट ने अपने अंग्रेज अफसर को मार डाला। नादिर अली हवलदार और रामविजय सिपाही ने रामगढ़ रेजिमेंट छोड़ दिया और जगन्नाथपुर में शेख भिखारी की फौज में मिल गए। इस तरह जंगे आजादी की आग छोटानागपुर में फैल गई। रांची, चाईबासा, संथाल परगना के जिलों से अंग्रेज भाग खड़े हुए। इसी बीच अंग्रेजों की फौज जनरल मैकडोन के नेतृत्व में रामगढ़ पहुँच गई और चुट्टूपालू के पहाड़ के रास्ते से रांची आने लगे। उनको रोकने के लिए शेख भिखारी, टिकैत उमराव सिंह अपनी फौज लेकर चुट्टूपालू पहाड़ी पहुँच गए और अंग्रेजों का रास्ता रोक दिया। शेख भिखारी ने चुट्टूपालू की घाटी पार करने वाला पुल को तोड़ दिया और सड़क के पेड़ों को काटकर रास्ता जाम कर दिया। शेख भिखारी की फौज ने अंग्रेजों पर गोलियों की बौछार कर अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए। यह लड़ाई कई दिनों तक चली। शेख भिखारी के पास गोलियाँ खत्म होने लगी तो शेख भिखारी ने अपनी फौज को पत्थर लुढ़काने का हुक्म दिया। इससे अंगरेज फौजी कुचलकर मरने लगे।[3]

जनरल मैकडोन ने मुकामी लोगों को मिलाकर चुट्टूघाटी पहाड़ पर चढ़ने के लिए दूसरे रास्ते की जानकारी ली। फिर उस खुफिया रास्ते चुट्टूघाटी पहाड़ पर चढ़ गए। अंगरेजों ने शेख भिखारी एवं टिकैत उमराव सिंह को 6 जनवरी 1858 को घेर

कर गिरफ्तार कर लिया और सात जनवरी 1858 को उसी जगह चुट्टूघाटी पर फौजी अदालत लगाकर मैकडोन ने शेख भिखारी और उनके साथी टिकैत उमरांव को फाँसी का फैसला सुनाया। आठ जनवरी 1858 को शेख भिखारी और टिकैत उमरांव सिंह को चुट्टूपहाड़ी के बरगद के पेड़ से लटकाकर फाँसी दे दी गई।[4]

पीर अली खान (कागजी)

पीर अली खान जो आजमगढ़ जिले के मोहम्मदपुर का रहने वाला था। बाल्यावस्था में ही घर से भागकर पटना आने पर इनकी परवरिश पटना के जमींदार नवाब मीर अब्दुल्ला ने की। उसकी शिक्षा भी कराई। उन्होंने उर्दू, फारसी और अरबी भाषा में अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त किया था। बाद में जीविका के लिए पीर अली ने नवाब मीर अब्दुल्लाह की सहायता से किताब-कॉपी की दुकान खोल ली और दुकान धीरे-धीरे क्रांतिकारियों का अड्डा बन गई। उनकी दुकान पटना की सदर गली के मोड़ पर थी। वह उसी दुकान में जिल्दसाजी का काम किया करते थे।

उस दुकान के संचालन के पीछे उनका एक दूसरा राज भी छिपा हुआ था। उनका मुख्य उद्देश्य लोगों में क्रांति संबंधी पुस्तकों का प्रचार करना था। वे पहले स्वयं पुस्तक पढ़ते और फिर उसके बाद दूसरों को पढ़ने के लिए देते थे। इसी तरह अपने परिचितों को उन्होंने आंदोलित करने का प्रारंभिक क्रांतिकारी कार्य शुरू किया। उनका मूल उद्देश्य हिंदुस्तान को गुलामी की बेड़ियों से आजाद करवाना था। पीर अली का मानना था कि गुलामी मौत से भी अधिक बदतर है।[5] पीर अली पटना सिटी के सोनार टोली में रहते थे। जाति से कागजी (दफ्तरी) मुस्लिम थे। वह मोहल्ला सादिकपुर, पटना सिटी के छोटू टमटम वाला जो मुस्लिम चिक जाति के थे, उन्हीं के टमटम से कागज लाने अथवा किताबों को जिल्द लगाकर गोदाम से दुकान तक पहुँचाया करते थे। पीर अली की आंदोलन कुछ घटनाओं ने देशभक्ति के इतिहास में सुनहरे अध्याय जोड़े हैं। वह सिर्फ मुसलमानों के नेता नहीं थे। उन्हें तत्कालीन सभी क्रांतिकारियों का विश्वास और समर्थन प्राप्त था। पीर अली के कारनामों का जिक्र किए बिना बिहार में हुई 1857 की क्रांति की दास्तान अधूरी ही मानी जाएगी। 3 जुलाई 1857 को इसी दुकान से दो सौ सशस्त्र क्रांतिकारियों को लेकर पीर अली ने पटना के प्रशासनिक भवन पर हमला कर दिया। विलियम टेलर तो बच गया लेकिन डॉ. लॉयल मारा गया। इस घटना में बहुत से क्रांतिकारी भी शहीद हुए।

3 जुलाई 1857 को पीर अली खान के घर सैकड़ों की तादाद में लोग इकट्ठे हुए और उन्होंने पूरी योजना तय की। 200 से अधिक हथियारबंद लोगों की नुमाइंदगी करते हुए पीर अली खान ने गुलजार बाग में स्थित प्रशासनिक भवन पर हमला करने की ठानी।[6] पीर अली खान और उनके साथियों को 4 जुलाई 1857 को बगावत करने के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया गया। 7 जुलाई 1857 को पीर अली को उनके 21 साथियों के साथ बीच चौराहे पर फाँसी दे दी गई।

कमिश्नर विलियम टेलर ने प्रस्ताव दिया था कि अगर वह क्रांतिकारियों की पहचान और उनके छुपने की जगहों के बारे में बता दें तो उसे छोड़ा जा सकता है। इस पुस्तक विक्रेता ने टेलर की माफी की पेशकश सुनते ही ठुकरा दी थी पीर अली ने कहा कि "तुम मुझे और मेरी तरह के अन्य लोगों को रोज फाँसी पर चढ़ा सकते हो परंतु यह जान लो कि मेरी जगह हजारों लोग उठ खड़े होंगे और तुम अपने उद्देश्य में कभी सफल नहीं हो पाओगे।"[7]

मौलवी मो. इब्राहिम (अंसारी)

मौलवी मो. इब्राहिम मूल रूप से दरभंगा शहर के लहेरिया सराय स्थित सराय सत्तार खां मोहल्ले के रहने वाले थे। उनका जन्म 17 फरवरी 1856 ई. को बुनकर परिवार में हुआ था। मौलाना मोहम्मद इब्राहिम के पिता का नाम मुंशी जहुरूद्दीन था। उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा अपने निवास स्थान पर मौलवी नबी बख्श से प्राप्त की थी जो फारसी भाषा के लोकप्रिय शिक्षक थे। प्रारंभिक शिक्षा के बाद उन्होंने मदरसा इमदादिया में अरबी भाषा के लिए नामांकन कराया। छात्र जीवन से ही उन्हें दर्शन के प्रति अभिरुचि थी। शिक्षा ग्रहण करने के बाद अभिरुचि की पूर्ति हेतु वह टौंक भी गए थे। बचपन में इन्हें अरबी-फारसी की शिक्षा मिली। युवावस्था में कलकत्ता गए और फिर वहाँ रोजगार हेतु हैंडलूम कपड़ों के व्यवसाय से जुड़ गए।[8]

कोलकाता में चलने वाली अंसारी समाज की गतिविधियों में वह लगातार शामिल होते रहते थे। साथ ही स्वतंत्रता आंदोलनकारियों के संपर्क में रहने के कारण आजादी की तहरीक से भी जुड़े हुए थे। वह जब दरभंगा आते तो यहाँ भी अपनी गतिविधियों से तत्कालीन युवा वर्ग को आंदोलन के लिए तैयार करते थे।[9] इसका असर युवाओं पर था और युवाओं के दिल में मौलवी इब्राहिम के लिए काफी सम्मान था। खिलाफत आंदोलन में मौलवी मो. इब्राहिम काफी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया करते थे।[10] वह अमृतसर, दिल्ली इत्यादि जगहों पर होने वाली खिलाफत आंदोलन को लेकर सम्मेलनों में शामिल होते थे। खिलाफत आंदोलन को लेकर देश भर में जगह-जगह खिलाफत कमीटियों का गठन होना शुरू हो गया था। खिलाफत आंदोलन को लेकर होने वाले सम्मेलनों में उक्त कमिटियों से चिन्हित सदस्य ही कॉन्फ्रेंस में सम्मिलित होते थे। बिहार से मौलाना मो. इब्राहिम दरभंगवी शामिल हुआ करते थे।

बत्तख मियाँ (अंसारी)

कुछ ऐसे भी अनुयायी व्यक्ति थे जिन्होंने निर्भीक होकर कठिन समय में स्वतंत्रता सेनानियों की जान बचाई। ऐसे ही लोगों के क्रम में पूर्वी चम्पारण, जिला-मोतिहारी, बिहार के एक साधारण व्यक्ति बत्तख मियाँ अंसारी थे जिन्होंने सन् 1917 ई. में महात्मा गांधी की जान बचाकर एक मिसाल कायम की। उन्होंने अपने काम एवं दूरदर्शिता से एक नव कीर्तिमान स्थापित किया जो देश प्रेम और कठिन समय में सहायता का एक अमूल्य पाठ के समान है।[11]

बत्तख मियाँ का जन्म दिनांक 25.06.1869 को मोहम्मद अली अंसारी एवं रुखसाना खातून के घर में ग्राम सिसवाँ अजगरी, मोतिहारी में हुआ था। उनका असल नाम बख्त मियां अंसारी था जो बोलचाल में बत्तख मियाँ प्रचलित हो गया।[12] मोतिहारी में अंग्रेजों की 'नीलहे कोठी' में बत्तख मियाँ बावर्ची का काम करते थे।

अंग्रेजी शासकों के अत्याचार और नीले

कोठी के विषय में जानने हेतु 1917 ई. में महात्मा गांधी चंपारण गए थे। उनके साथ डॉ. राजेंद्र प्रसाद एवं कई अन्य नेतागण भी थे। गांधी जी ने जब नील की खेती करने वाले कृषकों पर अत्याचार की वास्तविकता गाँव के कृषकों से सुनी तो उन्होंने अंग्रेजी सरकार के अत्याचारी अधिकारी के विरोध में ग्रामवासियों के साथ आवाजें बुलंद कीं। जब अंग्रेज अधिकारियों को इसकी सूचना मिली तो वह कृषकों के सहायक बने गांधी जी की जान लेने की योजना बनाने लगे। जिस समय राजेंद्र प्रसाद के साथ गांधी जी मोतिहारी सर्किट हाउस में विश्राम के लिए पहुँचे तो उनकी सेवा के लिए एक अंग्रेज व्यवस्थापक मिस्टर इरविन को नियुक्त किया गया। उन्होंने गांधी जी सहित कई नेताओं को रात्रि भोजन के लिए आमंत्रित किया। मिस्टर इरविन ने बत्तख मियाँ को बुलाकर कहा कि तुम भारतीय बावर्ची हो, हिंदुस्तानी भोजन बनाने में दक्ष हो। तुम पर कोई शक भी नहीं करेगा। इसलिए मेरा एक काम चुपचाप तुम्हें करना है। काम को समझ-बूझकर करना है। खाना खाने के बाद जब गांधी जी को बकरी का दूध दो तो उसमें जहर मिला देना, जिसके पीने के बाद उनकी मृत्यु हो जाएगी। यदि तुमने यह कार्य किया तो इसके बदले में तुम्हें अपार धन-दौलत से मालामाल कर दिया जाएगा और यदि तुमने यह कार्य नहीं किया तो तुम्हें बावर्ची की नौकरी से हटा दिया जाएगा साथ ही तुम्हारी संपत्ति जब्त कर ली जाएगी और तुम्हारी जिंदगी तबाह कर दी जाएगी।

बत्तख मियाँ अंसारी ने अंग्रेज व्यवस्थापक की धमकी और लालच में आने के बजाय षड्यंत्र की वास्तविकता को जानकर गांधीजी के जीवन को बचाना अपना फर्ज समझा। नीलहे कोठी में रात्रि भोजन काल में बत्तख मियाँ अंसारी ने अंग्रेजों के सामने बकरी के दूध वाले गिलास में जहर डाला। दूध का गिलास गांधी जी को देते समय उनका हाथ थरथराया और गिलास हाथ से छूट गया। इस प्रकार जहरीला दूध जमीन पर गिर गया। इससे हमारे प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता मोहनदास करमचंद गांधी जी सुरक्षित रहे और बावर्ची ने मानव प्रेम और देशप्रेम का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया।[13] डॉ. राजेंद्र प्रसाद इस घटना के प्रत्यक्ष साक्षी थे। इसके दूसरे दिन गांधी जी अपने मित्रों के साथ मोतिहारी से पटना के लिए रवाना हुए। इस घटना के बाद अंग्रेज पदाधिकारियों ने बत्तख मियाँ को बावर्ची की नौकरी से निकाल दिया। उनकी जमीन और संपत्ति को जब्त कर लिया और उन्हें अत्यधिक कष्ट दिया गया, जिसे वह झेलते रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी उन्होंने अंग्रेजों के द्वारा दिए गए कष्टों के विषय में किसी को नहीं बताया। इस विषय की वास्तविकता पर डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने 1950 में आयोजित मोतिहारी जनसभा में प्रकाश डाला।[14]

अंग्रेजी शासकों के अत्याचार और नीले कोठी के विषय में जानने हेतु 1917 ई. में महात्मा गांधी चंपारण गए थे। उनके साथ डॉ. राजेंद्र प्रसाद एवं कई अन्य नेतागण भी थे। गांधी जी ने जब नील की खेती करने वाले कृषकों पर अत्याचार की वास्तविकता गाँव के कृषकों से सुनी तो उन्होंने अंग्रेजी सरकार के अत्याचारी अधिकारी के विरोध में ग्रामवासियों के साथ आवाजें बुलंद कीं। जब अंग्रेज अधिकारियों को इसकी सूचना मिली तो वह कृषकों के सहायक बने गांधी जी की जान लेने की योजना बनाने लगे। जिस समय राजेंद्र प्रसाद के साथ गांधी जी मोतिहारी सर्किट हाउस में विश्राम के लिए पहुँचे तो उनकी सेवा के लिए एक अंग्रेज व्यवस्थापक मिस्टर इरविन को नियुक्त किया गया। उन्होंने गांधी जी सहित कई नेताओं को रात्रि भोजन के लिए आमंत्रित किया

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रथम भारतीय राष्ट्रपति बनने पर चंपारण के मोतिहारी रेलवे स्टेशन पर डॉ. राजेंद्र प्रसाद जी के सम्मान में 1950 में एक स्वागत समारोह का आयोजन किया गया था। उन्हें देखने और भाषण सुनने के लिए बड़ी भीड़ जमा हुई थी। स्वागत समारोह के आरंभ में ही उन्हें रेल की पटरियों से गुजरते हुए एक कम लंबाई के साँवले रंग, गठीले शरीर के व्यक्ति को मोटिया खद्दर की धोती और गंजी पहने देखा जो भाषण सुन रहे थे। राजेंद्र बाबू ने उसको पहचान लिया और हाथों के इशारे से उसे अपने पास बुलाया। निकट पहुँचने पर राजेंद्र बाबू ने उसे गले से लगाया और खैरियत पूछा। सभा स्थल पर उपस्थित लोग इस मिलन को देखकर आश्चर्यचकित थे। भाषण में डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने कहा कि यह हमारे वही पुराने साथी और देश व जनता के विश्वसनीय व्यक्ति हैं जिन्हें हम सभी बत्तख मियाँ जी के नाम से जानते हैं। इन्होंने अपने कर्म से यह सिद्ध कर दिया कि मानव प्रेम और राष्ट्र प्रेम ईमान का आधा भाग होता है। यह वही व्यक्ति हैं, जिनके द्वारा अंग्रेज अधिकारी एक भयानक षड्यंत्र के द्वारा इन्हीं के हाथों हमारे राष्ट्रीय जननायक महात्मा गांधी जी के दूध के गिलास में विष डलवाकर उनकी मृत्यु का षड्यंत्र रचा था। मगर बत्तख मियाँ जी की इस्लामी शिक्षा, वृहद ज्ञान, सूझ-बूझ से गांधीजी के जीवन की एक बड़ी दुर्घटना टल गई और आज हम स्वतंत्र भारत में आजादी का झंडा लहरा रहे हैं।

बसारत खलीफा (बक्खो)

बसारत खलीपफा का जन्म 20.05.1878 ई. को पटना के खुशरूपुर में हुआ था। घुमन्तू एवं गरीब परिवार में पैदा होने के कारण शुरुआती पढ़ाई-लिखाई नहीं हुई। उनके पूर्वजों में कई पहलवान हो चुके थे। इनमें बहुत नामचीन पहलवानो हुए। डीहू पहलवान, नत्थू पहलवान एवं अलाउद्दीन पहलवान इनमें से ही हैं। जब बसारत खलीफा 7-8 साल के थे तो बसारत खलीफा को पहलवानी सिखाने के लिए नत्थू खलीफा ने अपने पास रख लिया। जो लोग पहलवानी करते हैं वह अपने नाम के साथ खलीफा शब्द का प्रयोग करते हैं। उस वक्त यह लोग बड़े-बड़े जमीन्दारों के यहाँ रहा करते थे। जमींदार लोग शौक से पहलवानों को अपनी हवेली

में रखा करते थे। उनके खाने-पीने का सारा खर्च स्वयं जमींदार लोग ही उठाया करते थे।

बसारत खलीफा का कद 6 फीट 9 इंच एवं रंग गोरा हाथ में 6 फीट का पीतल लगा हुआ डंडा, सर पर पगड़ी हमेशा बाँधे रखा करते थे।

'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आंदोलन में भी इनकी सक्रिय भूमिका रही है। उन्होंने 1942 में खुसरूपुर से पटना तक रेल तोड़ो आंदोलन में भाग लिया परंतु इसका श्रेय इनको नहीं मिला, क्योंकि ये घुमंतू जाति के थे। अंग्रेजी फौजों से जब भी मुकाबला होता था तो रात में ही उस जगह से पलायन कर कहीं दूसरी जगह छिप जाया करते थे। खुसरूपुर के पास बैरकपुर के एक गाँव में इनका दो शागिर्द - रामा खलीफा और मन्ना खलीफा अक्सर बातचीत के दौरान अपने गुरु बसारत खलीफा की अंग्रेजों से लड़ी गई अनेक लड़ाइयों के बारे में विस्तारपूर्वक ग्रामीणों को सुनाया करते थे। बसारत खलीफा हमेशा अपने पास कुरआन शरीफ रखा करते थे। नमाज के भी बड़े पाबंद थे। 1942 में रेल तोड़ो आंदोलन के दौरान खुसरूपुर रेल स्टेशन के पास अंग्रेजी हुकूमत से आजादी की आखिरी लड़ाई लड़ी, जिसमें वह काफी घायल हो गए थे। बाद में अंग्रेज फौज के ज्यादा दबाव के कारण खुसरूपुर से भागकर समस्तीपुर के ध्मोन गाँव चले गए। उसी गाँव में इलाज के दौरान कुछ दिनों के पश्चात् 26 सितंबर 1942 को बसारत खलीफा का ध्मोन में ही इंतकाल हो गया और वहीं उनको दफनाया गया।

पीर मुहम्मद मुनिस (अंसारी)

'मूनिस' पीर मुहम्मद अंसारी का तखल्लुस (उपनाम) था। मूनिस का जन्म 30 मई 1882 ई. को बेतिया शहर के एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम फतिंगन मियां था। राष्ट्रभाषा हिंदी, देश की आजादी, साहित्य और पत्राकारिता के लिए जीवनपर्यंत लड़ने वाले इस शख्स का नाम आज न साहित्य जगत में लिया जाता है और न पत्रकारिता में ही। पीर मुहम्मद मूनिस हिन्दू-मुस्लिम एकता के जबरदस्त पैरोकार थे।[15]

पीर मुहम्मद सिर्फ कलम के सिपाही नहीं, बल्कि कलम के सत्याग्रही भी थे। उन्होंने चंपारण की पीड़ा और संघर्ष के बारे में केवल लिखा ही नहीं, उस लड़ाई में भी शामिल रहे। गांधीजी का कोई समाचार न पाकर पंडित राजकुमार शुक्ल द्वारा पीर मुहम्मद मूनिस से लिखवाए गए पत्र महात्मा जी के पास 27 फरवरी, 1917 को भेजा, जिसमें चंपारण के संबंध में बहुत सी बातों और घटनाओं का उल्लेख किया।[16] मूनिस 'प्रताप' के संवाददाता थे और चंपारण में निलहों के अत्याचार को लेकर उन्होंने अनेक लेख लिखे थे; चिट्ठियाँ छपवाई थीं। कानपुर के हिंदी साप्ताहिक 'प्रताप' में उसके प्रकाशन के आरंभ काल से ही वे पीड़ित प्रजा की दुखी गाथा नियमित रूप से देशवासियों को सुनाने लगे। महात्मा गांधी ने शुक्ल जी को तार दिया "मैं कलकत्ता जा रहा हूँ और वहाँ भूपेंद्र नाथ बसु के मकान पर ठहरूंगा। वहाँ आकर मिलें।" इस तार के पाते ही शुक्ल कलकत्ता चले गए और वहाँ गांधी जी से मिले, उनके साथ पटना लौटे। महात्मा गांधी पटना से मुजफ्फरपुर होते हुए बेतिया पहुँचे। उन्होंने चंपारण के किसानों की करुण कहानी सुनी।[17] 23 अप्रैल, 1917 को पांच बजे शाम महात्मा गांधी पीर मुहम्मद मूनिस के घर पर उनकी माता जी से मिलने के लिए पैदल गए। चंपारण में गांधी के आगमन के पहले ही पीर मुहम्मद मूनिस 'प्रताप' में चंपारण के अत्याचार को लेकर अनेक लेख लिख चुके थे। गांधी के चंपारण सत्याग्रह के पहले से ही पीर मुहम्मद मूनिस सही मायने में चंपारण में रहते हुए देश के लिए अभियानी पत्रकारिता कर रहे थे। गांधी जी जब निलहे अंगरेजों के खिलाफ आंदोलन करने के लिए चंपारण आए तो पीर मोहम्मद मूनीस उनके साथ साए की तरह रहे। उनका एक ही मिशन था अंगरेज भगाओ और भारत को आजाद कराओ। मूनिस ऐसे मुजाहिद-ए-आजादी थे जिन्होंने अपनी पूरी जिंदगी जंग-ए-आजादी में ही लगा दी।[18]

अब्दुल्लाह चुड़िहारा
उर्फ सुकई (चुड़िहारा)

चौरीचौरा विद्रोह के इतिहास की चर्चा भारत ही नहीं, विदेशों में भी होती है। लेकिन दुर्भाग्यवश पसमांदा समाज से जुड़े शहीदों की चर्चा थोड़ा कम ही होती है, उन्हीं में से एक महान स्वतंत्राता सेनानी सुकई के सपनों एवं उनके बलिदान से भारतीय समाज अभी तक परिचित नहीं हो पाया है।

सुकई का जन्म चौरीचौरा के डुमरी खुर्द से 12 मील की दूरी पर चौरीचौरा स्टेशन से दक्षिण 20 किलोमीटर तरकुलहा देवी स्थान से दक्षिण-पूरब 8 किलोमीटर की दूरी पर राजधनी गांव के चुड़िहार टोले में सन् 1882 में हुआ था। सुकई के पिता का नाम गोबर था। वे अपना पैतृक व्यवसाय चूड़ी बनाने और बेचने का कार्य करते थे।[19]

8 फरवरी 1921 को महात्मा गांधी ने गोरखपुर के बाले मियां के मैदान में सभा की और नौजवानों से अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेंकने का आह्वान किया। राष्ट्रपिता के आह्वान पर चौरीचौरा सहित आसपास के दर्जनों गांवों के युवक आजादी की लड़ाई में कूद पड़े। वे भले ही अशिक्षित थे लेकिन उनकी राजनैतिक चेतना काफी बढ़ गई थी। वह अहमदाबाद में लगभग एक साल रहने के बाद अपने गाँव वापस लौट गए।

अहमदाबाद से गाँव आने पर वह गांधीजी के असहयोग आंदोलन को गाँव-गाँव तक पहुँचाने के काम में लग गए। 13 जनवरी 1922 को दूसरी खुर्द में मंडल स्थापना के बाद सुकई स्वयंसेवक बन गए थे। सुकई एवं उनके जैसे लोगों को आशा थी कि गांधी जी के असहयोग आंदोलन से हमारी सारी समस्याओं का हल हो जाएगा। सुकई एवं उनके साथी स्वयंसेवकों भगवान, विक्रम, दुधई, कालीचरण, लौटू, महादेव आदि, ने मिलकर कम ही समय में इस आंदोलन का चौरीचौरा के आसपास के गांवों में इतना सघन प्रचार किया कि चौरीचौरा थाने के फूँके जाने के दिन लगभग 3 हजार की भीड़ वहाँ इकट्ठी हो गई थी। चौरीचौरा के मुंडेरा बाजार कस्बे में शनिवार को साप्ताहिक बाजार लगता था, जहाँ विदेशी वस्त्रों के साथ मादक पदार्थ, गाँजा, भाँग, ताड़ी तथा शराब की खुली बिक्री होती थी। स्वयंसेवक विदेशी वस्त्रों की होली जलाने के साथ मादक पदार्थों की रोकथाम करने लगे। तत्कालीन थानेदार चौरीचौरा के गुप्तेश्वर सिंह ने स्वयंसेवकों को बेइज्जत करने के साथ उनकी पिटाई कर दी। फलस्वरूप मामला बिगड़ गया और कार्यकर्त्ता उग्र हो उठे। मामला बिगड़ता देख दारोगा को माफी माँगनी पड़ी। सार्वजनिक रूप से माफी माँगना दारोगा को

खल गया और उसने स्वयंसेवकों को सबक सिखाने की ठान ली। दारोगा ने चौकीदारों को लाठीचार्ज का आदेश दे दिया। चौकीदारों ने भीड़ पर लाठियाँ बरसानी शुरू कर दी थी। इस कार्रवाई से स्वयंसेवक भागकर पटरी के किनारे खड़े हो गए। फिर चौकीदारों ने फायरिंग करना शुरू कर दिया। जवाब में सुकई भी दारोगा एवं सिपाहियों को पीटने में शामिल हुए। अपने बचाव के मद्देनजर स्वयंसेवकों ने थाने से दूर जाकर रेलवे पटरियों पर बिछे पत्थर उठाकर अंग्रेज सिपाहियों पर बरसाने शुरू कर दिए। इसके बाद जो भीड़ वापस चली गई थी वह वापस आ गई। सिपाहियों पर उन्होंने हमला बोल दिया। डर के मारे पुलिसकर्मी थाना भवन में जाकर छिप गए। उन्होंने अंदर से ताला बंद कर दिया। यही उनके लिए जानलेवा साबित हुआ। उस भवन में आग लगा दिया गया। थाने में छिपे हुए सारे लोग जलकर मर गए। जो सिपाही बाहर थे उन्हें खोज-खोज कर पीटा जा रहा था।[20]

चौरीचौरा विद्रोह के लिए 224 लोगों को फाँसी का अभियुक्त बनाया गया था। मदन मोहन मालवीय ने इन अभियुक्तों का मुकदमा लड़ा था। 151 लोगों को फाँसी की सजा से बचा लिया गया। 19 लोगों को 2 से 11 जुलाई, 1923 के दौरान फाँसी दे दी गई। इस घटना में 14 लोगों को आठ वर्ष सश्रम कारावास की सजा हुई। जिन 19 लोगों को नहीं बचाया जा सका उनमें सुकई, नजर अली और लाल मोहम्मद के नाम भी शामिल हैं। अंततोगत्वा सुकई को बाराबंकी के जिला कारागार में 3 जुलाई 1923 को प्रात: 6 बजे फाँसी दे दी गई। सुकई को फाँसी के बाद उसकी पत्नी एवं बच्चे को उत्पीड़न का सामना करना पड़ा।

तूती-ए-बिहार कारी
मो. उसमान (अंसारी)

कारी मो. उसमान दरभंगा जिला के सिंहवाड़ा प्रखंड स्थित बरिऔल गाँव के थे। यहीं के एक गरीब किसान मो. शहामत हुसैन के घर 01.01. 1888 ई. में मो. उसमान का जन्म हुआ था। मो. उसमान बचपन से ही काफी तेज दिमाग के थे और यही कारण रहा कि मात्र 10 वर्ष की उम्र में ही उन्होंने हिफज मुकम्मल कर लिया। इनके गुरु मौलाना मोहम्मद अली मुंगेरी थे जिनके नेतृत्व व मार्गदर्शन में उन्होंने फाजिल की उपाधि प्राप्त की थी।

कम उम्र में ही वह स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े। तत्कालीन ओलमाओं रशीद अहमद गंगोही, महमूदुल हसन, मौलाना शब्बीर अहमद उसमानी, शेखुल इसलाम मदनी साहब इत्यादि के संपर्क में आकर वह स्वतंत्रता आंदोलन को लेकर होने वाली बैठकों में शामिल होने लगे। जल्द ही कारी मो. उसमान एक अच्छे वक्ता के रूप में चर्चित हो गए।[21] एक वक्त ऐसा भी आया जब ओलमाओं पर अंगरेज हुकूमत का अत्याचार बहुत बढ़ गया और जगह-जगह ओलमाओं को जेल में बंद किया जाने लगा और बड़ी संख्या में शहीद भी कर दिए गए। ऐसे नाजुक दौर में कारी उसमान ने छुप-छुपाकर लखनऊ के मदरसा मुंबे तिब्ब से हकीमी की शिक्षा पूरी की और लखनऊ शहर में नोमानी शफाखाना के नाम से एक हकीमी दवाखाना खोल लिया। लखनऊ में हिकमत (हकीमी) करते और स्वतंत्रता आंदोलन की बैठकों में भी छुप-छुपाकर शामिल हुआ करते थे। क्योंकि तब तक अंगरेज हुकूमत ने जुलूस-जलसा करने पर पाबंदी लगा दी थी। अंगरेज हुकूमत का दवाब बढ़ता देख कारी उसमान लखनऊ छोड़कर कलकत्ता चले गए और वहीं मटिया बुर्ज में उसमानी शफाखाना के नाम से हकीमी दवाखाना शुरू किया। आदत के मुताबिक वहाँ भी स्वतंत्रता आंदोलन के लिए होने वाली बैठकों एवं आंदोलनों में शामिल होने लगे।[22]

कारी उसमान कलकत्ता में भी जल्द ही चर्चित होने लगे। अंगरेज हुकूमत की नजर में आ जाने और पहचान लिए जाने के बाद वह कलकत्ता को छोड़कर तत्कालीन संयुक्त बिहार के गिरीडीह में आकर आबाद हुए और वहीं उसमानी शफाखाना चलाने लगे। देश की स्वतंत्रता के लिए लगातार एक जगह से दूसरी जगह का सफर करते रहे। जब वह गिरीडीह में ही थे उसी दौरान उनके गुरु मौलाना मो. अली मुंगेरी वहाँ आए और उनसे कहा कि आप धर्म और देश की सेवा में लग जाएँ। अपने गुरु के आदेश के बाद वह शफाखाना को बंद करके पूरी तरह देश सेवा में पूरी ताकत से लग गए। इसी बीच एमारते शरिया, फुलवारीशरीफ में बड़े-बड़े ओलमाओं और नेतागण की मौजूदगी में उनको 'तूती-ए-बिहार' का गौरवमय सम्मान दिया गया।[23]

रशीदुद्दीन अहमद कुरैशी -

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी और कुल हिंद जमीअतुल कुरैश के संस्थापक अलहाज हाफीज रशीदुद्दीन अहमद कुरैशी का जन्म 24. 03.1888 ई. में मेरठ के सम्मानित परिवार में हाफीज अब्दुल करीम कुरैशी के घर में हुआ था जो शिक्षा और पारस्परिक सद्भाव के लिए प्रसिद्ध रहा है।

रशीदुद्दीन अहमद कुरैशी ने मेरठ के डिविजनल कॉलेज से शिक्षा शुरू की। वह अंग्रेजी, अरबी और उर्दू माध्यम में रुचि रखते थे। कविता के प्रति भी उनका लगाव था। उन्होंने तहसीलदार के रूप में जनसेवा की, जिसके कारण उनसे लोग अत्यधिक प्रभावित हुए। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लेने के उद्देश्य से उन्होंने तहसीलदार का पद त्याग दिया। वर्ष 1914 से 1931 के बीच स्वतंत्रता संग्राम में वह लगातार सक्रिय बने रहे।[24]

वह एजुकेशनल कॉन्फ्रेंस, अंजुमन खुद्दामुल इसलाम, अंजुमन इसलाहुल मुसलेमीन आदि संस्थाओं के माध्यम से जनसेवा में सक्रिय रहे।

मौलवी अली हुसैन
आसिम बिहारी (अंसारी)

मौलवी अली हुसैन आसिम बिहारी का जन्म 15.04.1889 ई. को मुहल्ला खासगंज, बिहारशरीफ में हुआ था। तेरह-चौदह वर्षों तक उनकी शिक्षा अपने दादा मौलाना अब्दुल हकीम की देख-रेख में हुई।[25] इससे खुदापरस्ती, दीनदारी और इस्लामी शिक्षा की गहराई को समझने का अवसर मिला।

आसिम बिहारी के परिवार ने मौलाना अब्दुल हकीम से लेकर आसिम बिहारी तक देश की स्वतंत्रता, समानता, राष्ट्रीय सद्भावना, न्याय, शिक्षा और विकास के लिए संघर्ष किया और कुर्बानियां दीं। एक निर्धन परिवार से संबंधित होने के बाद भी अपनी योग्यता के आधर पर गाँव, शहर और कई स्थानों पर जनहित में कार्य करते रहे। विरोध के बाद भी संकटों का सामना करते रहे और मंजिल की ओर बढ़ते रहे। अपनी जबान, कलम, हृदय और आत्मा की सम्पूर्ण ऊर्जाशक्ति देश और मिल्लत पर न्योछावर कर निर्धन और दलितों के लिए कार्य करते रहे। यहाँ तक कि एक सुदृढ़

अखिल भारतीय संगठन भी बनाया।

बाबा खलील दास (शाह)

प्रखर स्वतंत्रता सेनानी, प्रतिष्ठित कवि, महान सूफी और अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के रचनाकार बाबा खलील दास का जन्म स्थान सीवान (बिहार) है। उनका जन्म 21 मार्च 1898 ई. (शुक्रवार) को सीवान के कागजी मोहल्ला के एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम शाह अमीर हसन था। तत्कालीन परंपरा के अनुसार उनकी शिक्षा अरबी, फारसी और उर्दू से प्रारंभ हुई। इसके बाद वी.एम. उच्च विद्यालय सीवान में नामांकन हुआ तथा इसी विद्यालय से सन् 1916 ई. में मैट्रिक पास किया। उस समय सीवान में कोई महाविद्यालय नहीं था इसलिए उच्च शिक्षा के लिए पटना चले गए और बी.एन. कॉलेज में दाखिला लिया। वहाँ संस्कृत और हिंदी पढ़ने लगे।[26] जब 1921 ई. में उन्होंने बी.ए. की परीक्षा दी ही थी कि असहयोग आंदोलन प्रारंभ हो गया। उस समय बाबा खलील दास मौलाना मजहरुल हक साहब के साथ सिकंदर मंजिल, फ्रेजर रोड, पटना में अवस्थित उनकी कोठी में रहते थे। यह मकान असहयोग आंदोलन के दौरान तमाम राजनैतिक गतिविधियों का केंद्र था तथा देश के सभी प्रख्यात और सुप्रसिद्ध राजनेता वहाँ आते-जाते रहते थे। खलील दास को वहाँ रहकर देश के प्रायः सभी हिंदू-मुस्लिम नेताओं की सेवा करने तथा उन्हें नजदीक से देखने-सुनने का अवसर मिला। खलील दास ने मौलाना मजहरुल हक और महात्मा गांधी से प्रेरणा लेकर अपनी पढ़ाई छोड़ दी और स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने लगे। वे प्रेम सदाशयता, एकता और भाईचारे पर आधारित प्रवचन करने लगे। हक साहब के सान्निध्य में रहते हुए खलील दास के मन और मस्तिष्क में स्वतंत्रता की ज्योति प्रज्वलित हो चुकी थी। वे हक साहब के साथ कांग्रेस की सभाओं में जाने लगे थे। इसलिए खलील दास ने असहयोग आंदोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लिया तथा आगे की पढ़ाई छोड़ दी।[27]

बाबा खलील दास के नाम में 'दास' का प्रत्यय लगने के पीछे एक रोमांचक कहानी है। अप्रैल 1921 की बात है। महात्मा गांधी की अध्यक्षता में बांकीपुर, पटना में कांग्रेस की एक सभा का आयोजन हुआ। उस सभा में मोतीलाल नेहरू, सी.आर. दास, ब्रज किशोर प्रसाद, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, मौलाना मजहरुल हक और मौलाना अबुल कलाम आजाद आदि नेता उपिस्थत थे। उपरोक्त नेताओं में सी. आर. दास की विशेषता यह थी कि वे अपने भाषणों में संस्कृत के श्लोकों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग अधिक करते थे। इस सभा में जब खलील दास को भाषण देने के लिए आमंत्रित किया गया तो वे भी सी.आर. दास की भांति संस्कृत के श्लोकों का उचित प्रयोग कर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। महात्मा गांधी, खलील दास के भाषण को सुनकर अभिभूत हो गए और उल्लसित मुद्रा में कहा कि "आज तो खलील भी वैसा ही बोला जैसा कि दास"। उस सभा में लगभग दस हजार श्रोता मौजूद थे। उसी दिन से महात्मा गांधी के शब्दों को श्रोताओं ने आत्मसात् कर लिया और मो. खलील को खलील दास कहने लगे।

बाबा खलील दास के प्रथम राजनैतिक गुरु एवं अभिभावक मौलाना मजहरुल हक थे, जो कि हिंदू मुस्लिम एकता के प्रतीक और सम्मानित राष्ट्रीय नेता के रूप में ख्यात थे। उनके दूसरे गुरु डॉ. राजेंद्र प्रसाद हुए। मौलाना मजहरुल हक उनके प्रथम संरक्षक एवं पथ प्रदर्शक के रूप में जाने जाते हैं। उन्हीं की वजह से वह सदाकत आश्रम में रहने लगे। जहाँ राष्ट्रीय स्तर के आंदोलनकारी एवं विद्वानों से मिलने का अवसर भी मिला। वहीं उन्होंने राष्ट्रीय गीत 'भारत जननी तेरी जय हो' लिखी। यह गीत काफी प्रचलित हुआ था। इसी गीत को लेकर बाबा खलील दास की पहचान भी राष्ट्रीय स्तर की हो गई।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने भी अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है कि उस वक्त आंदोलनकारियों की हर बैठक की शुरुआत खलील दास के इसी गीत से हुआ करती थी। गीत के कुछ अंश[28] -

भारत जननी तेरी जय हो, तेरी जय हो।
तेरा विजय सूर्य, माता उदय हो।।
गांधी रहे वह तिलक, यहाँ पे फिर आवे।
अरविंद, लाला, विपिन - तेरी जय हो।
तेरे लिए जेल ही स्वर्ग का द्वार।
बेड़ी की झन-झन में वीणा की लय हो।।

अब्दुल अहद मो. नूर (अंसारी)

मुराद अली के तीन बच्चे हुए - महमुदा खातून, नूर मोहम्मद और वली मोहम्मद। वली मोहम्मद की मृत्यु बचपन में ही हो गई। नूर मोहम्मद (मो. नूर) का जन्म 01.08.1899 में हुआ था।[29] मखनाहा गाँव में हैजा की बीमारी से मुराद अली की मृत्यु हो गई। जिस कारण उनकी पत्नी बच्चों के साथ मधेपुर अपने पिता बादर मियाँ के यहाँ चली आई और वहीं रहने लगी। बादर मियाँ (बदरुद्दीन) बच्चों को प्यार से रखते और पालन-पोषण करते थे। बादर मियाँ खेती करते और करघा चलाकर जीवन बसर करते थे।

नूर मोहम्मद का मधेपुर के पंचलाल झा पंडित के पाठशाला में मो. नूर के नाम से नामांकन कराया गया। यहीं से उन्होंने मिडिल पास किया।[30] इसके बाद वह कुछ दिनों तक दरभंगा में रहे फिर मुजफ्फरपुर चले गए। वहाँ कुछ दिनों तक समाचार पत्रों की हॉकरी भी की थी। फिर उन्होंने मुजफ्फरपुर सरकारी स्कूल में अपना नामांकन कराया। पढ़ाई काल में ही उनका विवाह नसीबा खातून से हुआ। 1918 ई. में मुजफ्फरपुर सरकारी स्कूल से द्वितीय श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा पास की। मुजफ्फरपुर में रहकर उन्होंने जिला कांग्रेस के राजनैतिक व्यक्तियों से संपर्क बनाना आरंभ किया और उनकी बैठकों में आने-जाने लगे थे।

1942 के आंदोलन में वह सक्रिय थे। उनकी सक्रियता के कारण अंग्रेजी सिपाहियों द्वारा गिरफ्तारी की कार्यवाही शुरू हुई। इस कारण वह कसहा कामत चले गए और गिरफ्तारी से बचे। इससे परिवार की आर्थिक स्थिति खराब हुई। उनकी पत्नी नसीबा खातून बच्चों की परवरिश करती रही। कभी-कभी वह रात्रि के समय में घर आते और फिर लौट जाते थे। उन दिनों उनके परिवार को अत्यधिक कष्ट झेलना पड़ा।

वह वर्ष 1946 में मधेपुर से चुनाव लड़े और विजयी होकर बिहार एसेंबली में विधायक के रूप में पहुँचे। उस चुनाव में 40 मुस्लिम सीटों में से मोमिन बिरादरी के 6 विधायक निर्वाचित हुए थे। वह 1951 से 1962 तक उपमंत्री के पद पर रहे। कई विभागों का काम उन्होंने देखा। कामराज योजना के अंतर्गत मुख्यमंत्री विनोदानंद झा के साथ मंत्रालय को छोड़ा। इससे पूर्व वह दस वर्षों तक पूर्णिया नगरपालिका म्युनिसिपल

कमिश्नर तथा पाँच वर्षों तक पूर्णिया जिला बोर्ड के सदस्य भी रह चुके थे।

मौलाना अतीकुर्रहमान आरवी (मंसूरी)

मौलाना का जन्म शाहाबाद जिले के डेहरी-आन-सोन थानांतर्गत बरांव कलां गाँव में 25.03.1903 ई. को एक मंसूरी (धुनिया) परिवार में हुआ था। उनके पिता साम्हर अली सिपाही थे। साम्हर अली के पिता अर्थात् मौलाना अतीकुर्रहमान के दादा शेख हुसैनी मियां जगदीशपुर में बाबू कुंवर सिंह के भरोसेमंद सिपाही थे। उन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा मदरसा मोईनुल गुरबा और उच्च शिक्षा दारुल उलूम देवबंद से प्राप्त की थी। शिक्षा प्राप्ति के बाद देवबंद में ही मुनाजरा सेक्शन के हेड के तौर पर अपने काम को अंजाम दिया। उस जमाने में इसके लिए कोई तनख्वाह सिस्टम नहीं था जब तनख्वाह सिस्टम लागू हुआ तब उन्होंने अपने पद को त्याग दिया। अंग्रेजों से भारत को आजाद कराने के लिए उन्होंने बिहार के छोटे-बड़े कस्बों और शहरों से लेकर गोरखपुर, बनारस, देहरादून, लाहौर, कराची और पेशावर तक का दौरा किया। उन्होंने बिना धर्मिक भेदभाव के अपने भाषणों द्वारा देश के हर घर में स्वतंत्राता संग्राम का संदेश फैलाने का कार्य किया। बाद में उन्हें अंग्रेजों ने देहरादून में हिरासत में ले लिया और लाहौर जेल भेज दिया। जेल से रिहा होने के बाद मौलाना आरवी बिहार वापस आ गए और फिर से उन्होंने ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ लोगों को एकजुट करना शुरू कर दिया। उनके निकट सहयोगियों में जयप्रकाश सिंह, गुदरी सिंह यादव और जगदीश साहू प्रमुख थे।

हजरत मौलाना हुसैन अहमद मदनी के प्रमुख शागिर्दों में वह थे। वह आजादी की लड़ाई का दौर था। उनकी दिलचस्पी राजनीति में बढ़ने लगी। दारुल उलूम, देवबंद में पढ़ते वक्त ही उनकी पहचान एक अच्छे मोकर्रिर (भाषणकर्ता) के रूप में हो गई। मौलाना मुसलमानों की पिछड़ी जाति की तहरीक से भी खुद को जोड़े रखा।

अगस्त आंदोलन के नाम से चर्चित 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में जब नासरीगंज में सिंचाई विभाग और डाकघर का खजाना लूट लिया गया और गिरफ्तारियों का दौर शुरू हुआ तो मौलाना छुपकर पलामू, गढ़वा, डाल्टनगंज, बानू, चुतरू, रंका, हथुआ वगैरह इलाकों में रहने लगे।[31] इस दरम्यान वहाँ उन्होंने कई मदरसे खुलवाए। जब मुल्क आजाद हुआ तो वह दारुल उलूम, देवबंद चले गए और वहाँ उन्होंने अध्यापक की नौकरी कर ली।

सन् 1937 में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान नामक मुल्क बनाने का एक प्रस्ताव पास किया और मुसलमानों से पूरे जोशो-खरोश के साथ 'पाकिस्तान दिवस' मनाने की अपील की। बहरहाल, मौलाना आरवी जैसे सच्चे राष्ट्रवादी ने पुरजोर ढंग से इसका विरोध किया और जिन्ना द्वारा प्रतिपादित 'दो राष्ट्र के सिद्धांत' को सिरे से नकार दिया। उन्होंने हमेशा इस बात पर बल दिया कि 'धर्म के आधर पर, इस्लाम देश को बाँटने की इजाजत नहीं देता। गंगा-जमुनी तहजीब तथा हिंदुस्तान के सिद्धांत में अटूट विश्वास रखने वाले थे।

मौलाना का जन्म शाहाबाद जिले के डेहरी-आन-सोन थानांतर्गत बरांव कलां गाँव में 25.03.1903 ई. को एक मंसूरी (धुनिया) परिवार में हुआ था। उनके पिता साम्हर अली सिपाही थे। साम्हर अली के पिता अर्थात् मौलाना अतीकुर्रहमान के दादा शेख हुसैनी मियां जगदीशपुर में बाबू कुंवर सिंह के भरोसेमंद सिपाही थे। उन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा मदरसा मोईनुल गुरबा और उच्च शिक्षा दारुल उलूम देवबंद से प्राप्त की थी। शिक्षा प्राप्ति के बाद देवबंद में ही मुनाजरा सेक्शन के हेड के तौर पर अपने काम को अंजाम दिया। उस जमाने में इसके लिए कोई तनख्वाह सिस्टम नहीं था जब तनख्वाह सिस्टम लागू हुआ तब उन्होंने अपने पद को त्याग दिया

नेमतुल्लाह अंसारी

नेमतुल्लाह अंसारी का जन्म 28 सितंबर 1903 ई. को गोरखपुर के एक संपन्न परिवार में हुआ था। कलकत्ता में पढ़ने के दौरान कम उम्र में ही गांधीजी के 1920 के असहयोग आंदोलन में अपनी पढ़ाई छोड़कर शामिल हो गए। गोरखपुर में 1925 के अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन में प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए। 1930 के नमक सत्याग्रह में भी शामिल हुए।[32] 1936 में गोरखपुर शहर कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष चुने गए। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में उन्हें गिरफ्तार भी किया गया था। वह मोमिन कॉन्फ्रेंस से भी जुड़े हुए थे। गोरखपुर में 1939 में आयोजित मोमिन कॉन्फ्रेंस के आयोजन में उनकी मुख्य भूमिका थी।

अब्दुल कैयूम अंसारी

अब्दुल कैयूम अंसारी हिंदू मुस्लिम राष्ट्रीय एकता, सांप्रदायिक सद्भाव और सामाजिक न्याय के समर्थक थे। वह सामाजिक कार्यों एवं मंत्रालय के कार्यों को देखने के साथ-साथ नमाज-रोजा के भी पाबंद थे। वह एक ऐसे नेता थे जो राजनैतिक पंक्तियों को तोड़ते हुए राजनैतिक क्षेत्र पर छा गए। वह अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई में आगे रहे। उन्होंने मुस्लिम लीग और जिन्ना का तीव्र विरोध किया और दो राष्ट्रों की विचारधारा के विरोध में भारत के बँटवारा का घोर विरोध किया था, जिसके परिणामस्वरूप 1937 के निर्वाचन में बिहार में एक भी सीट मुस्लिम लीग नहीं जीत सकी।[33] मुस्लिम समुदाय में फैले जात-पात, ऊँच-नीच और अशराफ व अरजाल में फैली बुराइयों का भी विरोध किया। समाज के दबे-कुचले और अत्याचार पीड़ित व्यक्तियों को गले लगाया। साथ ही उनकी शिक्षा, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, कल्याण, और समानता को अपनी राजनीति का केंद्र बनाया।

पुराने शाहाबाद जिला के डेहरी ऑन सोन में 1 जुलाई 1905 में एक मध्यवर्गीय खुशहाल परिवार में कयूम अंसारी का जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम मौलवी अब्दुल हक था। माँ साफिया बेगम, हाफिज-ए-कुरआन थीं। 1913 में डेहरी मिडिल स्कूल में उनका नाम लिखाया गया। 1917 में सासाराम हाई स्कूल

में दाखिल हुए। कयूम अंसारी ने 1937 में मोमिन कॉन्फ्रेंस में शामिल होने और इसी के लिए अपनी पूरी जिंदगी वक्फ करने का फैसला कर लिया।

उन्होंने कश्मीर के पाकिस्तानी कब्जे वाले क्षेत्रों की मुक्ति के लिए 1957 में 'इंडियन मुस्लिम यूथ कश्मीर फ्रंट' की भी स्थापना की। इसके बाद, उन्होंने सितंबर 1948 के दौरान हैदराबाद में रजाकारों के भारत विरोधी विद्रोह में भारत सरकार का समर्थन करने के लिए भारतीय मुसलमानों को भी प्रोत्साहित किया।

मुस्लिम लीग की अलगाववादी नीतियों का विरोध कर 1937-38 के दौरान मोमिन आंदोलन चलाकर गरीब और पिछड़ी जातियों के उद्धार का काम करने वाले अब्दुल कयूम अंसारी न सिर्फ एक अच्छे नेता थे बल्कि एक समृद्ध पत्रकार, लेखक और कवि भी थे।[34]

1946 में अब्दुल कयूम अंसारी ने जिन्ना के द्विराष्ट्र सिद्धांत, मुस्लिम लीग की सांप्रदायिक नीति की खुली मुखालफत करके ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस के झंडे के नीचे विधानसभा की 6 सीटें जीत कर जिन्ना को करारा जवाब दिया था। गरीब और पिछड़े लोगों के नायक अंसारी साहब ने 1953 में ऑल इंडिया बैकवर्ड क्लासेस कमीशन को भारत सरकार द्वारा गठित करवाया, जो वाकई एक बड़ा कदम था।

मौलवी अब्दुल समी नदवी (अंसारी)

बिहार राज्य का दरभंगा जिला साहित्य, शिक्षा और राजनीति के क्षेत्रों में संपूर्ण देश में जाना जाता है। दरभंगा ने असंख्य साहित्य, शिक्षा, चिकित्सा और राजनीति के क्षेत्रा में प्रतिभाओं को धरातल पर प्रकट किया है। उन्हीं में एक नाम मौलवी अब्दुल समी नदवी का भी है। उनका जन्म 13.08.1905 ई. को दरभंगा जिला के लहेरियासराय स्थित महाराजगंज मुहल्ला में हुआ था। महाराजगंज मुहल्ला पूरे जिले में शिक्षित मुस्लिम बहुल क्षेत्र के रूप में जाना जाता है।

1939 ई. में वह दरभंगा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सदस्य निर्वाचित हुए और 1942 ई. तक इस पद पर बने रहे। जब 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन शुरू हुआ तब पद छोड़कर आंदोलन में सक्रिय हो गए। आंदोलन में उनके सक्रिय होने के कारण परिवार के अन्य पुरुष सदस्यों को भी जेल जाना पड़ा। आजादी के बाद 1948 से लगातार पाँच वर्षों तक दरभंगा जिला कांग्रेस कमिटी के महासचिव रहे।[35]

मौलवी सगीर अहमद (अंसारी)

दरभंगा शहर के लहेरियासराय स्थित महाराजगंज मोहल्ला निवासी अब्दुल मजिद और आयशा खातून को तीन पुत्र एवं दो पुत्रियाँ थीं। पुत्रों में कारी यहया, मो. जकरिया एवं मो. सगीर अहमद। अब्दुल मजिद के छोटे पुत्र सगीर अहमद स्वतंत्रता सेनानी थे। मो. सगीर अहमद का जन्म 5 फरवरी 1910 ई. को हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा मदरसा इमदादिया, लहेरियासराय में हुई। फिर उच्च शिक्षा उत्तर प्रदेश के मदरसा देवबंद में हुई। इस मदरसा में उनके सहपाठी थे बिहार के चर्चित 'खानकाह रहमानी', मुंगेर के मिनतुल्लाह रहमानी। दोनों के बीच काफी करीब का रिश्ता बन गया था। मदरसा देवबंद में पढ़ने के दौरान ही स्वतंत्रता आंदोलनकारियों के साथ संपर्क हुआ मौलवी सगीर अहमद का। वह भी आंदोलन को लेकर होने वाली बैठकों में शामिल होने लगे और पूर्णरूपेण स्वतंत्रता आंदोलन में कूद गए। जब वह दरभंगा आए उस वक्त भी अपनी गतिविधियों को चालू रखा। दरभंगा ट्रेजरी लूटकांड में भी वह शामिल थे। उस वक्त वह अंगरेज सिपाहियों के गोली का शिकार होते-होते बचे थे।

कई बार अंगरेज सिपाहियों के लाठी और चाबुक का शिकार हुए। आंदोलन के क्रम में वह एक बार अंगरेज पुलिस के हत्थे चढ़ गए और फिर उनको दिल्ली जेल में बंद कर दिया गया, जहाँ वह दूसरे स्वतंत्रता आंदोलनकारियों के साथ मिलकर काफी हंगामा किया। जिससे परेशान होकर दिल्ली जेल पुलिस ने चाबुक से इतना मारा कि बेहोश हो गए। फिर आला अधिकारियों के आदेश से मौलवी सगीर अहमद एवं अन्य स्वतंत्रता आंदोलनकारियों को 15 सितंबर 1932 को ओल्ड सेंट्रल जेल, मुल्तान (अब पाकिस्तान) के एक शहर में बंद कर दिया। जहाँ से लगभग नौ माह बाद उनको रिहा किया गया। स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के कारण स्वतंत्रता आंदोलन के अग्रणी नेताओं में महात्मा गांधी, राजेंद्र प्रसाद, जवाहर लाल नेहरू इत्यादि से मौलवी सगीर अहमद के काफी घनिष्ठ संबंध हो गए थे।[36] यही कारण रहा कि देश की आजादी के बाद प्रथम राष्ट्रपति बने डॉ. राजेंद्र प्रसाद, राष्ट्रपति रहते हुए जब दरभंगा के लालबाग मोहल्ला स्थित 'नेशनल स्कूल' आए तो मौलवी सगीर अहमद से भी मिलने की इच्छा जाहिर की। इत्तेफाक से मौलवी सगीर अहमद उन दिनों दरभंगा टावर पर ही चीनी-मिट्टी के बर्तनों एवं मुरादाबादी बर्तनों की दुकान चलाते थे। जहाँ राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद जी की सुरक्षा में लगे सिपाहियों ने मौलवी सगीर को राष्ट्रपति जी के मिलने की इच्छा बताई और इस प्रकार देश की आजादी के लिए आंदोलन चलाने वाले दो महान विभूतियों का मिलन मिथिला की धरती पर हुआ।[37]

वर्ष 1972 में आजादी की 25वीं वर्षगांठ (सिल्वर जुबली वर्ष) पर स्वतंत्रता सेनानियों को ताम्रपत्र देकर सम्मानित किया गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के हाथों स्वतंत्रता सेनानी सगीर अहमद जी को भी ताम्रपत्र देकर सम्मानित किया गया था।[38] उनका देहांत 17.11.1989 ई. को 79 वर्ष की उम्र में हो गया।

भदई कबाड़ी (राईन)

भदई कबाड़ी का जन्म 1914 ई. में बिहार के सीतामढ़ी जिला के चौरौत गाँव में हुआ था। बिहार के सीतामढ़ी जिला के पुपरी अनुमंडल का चोरौत गाँव, इसी नाम पर प्रखंड भी है। इस प्रखंड में कुल सात पंचायत है। इस प्रखंड को जिले का सबसे पिछड़ा प्रखंड माना जाता है। इसी चोरौत गाँव के रहने वाले थे शहीद भदई कबाड़ी। चोरौत का एक टोला है राईन जाति बहुल, जिसे कबाड़ी टोला के नाम से जाना जाता है। इसे चोरौत दक्षिणबाड़ी टोला भी कहते हैं। परंतु इस टोला में स्थापित सरकारी स्कूल 'राजकीय प्राथमिक विद्यालय कबाड़ी टोला' के नाम से है। यह चोरौत पश्चिम पंचायत वार्ड नं. 08 में स्थापित है।

मुन्ने मियां की दो शादी हुई थी। पहली पत्नी से अलीजान और मो. जान पैदा हुए। पहली पत्नी के इंतकाल के बाद मुन्ने मियां

की दूसरी शादी हुई। जिनसे दो पुत्र भदई कबाड़ी और अब्दुल्लाह उर्फ दसई कबाड़ी का जन्म हुआ। भदई कबाड़ी और दसई कबाड़ी किसान थे। खेतीबाड़ी करते थे। भदई कबाड़ी पहलवानी भी किया करते थे। दोनों भाई 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' से लगभग दो वर्ष पूर्व से ही स्वतंत्रता आंदोलनकारियों के संपर्क में आकर आंदोलन की गतिविधियों में शामिल होने लगे थे। स्वतंत्रता आंदोलन में भदई कबाड़ी और उनके छोटे भाई अब्दुल्लाह उर्फ दसई कबाड़ी काफी सक्रिय रहा करते थे। 25 अगस्त 1942 को सैकड़ों की संख्या में लोग फरसा, लाठी, मिट्टी तेल का बर्तन, खंती इत्यादि लेकर पुपरी स्टेशन पर जमा हो गए। वह लोग अंग्रेज अधिकारी के आगमन का विरोध करने के लिए पुपरी स्टेशन पर जमा हुए थे और विरोधस्वरूप पटरी उखाड़ने लगे। आंदोलनकारियों को भगाने के लिए पुलिस ने लाठी चार्ज किया, इससे आंदोलनकारी और उग्र हो गए। इन आंदोलनकारियों में भदई कबाड़ी और दसई कबाड़ी दोनों भाई भी शामिल थे। आंदोलनकारियों को बलपूर्वक हटाने के लिए पुलिस ने गोली चलानी शुरू कर दी जिससे लगभग दर्जन भर लोग शहीद हो गए इसमें हिंदू भी थे और मुसलमान भी। इन मुस्लिम शहीदों में भदई कबाड़ी भी थे जो अंग्रेज पुलिस की गोली के शिकार हुए थे। भदई कबाड़ी के छोटे भाई दसई कबाड़ी 25 अगस्त 1942 के आंदोलन में शामिल थे और अंग्रेजों की गोली से बाल-बाल बचे थे। सभी मुस्लिम शहीदों को पुपरी थाना के सामने स्थित कब्रिस्तान में दफन किया गया था।

भदई कबाड़ी के शहादत दिवस को प्रत्येक वर्ष मनाने की शुरुआत 2020 ई. से सामाजिक कार्यकर्ता सीतामढ़ी जिला निवासी विनोद बिहारी मंडल, नितीश मंडल, नवल मंडल इत्यादि लोगों के संयुक्त प्रयास से शुरू हुआ।

स्वतंत्रता आंदोलन में भदई कबाड़ी और उनके छोटे भाई अब्दुल्लाह उर्फ दसई कबाड़ी काफी सक्रिय रहा करते थे। 25 अगस्त 1942 को सैकड़ों की संख्या में लोग फरसा, लाठी, मिट्टी तेल का बर्तन, खंती इत्यादि लेकर पुपरी स्टेशन पर जमा हो गए। वह लोग अंग्रेज अधिकारी के आगमन का विरोध करने के लिए पुपरी स्टेशन पर जमा हुए थे और विरोधस्वरूप पटरी उखाड़ने लगे। आंदोलनकारियों को भगाने के लिए पुलिस ने लाठी चार्ज किया, इससे आंदोलनकारी और उग्र हो गए। इन आंदोलनकारियों में भदई कबाड़ी और दसई कबाड़ी दोनों भाई भी शामिल थे। आंदोलनकारियों को बलपूर्वक हटाने के लिए पुलिस ने गोली चलानी शुरू कर दी जिससे लगभग दर्जन भर लोग शहीद हो गए इसमें हिंदू भी थे और मुसलमान भी

बिकाऊ अहमद कुरैशी (कुरैशी)

बिकाऊ अहमद कुरैशी का जन्म 20.04.1916 को हुआ था। उनके पिता का नाम हुसैनी कुरैशी था। वह बिहार के गाँव सरैया, पोस्ट - औरंगाबाद, थाना - तलुढु, जिला - रोहतास में पैदा हुए थे। उन्होंने अपना खानदानी कुरैशी वाला कारोबार शुरू किया परंतु उनका हृदय गुलामी से बेचैन था और स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु तीव्र भावना रखते थे। इसी आंतरिक भावना के कारण वह मौलाना अबुल कलाम आजाद और महात्मा गांधी जी के आंदोलनों से अत्यधिक प्रभावित भी हुए। वर्ष 1942 में जब महात्मा गांधी ने अंग्रेजों भारत छोड़ो का नारा दिया तो उनकी आंतरिक भावना सजग हो उठी जिस कारण बिकाऊ अहमद कुरैशी ने अपने कतिपय मित्रों के साथ तलुथु बाजार डाकघर में तोड़-फोड़ की और पूरे डाकघर कार्यालय में आग लगा दी।[39] इस घटना के उपरांत उनके विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट निकला। अंग्रेज पुलिस ने इन लोगों को गिरफ़्तार करने के लिए बहुत प्रयास किया लेकिन सपफल न हो सके। वह डेहरी ऑन सोन में छिपे रहे। वहाँ भी उन्होंने कुछ व्यक्तियों के साथ योजनाबद्ध रूप से डेहरी ऑन सोन रेलवे स्टेशन पर अत्यधिक तोड़ फोड़ की और रेलवे स्टेशन में आग लगा दिया। अंग्रेजों ने बिकाऊ अहमद कुरैशी को गिरफ्तार करने का पूर्ण प्रयास किया लेकिन असफल रहे। स्वतंत्रता सेनानी बिकाऊ अहमद कुरैशी तन-मन से स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े हुए थे और अपने घर-परिवार पर वह कुछ भी ध्यान नहीं दे पाते थे जिस कारण उनके बच्चों को निर्धनता और अभाव के बीच जीवन व्यतीत करना पड़ा। परिवार की निर्धनता के बावजूद वह देश के स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े रहे।

वर्ष 1947 में देश गुलामी से मुक्त हुआ और स्वतंत्रता की घोषणा हुई। इससे वीर स्वतंत्रता सेनानी बिकाऊ अहमद कुरैशी ने पुनः कुरैशी वाला कारोबार शुरू किया और बच्चों को डेहरी ऑन सोन लाकर उनका पालन-पोषण किया। स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रियता के कारण उनके बच्चे शिक्षित नहीं हो सके और वे भी पारंपरिक पेशे से जुड़ गए।

हाजी अहमद अली (अंसारी)

हाजी अहमद अली गाजीपुरी की पैदाइश एक मध्यमवर्गीय परिवार में 20 अप्रैल 1917 को हुई। उनके पिता का नाम जान मुहम्मद था। वे दो भाई थे और पेशे से व्यवसायी थे। खास तौर पर पुलिस और फौज को कंबल वगैरह सप्लाई किया करते थे। उनके पूर्वजों का खानदान बड़ी इज्जत और वकार वाला था। वे लोग हिंदू से धर्मांतरित होकर मुसलमान हुए थे। ददिहाल की तरफ से वे ठाकुर और ननिहाल की तरफ से ब्राह्मण थे।

पुश्तैनी पेशा से ज्यादा उन्हें कुश्ती वॉलीबॉल और फुटबॉल वगैरह में बड़ी दिलचस्पी थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जब मुल्क भर में अंग्रेजों के खिलाफ माहौल गर्म था, उस समय अहमद अली नेताजी सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिंद फौज में भर्ती हो गए और घर-परिवार की बिलकुल परवाह न की।[40] दूसरे विश्वयुद्ध के समाप्ति के बाद देश वापस आए और जल्द ही कोलकाता पुलिस में भर्ती हो गए।

अब्दुल वहीद कुरैशी

एक जुलाई 1922 में बिस्मिल्ला कुरैशी के सरधना (मेरठ) स्थित परिवार में जन्मे अब्दुल वहीद कुरैशी जब मेरठ कॉलेज से लॉ कर रहे थे, तभी उनका राजनीति में पदार्पण हुआ। वर्ष

1953 में वह पहली बार नगर पालिका परिषद सरधना के चेयरमैन चुने गए तथा 18 वर्षों तक चेयरमैन पद पर कार्य किया। प्रारंभ में वर्ष 1953 में राष्ट्रीय कांग्रेस में दो बार उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमिटी के सदस्य चुने गए। वर्ष 1967 में राष्ट्रीय कांग्रेस दल को छोड़कर बीकेडी पार्टी में शामिल हुए तथा वर्ष 1986 में राष्ट्रीय लोकदल पार्टी से विधायक निर्वाचित हुए।

हाजी अब्दुल वहीद कुरैशी शिक्षित एवं विद्वानों के मध्य एक प्रज्वलित दीपक के समान थे। उनका परिवार माहीया वालों के नाम से जाना जाता है।

समाज के एकीकरण में उनका विशेष योगदान रहा। इसके अलावा स्वतंत्रता संग्राम के भामौरी कांड (मेरठ जिला के एक गाँव में मिनी जालियांवाला बाग कांड के नाम से जाना जाता है) में काफी योगदान रहा। मेरठ जिला के सरधना ब्लॉक के भामौरी में 18 अगस्त 1942 ई. को आंदोलन कर रहे लोगों पर अंगरेज अफसरों ने गोली चलाई थी, जिसमें 28 लोग शहीद हो गए।[41]

अब्दुल वहीद कुरैशी को हर समाज का व्यक्ति बाबूजी कहकर संबोधित करता था। जबकि विधायक बनने के बावजूद चेयरमैन के रूप में ही प्रसिद्ध रहे। उनकी नेतृत्व क्षमता और सम्मान का आलम यह रहा कि कोई सामाजिक आयोजन हो या धार्मिक, उनके बगैर जैसे पूरा ही न होता था। लोकप्रिय सामाजिक कार्यकर्ता बाबू अब्दुल वहीद कुरैशी का 96 वर्ष की उम्र में 03.03.2018 को इंतकाल हो गया।

बुनकर गांधी: फिदा हुसैन अंसारी

दरभंगा शहर के मौलागंज मुहल्ला निवासी मो. इब्राहिम अंसारी एक व्यवसायी थे। उन्हीं के घर 16 मार्च 1928 ई. को फिदा हुसैन अंसारी का जन्म हुआ। इनकी प्रारंभिक शिक्षा किलाघाट स्थित मदरसा हमीदिया में हुई। तदोपरांत उनका नामांकन शफी मुस्लिम हाई स्कूल में हुआ जहां से उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की।[42] इसके आगे वह पढ़ नहीं पाए और अपने पिता के हैंडलूम एवं खादी के कपड़ों का व्यवसाय में समय देने लगे।

बहुत छोटी सी उम्र में ही वह 1942 ई. के भारत छोड़ो आंदोलन को लेकर होने वाली बैठकों में शामिल होने लगे। 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के समय समस्तीपुर में हुए हिंसात्मक आंदोलन के भी वह हिस्सा थे। उन दिनों वह वहाँ अपने पिता के द्वारा स्थापित हैण्डलूम एवं खादी के कपड़ों की दुकान चलाया करते थे। परंतु देश में चल रहे आजादी के आंदोलनों में घर से छिप-छिपकर शामिल होते थे। 'भारत छोड़ो आंदोलन' के दौरान ही अंग्रेज सरकार द्वारा खादी के कपड़ों की खरीद बिक्री पर रोक लगा दिया गया और जगह-जगह खादी के कपड़ों की दुकानों को सील किया जाने लगा। समस्तीपुर शहर में चल रहे आंदोलन में लोग जुलूस के रूप में समस्तीपुर रेलवे स्टेशन पर पहुँचे, जहाँ वह हिंसात्मक आंदोलन में बदल गया। आंदोलनकारी रेलवे पटरी उखाड़ना चाह रहे थे एवं उसमें फिदा हुसैन अंसारी के घायल होने की खबर जब दरभंगा पहुँची तो उनके पिता अपने पुत्र से मिलने के लिए साइकिल से ही समस्तीपुर के लिए रवाना हो गए।

दरअसल समस्तीपुर जंक्शन पर जब आंदोलनकारी बेकाबू होने लगे तब अंगरेजी सरकार के सिपाहियों ने आंदोलन को कमजोर करने के लिए आंदोलनकारियों पर गोली चलाना शुरू किया, जिससे कई लोग हताहत भी हुए। किशोरवय फिदा हुसैन मालगाड़ी के डब्बों की ओट में छुपकर अपनी जान बचाई। फिर वहाँ से छुप-छुपाकर भाग निकले और पैदल ही दरभंगा के लिए निकल पड़े। उधर पिताजी हादसा की खबर सुनकर पुत्र की खैरियत जानने के लिए साइकिल से जा रहे थे, तभी जटमलपुर में पिता-पुत्र की मुलाकात हो गई। हाल-चाल पूछने के बाद इब्राहिम साहब ने साइकिल अपने पुत्र फिदा हुसैन को दिया कि वह जल्द घर पहुँचे और खुद पैदल ही मौलागंज मोहल्ला स्थित अपने घर के लिए चल दिए।

नौजवान फिदा हुसैन जैसे स्वतंत्रता आंदोलन के लिए बेचौन से थे। वह जल्द ही दरभंगा ट्रेजरी के पास हुए आंदोलन में शामिल हो गए। आंदोलनकारियों के उग्र होने पर पुलिस द्वारा गोलियाँ चलाने पर कई लोग हताहत हुए। फिदा हुसैन के आगे एक लंबे युवा आंदोलनकारी को गोली लग गई और फिदा साहब बाल-बाल बच गए।

तीसरी घटना मुहम्मदपुर बाजार की है जो मुहम्मदपुर स्टेशन के निकट अवस्थित है। मुहम्मदपुर स्टेशन दरभंगा और सीतामढ़ी स्टेशन के बीच अवस्थित है। यह जगह दरभंगा शहर से लगभग 10 किमी की दूरी है। मुहम्मदपुर बाजार में इब्राहिम अंसारी जी का हैंडलूम एवं खादी के कपड़ों की दुकान थी। यह दुकान मुहम्मदपुर के हकीम नोमान के मकान में चलती थी। 1942 के आंदोलन से बौखलाए अंगरेजों के द्वारा खादी के कपड़ों की खरीद-बिक्री के कारण इस तरह के दुकानों पर छापा मारा जाता था। इसी तरह का छापा मुहम्मदपुर बाजार के दुकानों पर भी मारा गया। तब फिदा हुसैन ने अपने दुकान के कपड़ों को एक टमटम की सीट के नीचे छुपा दिया और दरभंगा के एक चर्चित, डॉक्टर कदीर अंसारी को हैट पहनाकर उस टमटम पर बैठा दिया। डॉ. कदीर का मुहम्मदपुर बाजार में क्लिनिक चलता था। लंबे और गोरे-चिट्टे थे डॉ. कदीर अंसारी। देखने वाले सिपाहियों को लगता था कि कोई अंगरेज अफसर टमटम से जा रहा है। इसलिए उस टमटम की तलाशी नहीं हुई। उस जगह पर फिदा हुसैन को पुलिस की गोली का तो सामना नहीं करना पड़ा परंतु पुलिस की सख्ती का सामना करना पड़ा। इसी बीच 15 अगस्त 1947 को देश आजाद हो गया और युवा फिदा हुसैन के अंदर भी राजनीति का शौक परवान चढ़ने लगा। वह जिला कांग्रेस कमिटी के महामंत्री एवं प्रदेश कांग्रेस कमिटी के सदस्य रहे। साथ ही 1974 से ही अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के भी सदस्य थे। वह कांग्रेस के आजीवन सदस्य बने रहे।[43] यह कर्मयोगी फिदा हुसैन अंसारी भी 30.06.2009 को इस दुनिया से रुखसत हो गए।

बिलट दर्जी

दरभंगा जिला के जाले प्रखंड के रतनपुर पंचायत के रतनपुर गाँव में 18 अगस्त 1942 ई. को अंग्रेजों की गोली के शिकार प्रदीप शर्मा एवं बिलट दर्जी हो गए थे। आजादी के बाद उस जगह का नाम शहीद चौक कर दिया गया है और यहीं पर प्रदीप शर्मा एवं बिलट दर्जी की प्रतिमा लगाई गई है। विदित हो कि बिलट दर्जी के दोनों घुटनों में अंग्रेजों ने गोली मारी थी, जिसके कारण उनका देहांत हो गया था। बिलट दर्जी दो भाइयों में छोटे थे और कुंवारे भी थे। उनके बड़े भाई याकूब दर्जी अपना पुश्तैनी काम करते थे। उनके तीन पुत्र हुए जिसमें मंझले मो. अख्तर

का देहांत हो चुका है। अब बड़े 70 वर्षीय फूल मोहम्मद और सबसे छोटे मो. वजीर जीवित हैं। बिलट दर्जी के परिवार के लोगों ने बताया कि उन लोगों को कभी कोई पेंशन सरकार की तरफ से नहीं मिला। इस गाँव में दर्जी जाति के 10 परिवार निवास करते हैं। सभी की स्थिति काफी दयनीय है।

सिद्दीक चूड़ीफरोश

राजनैतिक रूप में हाशिए से भी नीचे अवस्थित चुड़िहारा जाति के लोग भी स्वतंत्राता सेनानी रहे हैं। 1942 ई. के आंदोलन में घनश्यामपुर प्रखंड के पाली कचहरी में एक झड़प के बाद अंग्रेज सिपाहियों के द्वारा चलाई गई कई गोलियाँ मौलवी सिद्दीक के पैर व हाथ में लगी थी। घनश्यामपुर प्रखंड कार्यालय में स्वतंत्राता सेनानियों की सूची वाला स्थापित शिलालेख में मो. सिद्दीक चूड़ीफरोश अंकित है। इनकी विध्वा जैतून खातून को 2008 ई. तक पेंशन भी मिला है। मौलवी सिद्दीक एक बार विख्यात स्वतंत्रता सेनानी सूर्यनारायण सिंह व लक्ष्मी नारायण के साथ दरभंगा जेल में बंद थे। वहाँ उन्होंने लक्ष्मीनारायण जी को उर्दू भाषा भी सिखाई थी। बंदी के दौरान ईद का त्योहार आने पर मौलवी सिद्दीक ने एक शे'र पढ़ा था।

''आज तो सब मिलते होंगे
अपने-अपने यार से,
आज भी हम मिल रहे हैं जेल
के पहरेदार से।''

संदर्भ

1. बाबा मजनू शाह मलंग मदारी-लेखक-अंजर अकील, पृ. 82, 87, 90, 96
2. प्रभात खबर - दैनिक अखबार -मुजफ्फरपुर संस्करण, दिनांक 08.06.2022, पृ. 13
3. झारखंड के वीर शहीद, डॉ. विजय कुमार पांडेय, पृ. 148, 150
4. शहीद शेख बुखारी और आजादी की पहली लड़ाई, एम. डब्ल्यू. अंसारी, पृ. 36, 79, 94
5. बिहार के 25 महानायक, अशोक कुमार सिन्हा, पृ. 213-221
6. राजद समाचार (मासिक), सं. अरुण आनन्द, ले. मो. उमर अशरफ; अगस्त, 2022, पृ.22
7. पटना में 1857 की बगावत, विलियम टेलर (तत्कालीन अंगरेज कमिश्नर, पटना), अनु. बाल्मीकि महतो, पृ. 53, 66, 67, 68
8. अंसारी नगीना - 2021, डॉ. अयुब राईन, पृ. 55-56
9. बंद-ए-मोमिन का हाथ - लेखक - प्रो. अहमद सज्जाद, पृ. 562
10. तहरीके आजादी में बिहार के मुसलमानों का हिस्सा, (संपादन) तकी रहीम, पृ. 180-181
11. गुलशन-ए-उर्दू, बिहार स्टेट टेक्स्ट बुक पब्लिशिंग कॉरपोरेशन लिमिटेड, पटना, वर्ग - ट की उर्दू किताब, पृ. 45-48
12. बत्तख मियाँ अंसारी की अनोखी कहानी, एम. डब्ल्यू. अंसारी, पृ. 33, 59, 107
13. मसावात की जंग, अली अनवर, पृ. 217-219
14. प्रभात खबर. दैनिक समाचार पत्र, (मुजफ्फरपुर एडिशन), 02.07.2022, पृ. 8
15. गांधी जी के चंपारण आंदोलन के सूत्राधर राजकुमार शुक्ल की डायरी, (सं.) भैरव लाल दास, महाराजाधिराज कामेश्वर सिंह कल्याणी फाउण्डेशन, दरभंगा, पृ. 53, 56, 59, 75, 155
16. चंपारण में महात्मा गांधी, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, पृ. 80-81
17. नेपथ्य के नायक खण्ड - 1, (सं.) अरुण नारायण, पृ. 129-134, 138
18. बिहार के 25 महानायक. अशोक कुमार सिन्हा, पृ. 143, 144, 151
19. जर्नल ऑफ सोशल रिअलिटी, वॉल्यूम 13, अंक 1 और 2, जनवरी-जून 2023, (सं.) डॉ. अयुब राईन, ले. इमानुद्दीन मंसूरी, पृ. 24, 27
20. चौरीचौरा विद्रोह और स्वाधीनता आंदोलन, सुभाष चन्द्र कुशवाहा, पृ. 98, 281
21. जर्नल ऑफ सोशल रिअलिटी, वॉल्यूम 2, अंक 2, (अप्रैल-जून 2011), (सं.) लेखक - डॉ. अब्दुल वदूद कासमी, संपादक - डॉ. अयुब राईन, पृ. 6-8
22. उर्दू दैनिक - कौमी तन्जीम, 15.05.2005, अता आबदी, पृ. 5
23. अंसारी नगीना (2021), डॉ. अयुब राईन, पृ. 52-53
24. आईना-ए-कुरैश, इमरान अजीम एडवोकेट, पृ. 159-160
25. बंद-ए-मोमिन का हाथ, डॉ. अहमद सज्जाद, पृ. 158, 205, 395, 437, 470
26. आत्मकथा - लेखक - डॉ. राजेंद्र प्रसाद, पृ. 192-194
27. तहरीक-ए-आजादी में बिहार के मुसलमानों का हिस्सा, तकी रहीम, पृ. 211-212
28. शब्द रहेंगे साक्षी, डॉ. इरशाद अहमद, पृ. 144, 145, 148
29. अबुल अहद मो. नूर, सैयद मोतीउर्रहमान शमीम, पृ. 16, 17, 20, 30, 42
30. जर्नल ऑफ सोशल रिअलिटी, वॉल्यूम 13, अंक 3, (सं.) डॉ. अयुब राईन, पृ. 4-5
31. मसावात की जंग, अली अनवर, पृ. 208-211
32. मोमिन कॉन्फ्रेंस की दस्तावेजी तारिख, (सं.) अशफाक हुसैन अंसारी एवं मोईन अख्तर अंसारी, पृ.सं. 490
33. काउन्सिल खबरनामा, (सं.) सलीम परवेज, (ले.) अनवारुल हसन वस्तवी, पृ. - 16-17, मई-जून - 2012, अंक-32-33
34. मसावात की जंग, ले. अली अनवर, पृ. 213-217
35. बिहार विधान परिषद सदस्य परिचय: 1912-2012, संरक्षक - ताराकांत झा, पृ. 127-128
36. अंसारी नगीना (2021), डॉ. अयुब राईन, पृ. 106-107
37. समाहार-2022, दरभंगा - (सं.) अमिताभ कुमार सिन्हा, पृ. 56
38. कौमी तन्जीम, (उर्दू दैनिक) विशेषांक पटना, दिनांक - 22.03.2022, पृ. 18
39. सदा-ए-अंसारी (साप्ताहिक), दिल्ली, (सं.) अंसारी अतहर हुसैन तारीख: 27 अप्रैल 2013
40. आईना-ए-कुरैश, इमरान अजीम एडवोकेट, पृ. 168
41. जीवन परिचय, बिहार विधन परिषद, (1986), पृ. 2-3
42. दरभंगानामा, शकील सल्फी, पृ. 142
43. भारत के दलित मुसलमान - खण्ड-2, डॉ. अयुब राईन, पृ. 35
44. भारत के दलित मुसलमान - खण्ड-1, डॉ. अयुब राईन, पृ. 158

प्रो. सुनील के. चौधरी

नव उपाश्रितों का एकीकरण: प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी तथा पसमांदा मुस्लिम

मुस्लिम समाज में जातिगत विभाजन को समझने और उसे स्पष्ट स्वीकृति देने वाले पहले प्रधानमंत्री हैं नरेंद्र मोदी। इस स्वीकृति के निहितार्थ, दूरगामी परिणाम और चुनौतियों पर एक दृष्टि

समस्त विश्व के लोकतंत्र एवं लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक संबंधों पर केंद्रित रहीं हैं। संख्याओं पर आधारित लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ शासन गठन के लिए निरंतर अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक समर्थन पर निर्मित होती जा रहीं हैं। परिपक्व लोकतंत्र में अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक समुदायों की परिवर्तनीय जनसांख्यिकी प्रकृति राजनैतिक दलों के मत समर्थन को प्रभावित करती है। आरंभ में पंथ-निर्देशित समुदाय संकल्पना लोकतांत्रिक राजनीति में अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक चुनावी सहभागिता पर केंद्रित होकर सामाजिक स्तरीकरण एवं संजातीय ध्रुवीकरण पर आधारित होने लगी थी। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजव्यवस्था विधायी-संसदीय चुनावों में शासन गठन के लिए अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक संबंधों के विभिन्न आयामों को साक्ष्य करती है।

विगत सात दशकों में हिंदू-केंद्रक बहुसंख्यक राजनीति को प्रभावित करने के पश्चात् अब जाति के नए आयाम विशेषकर एक दशक से अल्पसंख्यक राजनीति में भी प्रदर्शित होने लगे हैं। अल्पसंख्यक वर्गों में पसमांदा मुस्लिम की बढ़ती चुनावी उपस्थिति एवं राजनैतिक महत्ता भारत की समसामयिक राजनीति में उन्हें एक महत्वपूर्ण घटक के रुप में अवतरित करती है।

यह शोध पत्र पसमांदा मुस्लिम के आलोक में जाति-चालित मुस्लिम अल्पसंख्यक राजनीति की भूमिका तथा वर्ष 2014 से प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा चित्रित उनके प्रति विशिष्ट चुनावी संदेशों को रेखांकित करने का एक प्रयास है।

अल्पसंख्यक बनाम अल्पसंख्यकवाद: स्वातंत्र्योत्तर भारत में मुस्लिम

पंथ-आधारित भारत विभाजन ने अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक संबंधों को पुन: परिभाषित करने का प्रयास किया है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की लोकतांत्रिक राजनीति ने सर्व व्यस्क मताधिकार के सिद्धांत द्वारा डेनियल लर्नर की इस भविष्यवाणी को निरर्थक घोषित किया कि अनुभवहीन और नव लोकतंत्र साक्षरता, शहरीकरण एवं संचार माध्यम के अभाव में परिपक्व लोकतंत्र में कभी भी परिवर्तित नहीं हो सकते हैं। स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व करते हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस समस्त समुदायों, वर्गों, जातियों और जनजातियों का *पक्ष परिवर्तक एवं मत समर्थक* बन गई।

विभाजन की त्रासदी के पश्चात भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एक छत्र संघठन के अंतर्गत अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक विमर्श सम्मिलित होने लगा। सिख, जैन एवं बुद्ध धर्म के रुप में विद्यमान सामान्य हिंदू अल्पसंख्यक समुदाय तथा अपनी अति शुक्ष्म उपस्थिति के रुप में मुस्लिम समुदाय का भारतीय संसदीय राजनीति के प्रथम तीन दशकों के चुनावी परिणामों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ सका। 1980 दशक के पश्चात् राजनैतिक विमर्श में *अल्पसंख्यक के रुप में वोट तथा अल्पसंख्यकवाद के प्रतिरुप में वोट बैंक* का सामान्यत: प्रयोग होने लगा ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक विमर्श को निम्न तीन प्रकार से रेखांकित किया जा सकता है: सहबंधन, असहबंधन तथा नव-सहबंधन ।

(क) मुस्लिम सहबंधन: सहबंधित मतदाता

जब एक स्वतंत्र भारत ने अपनी प्रथम चयनित सरकार के गठन का निर्णय लिया तब देश में 30.4 करोड़ एवं 84.2 प्रतिशत सहित हिंदू

जनसंख्या का बाहुल्य था। 3 करोड़ 50 लाख सहित लगभग 10 प्रतिशत जनसंख्या के रुप में उपस्थित मुस्लिम भारतीय राजनीति में दूसरा सबसे वृहत समुदाय था। ईसाई, सिख, जैन, बुद्ध व अन्य समुदाय 2 करोड़ 30 लाख जनसंख्या सहित समस्त भूभाग के 6.2 प्रतिशत अंश के रुप में उपस्थित थे। अन्य अल्पसंख्यक समुदायों की उपस्थिति एवं महत्ता होने के पश्चात् भी स्वातंत्र्योत्तर भारत की लोकतांत्रिक राजनीति हिंदू बहुसंख्यक तथा मुस्लिम अल्पसंख्यक विमर्श पर ही आश्रित होने लगी।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में वर्ष 1951-52 से वर्ष 1971 तक के प्रथम पांच संसदीय चुनाव मतदाताओं की संख्या में 17 करोड़ 32 लाख से बढ़कर 27 करोड़ 40 लाख[1] (चौधरी, 2018) की आयी वृद्धि को भी प्रकट करता है। यद्यपि इस अवधि का कोई अनुभववादी क्षेत्र अध्ययन विद्यमान नहीं है, ऐसा माना जाता है कि अधिकांश मुस्लिम युक्तसम्मत मतदाता के रुप में उपस्थित थे जिनकी राजनैतिक प्रतिबद्धता तथा वैचारिक सहबंधता नेहरु एवं इंदिरा नेतृत्व वाली कांग्रेस के साथ ही थी। स्वातंत्र्योत्तर भारत के आरंभिक चरण की राजव्यवस्था में मुस्लिम सहबंध की राजनीति का मुख्य कारक '*कांग्रेस प्रणाली*'[2] (कोठारी, 1964) की प्राधान्यता थी।

विभाजन विभित्सका के आलोक में मुस्लिम मतदाताओं ने भारत की पंथ निरपेक्षीय राष्ट्रीय अस्मिता को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति अपनी राजनैतिक निष्ठा बनाये रखी। संसदीय राजनीति के निर्माणात्मक चरण में मुस्लिम सहबंधता मूलतः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर अभिमुख होने लगी थी जो भारत ही कांग्रेस है तथा कांग्रेस ही भारत है के सिद्धांत पर निर्मित थी ।

(ख) मुस्लिम असहबंधनः युक्तसम्मत मतदाता

वर्ष 1977 भारत की चुनावी राजनीति में एक ऐतिहासिक घटना के रुप में जाना जाता है। संघीय एवं राज्य स्तरों पर विद्यमान एक-दलीय प्रभुत्व व्यवस्था द्वि-ध्रुवीय राजनीति में परिणित होने लगी। कांग्रेस प्रणाली को, जिसका विघटन 1967 चुनावों के उपरांत होने लगा था, एक लोकतांत्रिक आघात वर्ष 1977 में जनता परिवार की सरकार से मिला जो विभिन्न घटक दलों के सहयोग से निर्मित भारत की प्रथम गैर-कांग्रेसी तथा अकांग्रेसी शासन व्यवस्था थी।

अग्रता ही विजेता (फर्स्ट पास्ट द पोस्ट सिस्टम) व्यवस्था के अंतर्गत जहाँ दो से अधिक प्रत्याशी चुनाव लड़ते हैं तथा किसी एक सुदृढ़ उम्मीदवार अथवा दल को एकजुट मत द्वारा पराजित किया जा सकता है, युक्तसम्मत मतदान कहलाता है। उत्तरोत्तर-1977 राजनीति 1990 दशक के प्रारंभ से युक्तसम्मत मतदान व्यवहार को प्रकट करने लगी जहाँ चुनावों में एक की पराजय अन्य की विजय पर आधारित होने लगी थी।

भारत के विभिन्न चुनावी क्षेत्रों में अपनी सुदृढ़ जनसांख्यिकी उपस्थिति का लाभ उठाते हुए मुस्लिम मतदाता कांग्रेस का विरोध असहबंधन की राजनीति के अनुकरण द्वारा करने लगे। समाज वैज्ञानिकों ने इस संकल्पना को 'द्वितीय लोकतांत्रिक अभ्युत्थान'[3] (यादव, 2000) के माधयम से व्यक्त किया है जो मुख्यतः तीन लक्षणों[4] (चौधरी, 2024) पर आधारित थी।

प्रथमतः युक्तसम्मत मतदाता प्रायः एक जाति, जनजाति तथा जनसमुदाय के रुप में अपना मत प्रकट करते हैं जिसका लिप्सेट और रोक्कन ने विदरण मतदान[5] द्वारा सैद्धांतीकरण किया है। ऐसी अवस्था में मतदाता अपनी संबंधित जाति, जनजाति तथा जनसमुदाय के उम्मीदवारों के लिए एकमुस्त मतदान करते हैं। द्वितीय, युक्तसम्मत मतदाताओं का मुख्य लक्ष्य विशिष्ट विरोधी दलों अथवा प्रत्याशियों की पराजय सुनिश्चित करना होता है न कि स्वयं की विजय। अंततः, अपनी एकजुटता द्वारा समर्थित एवं समन्वयित युक्तसम्मत मतदाता चुनावी परिणाम को प्रमाणिकता द्वारा प्रभावित कर सकते हैं।

अपनी सामूहिक सुदृढ़ता को एकमुस्त मतदान के माध्यम से प्रकट करते हुए भारत में अल्पसंख्यक, विशेषकर मुस्लिम, युक्तसम्मत मतदाताओं में परिवर्तित होते चले गए जिसका एकमात्र उद्देश्य विधान सभा एवं लोक सभा चुनावों में प्रारंभ में कांग्रेस तथा तत्पश्चात भारतीय जनता पार्टी की पराजय सुनिश्चित करना था। यद्यपि हिलाल अहमद[6] (2019) जैसे शोधार्थी अपने लेखों में मुस्लिम द्वारा एकमुस्त मतदान की धारणा को अस्वीकृत करते हैं तथा इस तथ्य का भी विरोध करते है कि भारत में राष्ट्रीय स्तर पर कोई मुस्लिम वोट बैंक विद्यमान है; 1990-उत्तरोत्तर के चुनावी रुझान एवं परिणाम अल्पसंख्यक मुस्लिम-प्रभावी निर्वाचन क्षेत्रों द्वारा भाजपा-विरुद्ध एकमुस्त मतदान को लक्षित करते हैं ।

युक्तसम्मत मतदाता के रुप में द्वितीय चरण में मुस्लिम चुनावी रुझान एवं राजनैतिक अधिमान मूलतः प्रकटात्मक एवं निर्णायक[7] (चौधरी, 2024) दोनों ही रहा।

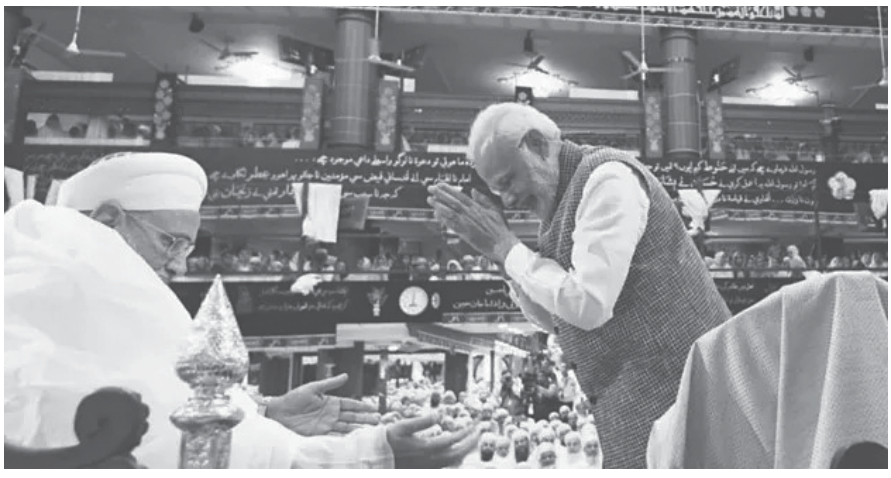

(ग) मुस्लिम नव-सहबंधनः साइलेंट मतदाता

साइलेंट मतदाता भारतीय चुनावी राजनीति का एक विशिष्ट लक्षण बन गया है जिसे सर्वप्रथम लेखक ने लोक सभा चुनाव

2014 तथा इजराइली क्नेसेट चुनाव 2015 के आलोक में अपनी पुस्तक द चेंजिंग फेस ऑफ पार्टीज एंड पार्टी सिस्टम्स: ए स्टडी ऑफ इजराइल एंड इंडिया, 2018 में सैद्धांतिकृत किया था। लेखक के अनुसार मूकता की महत्ता: साइलेंट मतदाता उन युवा मतदाताओं को इंगित करता है जो अपनी 'बढ़ती सहभागिता तथा आलोचनात्मक प्रखरता द्वारा तथाकथित विजयी दलों और सरकारों के राजनैतिक भाग्य को पूर्णरुपेण परिवर्तित करने की क्षमता रखते हैं'[8] (चौधरी, 2018 एवं 2024)।

21वीं शताब्दी की संसदीय राजनीति सर्वत्र भारत में सहबंधन से असहबंधन तथा अन्तोत्गत्वा नव-सहबंधन की ओर मतदाता व्यवहार को रेखांकित करती है। एकमुस्त मतदान के माध्यम से चुनावों में अपनी सामुदायिक सहभागिता द्वारा एकजुटता के प्रकटीकरण को व्यवहारिकता में कार्यान्वित करते हुए विगत एक दशक से मुस्लिम मतदाताओं ने स्वयं को साइलेंट मतदाता में रुपांतरित कर लिया है। वैश्विक अध्ययन केंद्र (पूर्वकालिक विकासशील राज्य अध्ययन केंद्र), दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा सीजीएस समीक्षा चुनाव अध्ययन श्रृंखला के अंतर्गत 2017-2024 तक विधान सभाओं और संसदीय चुनाओं का उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, पश्चिमी बंगाल, असम, दिल्ली, कर्नाटक, गुजरात, मध्य प्रदेश, जम्मू और कश्मीर तथा झारखण्ड राज्यों में चुनावी सर्वेक्षण साइलेंट मतदाता के रुप में मुस्लिम मतदान को प्रमाणित करता है।

सहबंधित एवं युक्तसम्मत मतदाताओं से भिन्न साइलेंट मतदाता वह मतदाता होते हैं जो चुनावी प्रक्रिया व चुनावीकरण अभिक्रिया के उपरांत अपने मत के लिए संकल्पित होते हैं तथा मतदान करते समय अपने मत अधिमान को परिवर्तित नहीं करते हैं। राजनैतिक दल, विशेषकर शासकीय दल- भाजपा नेतृत्व वाला राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन की पराजय तथा वैकल्पिक दल/गठबंधन - कांग्रेस-चालित आईएनडीआईए (INDIA) की विजय समसामयिक राजनीति में मौन/साइलेंट मतदान का मूलाधार बन गया है।

लोक सभा 2024 तथा अनुकरणीय राज्य विधान सभा चुनाव, विशेषकर जम्मू और कश्मीर[9] एवं झारखण्ड[10] मुख्यत: मुस्लिम मतदाता के रुप में साइलेंट मतदाता की महत्ता को पुष्ट करता है जिसे लेखक ने प्रकटता विहीन प्रमाणिकता[11] (चौधरी, 2024) द्वारा सैद्धांतिकृत किया गया है।

मुस्लिम तथा सामाजिक स्तरीकरण: पसमांदा मुस्लिम का एक अध्ययन

7वीं शताब्दी में स्थापित, इस्लाम विश्व के 4 मुख्य धर्मो- हिंदूवाद, यहूदीवाद तथा ईसाइयत में से एक है। अपने अध्यात्मविद्या आधार, दर्शनात्मक विस्तार तथा राजनैतिक उत्तराधिकार में व्याप्त विविधता के पश्चात भारत में इस्लाम धर्म के अनुयाई अनेक संप्रदायों एवं उप-संप्रदायों में विभक्त हैं। इस्लामिक शोधार्थियों का मानना है कि इस्लाम के विभिन्न संप्रदाय एवं उप-संप्रदाय परस्पर 'धार्मिक और सांस्कृतिक संयोजन'[12] (कुस्सरोव और पॉलक 2015) के पश्चात भी अनेक मान्यताओं और व्याख्याओं द्वारा परिभाषित है।

हिंदूवाद के प्रतिकूल जो अपने आरंभिक चरण में मनु स्मृति में अंतर्निहित वर्ण व्यवस्था के कार्यात्मक वर्गीकरण पर आधारित था, भारत में इस्लाम सामाजिक स्तरीकरण द्वारा लक्षित रहा है। विश्व स्तर पर एशियाई, प्रशांताई तथा अफ्रीकी क्षेत्रों में लगभग 1 अरब 50 करोड़ जनसंख्या सहित इस्लाम जहाँ तीन मुख्य सम्प्रदायों अथवा शाखाओं- 'सुन्नी, शिया और खवारिज/खरिजियया'[13] में स्थापित और वर्गीकृत रहा है; वहीं भारत में यह तीव्रता से जाति रुपी मत के साथ सलंग्न होता चला गया है। हिंदू जाति व्यवस्था में प्रचलित एवं परिभाषित शुद्ध-अशुद्ध युग्मक को महत्वहीन मानते हुए भारत में मुस्लिम समुदाय के अंतर्गत सामाजिक स्तरीकरण मुख्यत: उत्तराधिकार और धर्मांतरण के रुप में व्याख्यायित होने लगा।

यद्यपि ऐसा माना जाता रहा है कि अपने आध्यात्मविद्या आधार के अनुरुप इस्लाम समतावाद में विश्वास करता है तथा जाति के स्थान पर वर्ग को मान्यता देता है; भारतीय सामुदायिक विमर्श में जाति सोपान पर आधारित मुस्लिम समाज निम्न तीन सामाजिक श्रेणियों में विभक्त है - अशराफ़, अजलाफ़ एवं अरज़ाल।

(क) अशराफ़

अरबी शब्द से उत्पन्न, कुलीनजन से संबंद्ध, अशराफ़ भारत में मुस्लिम सामाजिक सोपान में कुलीनता को प्रदर्शित करता है। अपने संजातीय उद्भव, आर्थिक अस्तित्व, सामाजिक वंशावली तथा राजनैतिक संयोजन से अभिलक्षित, अशराफ़ जातिय समुदाय ने भारत में स्वयं के लिए एक उच्च सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक प्रतिष्ठा स्थापित कर ली। मध्य पूर्वी व केंद्रीय एशिया से प्रवासित तथा अरब मुस्लिम वंश से उत्पन्न अशराफ़ मुख्यत: चार समूहों में सविभक्त जातिय समुदाय है। ये चार समूह[14] (ब्रिटैनिका, 2021) हैं - सैय्यद (पैगम्बर मुहम्मद साहब के वंश से संबंद्ध), शेख्स (ईरानी प्रवासियों से संबंधित), पश्तुन्स (अफगानिस्तान से प्रवासित) तथा मुगल (मध्यकालीन युग में तुर्क वंशावली से संलग्न)। हिंदू समाज की कुछ उच्च जातियां भी, राजस्थान के राजपूत जो मुगल काल में ही इस्लाम में धर्मांतरित हो गए थे, भारत में अशराफ कुलीनता के भाग बन गए।

इस्लामिक समाज एवं संस्कृति में उच्च स्तरीय श्रेष्ठ पद प्राप्ति के आलोक में स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति में अशराफ़ जातीय समुदाय एक प्रमुख भूमिका निभाने लगे। पाकिस्तान की आंशिक अमान्यता तथा एक राष्ट्र राज्य में भारत की वास्तविक स्वीकार्यता ने अशराफ़ जातिय समुदाय की निष्ठा को सुदृढ़ किया तथा अपने हिंदू साथियों सहित राष्ट्र-निर्माण प्रक्रिया के विभिन्न अवसरों के साथ संलंग्न होने का प्रयास भी किया। इस्लामिक मान्यताओं का अनुसरण करते हुए तथा पंथ निरपेक्षता एवं आधुनिकता को स्वीकारते हुए अशराफ़ जातीय समुदाय ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में विकास और सुसाशन के मार्ग का अनुकरण किया।

(ख) अजलाफ़

भारत में मुस्लिम समाज की द्वितीय सामाजिक जाति-आधारित श्रेणी अजलाफ़ है। अजलाफ़ जातीय समुदाय मुख्यत: हिंदू धर्मांतरित जातियों से संबंद्ध रहा है तथा मूलत: अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के समतुल्य माना जाता रहा है। मुगल साम्राज्य में स्थापित जहाँ अनेक बाध्यकारी धर्मांतरण

हुए, अजलाफ़ जातीय समुदाय धीरे-धीरे हस्तचालित व्यवसाय जैसे 'बुनकर, कॉटन कारडर, तेल प्रेशर, नाई, दर्जी'[15] (अहमद, 1967) के साथ संबंद्ध होते चले गए। कुछ विचारक अजलाफ़ जातीय समुदायों का वर्णन प्राचीन हिंदू समाज में भी पाते हैं तथा इन्हें उस समय के अधीनस्थ वर्गों की द्वि-जन्मी श्रेणी के समतुल्य मानते हैं ।

मुस्लिम समुदाय पर शोध करने वाले कुछ शोधार्थी यद्यपि अशराफ एवं अजलाफ़ के मध्य का विभाजन अस्वीकारते हैं क्योंकि कुछ भारतीय राज्य जैसे जम्मू और कश्मीर एवं गुजरात में इन जातीय समुदायों का कोई अस्तित्व ही नहीं है तथा कुछ अन्य राज्य जैसे उत्तर प्रदेश में मुस्लिम के सर्वथा भिन्न सामाजिक समूह पाये जाते हैं; तथापि भारत में अशराफ़-अजलाफ़ का सामाजिक स्तरीकरण इस्लाम का एक प्रमुख लक्षण बन गया है जो इसे हिंदू समाज के समकक्ष स्थापित करने का प्रयास करता है।

संक्षेप में विदेशी-स्थानिक, परदेशिक-देशिक तथा बाह्य-आंतरिक उत्पत्ति भारत में अशराफ़-अजलाफ़ श्रेणियों के मध्य सामाजिक स्तरीकरण का आधार प्रस्तुत करती है। मंडल आयोग की अनुशंसाओं पर आधारित स्वीकारोक्ति कार्यवाही (Affirmative Action) द्वारा अजलाफ जातीय समुदाय 1990 दशक से भारत में ओबीसी आरक्षण के विशालतम लाभार्थी बन गए हैं।

(ग) अरज़ाल

भारत में मुस्लिम के सामाजिक स्तरीकरण का तृतीय अवयव अरज़ाल जातीय समुदाय है। अरज़ाल भारतीय मुस्लिम समाज के सर्वाधिक निकृष्ट जातीय समुदाय हैं। कई समसामयिक विचारक एवं समाज वैज्ञानिक अरज़ाल समूहों को निम्न हिंदू जातियों जैसे अस्पर्शय, शूद्र, दलित एवं आदिवासी के साथ तुलना कर इन्हें दलित मुस्लिम के नाम से संबोधित करने लगे हैं।

अपनी हिंदू उप-जातियों में अधीनस्थ एवं अपमानित भावना का आभास करते हुए तथा इस पूर्वानुमान से की इन्हें इस्लामिक स्तरीकरण मुक्त समाज में एक सम्मानीय स्थान प्राप्त होगा, अस्पर्शय मुगल और औपनिवेशिक शासन व्यवस्थाओं में धर्मान्तरण का शिकार होते चले गए। 'मौलिक जाति-स्थिति, पारंपरिक व्यवसाय तथा जातिगत परंपराओं एवं पद्धतियों'[16] (अहमद, 1967) के मानदंडों का समय के साथ-साथ भारतीय मुस्लिम समाज में भी समावेशन होने लगा जिसके परिणामस्वरुप समस्त अरज़ाल समूह भी जातीय अपमान एवं अत्याचार के पीड़ित होते चले गए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत अस्पृश्यों अथवा शूद्रों को संविधान में वर्णित सकारात्मक विभेद (Positive Discrimination) द्वारा संवैधानिक संरक्षण के प्रावधान ने अरज़ाल जातीय समूहों के मध्य आरक्षण की मांग को जीवित कर दिया। मुस्लिम समाज की तीन-चौथाई जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाले अरज़ाल जातिय समूह आज भी समसामयिक भारत में सामाजिक रुप से विभेदित, आर्थिक रुप से वंचित तथा राजनैतिक रुप से अप्रतिनिधिक हैं। इन समूहों को दलित हिंदुओं की तरह केंद्र एवं राज्य सरकारों से कोई नीतिगत समर्थन प्राप्त नहीं है। अपने पूर्व हिंदू वर्ण व्यवस्था तथा नव धर्मांतरित मुस्लिम समुदाय द्वारा दोहरी त्रासदी के उत्पीड़न के आलोक में अरजाल जातीय समहुओं ने दलित मुस्लिम के रुप में दलित ईसाईयों की तरह विगत एक दशक से आरक्षण की मांग को विभिन्न मंचों पर प्रबलता से उठाना आरंभ कर दिया।

अजलाफ़ एवं अरज़ाल जातीय समूहों की बढ़ती संख्या एवं महत्ता के आलोक में 1990 दशक के उपरांत एक नव राजनैतिक विमर्श आरंभ हुआ जिसे पसमांदा मुस्लिम के नाम से संबोधित किया जाने लगा।

पसमांदा मुस्लिम का लोकतांत्रिक राजनीति में एकीकरण: नरेंद्र मोदी तथा 'नव उपाश्रित'

सुन्नी-शिया के माध्यम से मुस्लिम समाज में मत-चालित पंथीय विभाजन 1990 दशक के पश्चात जाति-उन्मुख सामाजिक स्तरीकरण में रुपांतरित होने लगा। 'द्वितीय लोकतांत्रिक अभ्युत्थान'[17] (यादव, 2000) के पश्चात् भारतीय राजनीति में पिछड़े वर्गों एवं जातियों की बढ़ती समूहबद्धता का गैर-अशराफ मुस्लिम जाति समूहों - अजलाफ एवं अरजाल पर एक विशिष्ट प्रभाव पड़ा जिसने अन्तोत्गत्वा पसमांदा मुस्लिम राजनैतिक विमर्श को जन्म दिया। पिछड़े ओबीसी एवं दलित समुदायों और जातियों का प्रतिनिधित्व करने वाले अजलाफ एवं अरजाल मुस्लिम समूह पसमांदा मुस्लिम रुपी छाता संगठन के अंतर्गत अपने हितों का संरक्षण व संवर्धन करने लगे।

पर्शियन शब्द से व्युत्पन्न जिसका आशय 'पीछे छूटने' से है, पसमांदा समसामयिक भारतीय विमर्श के 'नव उपाश्रित वर्ग' हैं जो दीर्घकालीन समय से 'राजनैतिक अभिजनवर्गों की निर्दयता, अधीनता तथा अलगाववादिता से पीड़ित होने के कारण हाशिये पर ही रहे हैं'[18] (चौधरी, 2024)। सच्चर समिति प्रतिवेदन, 2006 के प्रकाशन द्वारा जाति-आधारित मुस्लिम पिछड़ेपन के रेखांकन ने 'पसमांदा अस्मिता की समूहबद्धता'[19] (ऐली, 2024) को विशेषकर उत्तरी एवं पश्चिमी भारतीय राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली और महाराष्ट्र में प्रबल

सुन्नी-शिया के माध्यम से मुस्लिम समाज में मत-चालित पंथीय विभाजन 1990 दशक के पश्चात जाति-उन्मुख सामाजिक स्तरीकरण में रुपांतरित होने लगा। 'द्वितीय लोकतांत्रिक अभ्युत्थान' (यादव, 2000) के पश्चात् भारतीय राजनीति में पिछड़े वर्गों एवं जातियों की बढ़ती समूहबद्धता का गैर-अशराफ मुस्लिम जाति समूहों - अजलाफ एवं अरजाल पर एक विशिष्ट प्रभाव पड़ा जिसने अन्तोत्गत्वा पसमांदा मुस्लिम राजनैतिक विमर्श को जन्म दिया। पिछड़े ओबीसी एवं दलित समुदायों और जातियों का प्रतिनिधित्व करने वाले अजलाफ एवं अरजाल मुस्लिम समूह पसमांदा मुस्लिम रुपी छाता संगठन के अंतर्गत अपने हितों का संरक्षण व संवर्धन करने लगे

किया है। 1990 के दशक में बिहार के पूर्व सांसद, अली अनवर अंसारी के नेतृत्व में प्रथमतः अखिल भारतीय पसमांदा मुस्लिम महज (ए आई पी एम एम) के रुप में संकल्पित, पसमांदा विमर्श ने शीघ्र ही पिछड़े मुस्लिम जातीय समूहों की एक आकर्षक सभा द्वारा आरक्षण, प्रतिनिधिता व प्रत्यावर्तन के माध्यम से भारतीय समाज, अर्थवव्यस्था एवं राजव्यवस्था में अपनी विशिष्ट अस्मिता स्थापित करने के आंदोलन को पुष्ट कर दिया।

लोक सभा चुनाव 2014 में अपने प्रमुख प्रचार वाक्य, 'सबका साथ, सबका विकास' जिसे लोक सभा 2019 चुनाव के उपरांत 'सबका विश्वास' से संबंद्ध किया, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भाजपा के लिए पसमांदा मुस्लिम के समर्थन की महत्ता का अनुमान लगाते हुए अपनी कई पहलों के माध्यम से वरीयता प्रदान की। समसामयिक भारत में लगभग 85 प्रतिशत मुस्लिम जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाले पसमांदा मुस्लिम 18वीं लोक सभा चुनाव 2024 के उपरांत रणनीतिक एवं राजनैतिक रुप से प्रमुख हो गए।

नरेंद्र मोदी पसमांदा मुस्लिम को नव उपाश्रित के रुप में देखते हैं जिनका अनभिज्ञता, अज्ञानता एवं अलगाव के रुप में उत्पीड़न उनके ही मुस्लिम समाज के प्रभावी अभिजन वर्गों तथा पूर्व राजनैतिक शासन प्रणालियों द्वारा किया जाता रहा है। अतः मोदी की पसमांदा समुदाय के प्रति अभिमुखता प्रायः उनके द्वारा कार्यान्वित त्रिस्तरीय रणनीतियों द्वारा रेखांकित की जा सकती हैं जो मुख्यतः पसमांदा मुस्लिम की ओर सुगम्यता, प्रतिबद्धता एवं विश्व विश्वसनीयता का बोध कराती हैं।

(क) पसमांदा मुस्लिम की ओर सुगम्यता

यद्यपि मोदी 1.0 तथा 2.0 अंतराल वाली भाजपा-नेतृत्व राजग सरकार की नीतियों ने मुस्लिम के प्रति सुन्नी एवं शिया के रुप में कोई विभेद नहीं किया; नरेंद्र मोदी द्वारा लोक सभा 2024 चुनाव प्रचार का यह नारा - 'अबकी बार, 400 पार' भारतीय जनता पार्टी की रणनीतियों तथा कूटनीतियों को प्रकट करता है। पसमांदा मुस्लिम भाजपा के 400+ चुनाव प्रचार का केंद्रीय आधार प्रस्तुत करते हैं।

पुरुष एवं महिला पसमांदा मुस्लिम को एक समान मानते हुए मोदी ने अपने समस्त दलीय कार्यकर्ताओं एवं राजनैतिक प्रतिनिधियों को पसमांदा मतदाताओं के साथ प्रत्यक्ष संबंध, विशेषकर राजग सरकार की लोकप्रिय नीतियां जैसे उज्ज्वला योजना, आवास योजना, आयुष्मान योजना एवं अन्य योजनाओं के आलोक में, साधने को कहा। 2024 लोक सभा चुनाव के लिए भारतवर्ष में '65 अल्पसंख्यक-प्रभावी संसदीय क्षेत्रों को चिन्हित'[20] किया गया ताकि पसमांदा मुस्लिम को भाजपा सरकार की विभिन्न नीतियों, योजनाओं एवं कार्यक्रमों के माध्यम से जोड़ा जा सके।

स्नेह मिलन[21] के माध्यम से उल्लेखनीय सामुदायिक नेताओं के साथ पसमांदा-केंद्रिक रैलियों तथा बैठकों का आयोजन, 'मोदी मित्रों'[22] की सहभागिता का सुनिश्चितकरण, पसमांदाओं को उच्चतर संगठनात्मक पद, भाजपा सांसदों द्वारा पसमांदा महिलाओं के साथ रक्षा बंधन का उत्सव मनाना, इत्यादि कुछ ऐसे विशिष्ट कदम थे जो नरेंद्र मोदी द्वारा पसमांदा समुदाय के साथ चुनावी संबंधों को सुदृढ़ बंधन के रुप में कार्यान्वित करने के प्रयास रुपी किए गए।

पसमांदा समुदाय के प्रति नरेंद्र मोदी के उपरोक्त राजनैतिक संदेश लोक सभा निर्वाचन 2024 में पसमांदाओं द्वारा मैत्रेय चुनावी संकेतों में कहाँ तक परिणित हुए, इसकी पुष्टि होना अभी शेष है।

(ख) पसमांदा मुस्लिम के लिए प्रतिबद्धता

नरेंद्र मोदी द्वारा मुख्य राजनीति में पसमांदा को एकीकृत करने का द्वितीय कदम उनके लिए विशिष्ट प्रतिबद्धता सुनिश्चित करना था। कांग्रेस सरकारों द्वारा मुस्लिम समुदाय के उत्थान लिए सच्चर प्रतिवेदन जैसे प्रशामक उपाय के विपरीत नरेंद्र मोदी भाजपा-चालित सुदृढ़ व स्थिर सरकारों के माधयम से समस्त पसमांदा समुदाय को निर्णय-निर्णायक द्वारा सशक्त बनाना चाहते थे। इस्लामिक सामाजिक स्तरीकरण के अंतर्गत श्रेणीबद्ध तथा शोषक व्यवस्था की भर्त्सना करते हुए मोदी तीन तलाक जैसी बुराईयों को समाप्त कर मुस्लिम महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के पक्षधर थे। 17वीं लोक सभा के गठन के पश्चात् दिसंबर 2019 में भाजपा द्वारा तीन तलाक विधायन के प्रस्तावन का मुस्लिम समुदाय पर, विशेषकर पसमांदा मुस्लिम महिलाओं, एक क्रांतिकारी प्रभाव पड़ा।

यद्दपि यह सत्य है कि 2024 लोक सभा चुनाव में भाजपा ने किसी भी पसमांदा मुस्लिम को टिकट नहीं दिया, तथा यह भी सत्यापित है कि चुनावी संघर्ष उम्मीदवारों की विजय की संभावनाओं से संबंद्ध होते हैं ना कि सामुदायिक भावनाओं से; तथापि पसमांदाओं के संगठनात्मक सहयोग को मोदी ने भाजपा के साथ विशेष संपर्क अभियान के द्वारा सुनिश्चित किया। अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति तथा पसमांदा समुदाय के माननीय सदस्य, तारिक मंसूर को जुलाई 2023 में भाजपा के उपाध्यक्ष पद पर चयनित किया गया। उत्तर प्रदेश में जहाँ पसमांदा समुदाय की संख्या अधिक है, स्थानीय निकायों में भाजपा ने अनेक पसमांदा सदस्यों को चुनावी संघर्ष के लिए टिकट द्वारा प्रेरित किया। हज तीर्थयात्रा जहाँ राज्य अनुदान के लाभार्थी मुख्यतः अशराफ मुस्लिम ही होते रहे हैं, नरेंद्र मोदी ने पसमांदाओं के लिए विशेष हज कोटा द्वारा भाजपा सरकार की प्रतिबद्धता तथा पसमांदा वरीयता का बोध कराया।

अल्पसंख्यक-अल्पसंख्यकवाद विमर्श के प्रतिकूल नरेंद्र मोदी की पसमांदा मुस्लिम जातिय समूहों - अजलाफ एवं अरजाल के लिए प्रतिबद्धता तुष्टीकरण की अपेक्षा संतुष्टीकरण पर बल देती है।

(ग) पसमांदा मुस्लिम के प्रति विश्वसनीयता

स्वयं से ओबीसी समुदाय से संबंद्ध, जो हिंदू समाज के निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, नरेंद्र मोदी नव भारत के परिवर्तन के द्योतक तथा पिछड़े वर्गों के प्रवक्ता के रुप में भारतीय राजनीति में उभरे हैं। पसमांदा समाज की स्वायत्तता, अस्मिता तथा प्रतिष्ठा को महत्व देते हुए मोदी पसमांदाओं को भाजपा की राजग शासन में केंद्रित करना चाहते हैं।

शब्दों एवं कार्यों में अंतर किए बिना अपने दलीय कार्यकर्ताओं और जन प्रतिनिधियों के सहयोग से मोदी ने पसमांदाओं को संगठन तथा शासन में सम्मिलित करने की शक्ति को नई गति प्रदान की है।

पसमांदा मुस्लिम के प्रति मोदी के व्यावहारिक प्रयास परिणामों में परिवर्तित होने लगे जब भारत तथा विश्व के मुस्लिम नेताओं ने उन्हें अल्पसंख्यकों के पक्षसमर्थक के रुप में संबोधित करना आरंभ किया। मुस्लिम विश्व लीग के अध्यक्ष शेख मोहम्मद बिन अब्दुलकरीम अल-इस्सा ने प्रधानमंत्री मोदी को संवैधानिक नैतिकता के अनुपालन द्वारा भारत में 'समावेशी विकास' (द टाइम्स ऑफ इंडिया, 13 जुलाई 2023) सुनिश्चित करने के लिए सराहा। रेडियो के माध्यम से मन की बात द्वारा मोदी ने समाज के विभिन्न वर्गों, विशेषकर अल्पसंख्यक महिलाओं को आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर किया। रेडियो के इस कार्यक्रम ने पसमांदा समाज की संवेदनशीलता को स्पर्श किया जो सामान्य समस्याओं के सामूहिक समाधानों को संबोधित करने का एक प्रयास था। शिल्पकार, दस्तकार, बुनकर इत्यादि के लिए विशिष्ट प्रकोष्ठों का गठन तथा नए आर्थिक पैकेज के आह्वान द्वारा, जिसका अधिकतम लाभ पसमांदा मुस्लिम समूहों को प्राप्त हुआ, मोदी का इस समाज के प्रति विश्वसनीयता स्थापित करने का एक प्रामाणिक साक्ष्य है।

2024 लोक सभा चुनाव में मोदी का उत्तर प्रदेश के वाराणसी से नामांकन समस्त जातियों एवं वर्गों, अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक तथा कार्यकर्ताओं एवं मतदाताओं के सामूहिक प्रकटीकरण का एक पंथनिर्पेक्षीय इंद्रधनुष प्रस्तुत करता है। पसमांदा समुदाय का इस कार्यक्रम में बहुलता के साथ सम्मिमिलन एवं समर्थन 'काशी की सत्यनिष्ठ भावना'[23] को प्रकट करता है। जब 18वीं लोक सभा का चुनाव प्रचार हिंदू-मुस्लिम ध्रुवीकरण की ओर अग्रसर हो रहा था, तब मोदी ने विपक्ष के आरोपों का प्रतिकार करते हुए कहा कि वे हिंदू-मुस्लिम राजनीति करने की अपेक्षा राजनीति को त्यागना पसंद करेंगे।

अग्रणी मार्ग

पसमांदा भारतीय मुस्लिम समाज के 'नव उपाश्रित' बन गए हैं। विभेदन, शोषण एवं अधीनीकरण जैसे पिछड़ेपन लक्षणों के समावेशन द्वारा पसमांदा और उनके वैचारिक समर्थक एक नए आंदोलन की आधारशिला रख रहे हैं जिसके माध्यम से शासकीय अभिजन वर्गों को अंतर्वेशन और एकीकरण द्वारा स्वीकार्यात्मक कार्यवाही के विस्तारण के लिए बाध्य किया जा सके या उस पर पुनर्विचार हो सके।

यद्यपि 2024 लोक सभा चुनावी परिणाम पसमांदाओं का भाजपा अथवा नरेंद्र मोदी के लिए एकल एवं अस्पष्टार्थ समर्थन को पुष्ट तो नहीं करता है; पसमांदा समुदायों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक उत्थान के आधारभूत सरोकारों का संबोधन आरक्षण को संशोधन किए बिना कर पाना मोदी शासन 3.0 के समक्ष निरंतर एक चुनौती बना रहेगा।

संदर्भ-

1. सुनील के चौधरी (2018). द चेंजिंग फेस ऑफ पार्टीज एंड पार्टी सिस्टम्स: ए स्टडी ऑफ इजराइल एंड इंडिया। सिंगापुर: स्प्रिंगर एंड पालग्रैव मैकमिलन। पृष्ठ-107.
2. रजनी कोठारी (1964). 'द कांग्रेस सिस्टम इन इंडिया', एशियन सर्वे, खंड 4, अंक 12, पृष्ठ संख्या, 1161-1173.
3. योगेंद्र यादव (2000). 'अंडरस्टैंडिंग द सैकंड डेमोक्रेटिक उपसर्ज: ट्रेंड्स ऑफ बहुजन पार्टिसिपेशन इन इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन द 1990ईज' इन फ्राँसिन आर फ्रैंकल एंड अदरस (सम्पादकीय)। ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया: सोशल एंड पॉलिटिकल डायनामिक्स ऑफ डेमोक्रेसी। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड। पृष्ठ संख्या, 10.
4. सुनील के चौधरी (2024). इंडिया@75: ए चेंजिंग इलेक्टोरल डेमोक्रेसी। दिल्ली: आकार बुक्स। पृष्ठ संख्या, 250.
5. सेयमोर मार्टिन लिप्सेट और स्टीन रोक्कन (संपादक) (1967). पार्टी सिस्टम्स एंड वोटर अलाइनमेन्ट्स: क्रॉस नेशनल पर्सपेक्टिवस। न्यू यॉर्क: द प्रेस।
6. हिलाल अहमद (2019). सियासी मुस्लिम्स: ए स्टोरी ऑफ पोलिटिकल इस्लामस इन इंडिया। नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स।
7. सुनील के चौधरी (2024). पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या, 250
8. सुनील के चौधरी (2018, 2024). पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या, vii/251.
9. सीजीएस समीक्षा 2024: जम्मू और कश्मीर विधान सभा चुनाव सर्वेक्षण, वैश्विक अध्ययन केंद्र (सीजीएस), दिल्ली विश्वविद्यालय, 11 सितम्बर 2024 - 3 अक्टूबर 2024.
10. सीजीएस समीक्षा 2024: झारखण्ड विधान सभा चुनाव सर्वेक्षण, वैश्विक अध्ययन केंद्र (सीजीएस), दिल्ली विश्वविद्यालय, 9-18 नवंबर 2024.
11. सुनील के चौधरी (2024). पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या, 251.
12. सेबस्टियन कुस्सरोव और पैट्रिक पॉलक (2015). अंडरस्टैंडिंग द ब्रांचेज ऑफ इस्लाम, यूरोपियन पार्लियामेंट रिसर्च सर्विस, पृष्ठ संख्या, 1.
13. उक्त, पृष्ठ संख्या, 3.
14. 'अशरफस: इस्लामिक कास्ट ग्रुप', ब्रिटैनिका, 2021 (ऑनलाइन).
15. इम्तिआज अहमद (1967). 'द अशरफ एंड अजलफ कैटेगरीज इन इंडो-मुस्लिमसोसाइटी', इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली, खंड 12, अंक19, पृष्ठ संख्या, 887.
16. उक्त, पृष्ठ संख्या, 888.
17. योगेंद्र यादव (2000). पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या, 10.
18. सुनील के चौधरी (2024). पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या, 72.
19. फैयद ऐली (2024). 'मैपिंग मुस्लिम वोटिंग बिहैवियर इन इंडिया', कार्नेगी एंडोवमेंट फॉर इंटरनेशनल पीस, 9 फरवरी, पृष्ठ संख्या, 4.
20. 'हू आर पसमांदा मुस्लिमस एंड व्हाई इज द बीजेपी वूईंग दैम', द डेक्कन हेराल्ड, 30 जून 2024.
21. 'बीजेपीस आउटरीच टू मुस्लिम्स इन यूपी अहेड ऑफ नेक्स्ट लोक सभा पोल्स', द डेक्कन हेराल्ड, 7 मार्च 2023.
22. फैयद ऐली (2024). पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या,6.
23. 'पीएमस रोडशो बिकम्स कार्निवल ऑफ टू काशी स्पिरिट', द टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 14 मई 2024.

उत्तराखण्ड शासन

देवभूमि रजत उत्सव

समान नागरिक संहिता

उत्तराखण्ड, 2024

"समान नागरिक संहिता हमारी बेटियों, माताओं और बहनों के सम्मानपूर्ण जीवन का आधार बनेगी। समान नागरिक संहिता से लोकतंत्र की भावना मजबूत होगी, संविधान की भावना मजबूत होगी।"

नरेन्द्र मोदी
प्रधानमंत्री

"प्रदेश की देवतुल्य जनता के आशीर्वाद से 27 जनवरी 2025 से हमने राज्य में यूसीसी लागू कर दिया है। यह ऐतिहासिक कार्य आदरणीय प्रधानमंत्री जी के मार्गदर्शन के बिना असंभव था।"

पुष्कर सिंह धामी
मुख्यमंत्री, उत्तराखण्ड

समान नागरिक संहिता से सशक्त उत्तराखण्ड

समरसता और समानता के नए युग का शुभारम्भ

संपत्ति अधिकार
01 सभी धर्म-समुदायों के सभी वर्गों के लिए बेटा-बेटी को संपत्ति में समान अधिकार।

वैवाहिक आयु निर्धारित
02 सभी धर्मों में विवाह की न्यूनतम उम्र लड़कों के लिए 21 वर्ष और लड़कियों के लिए 18 वर्ष निर्धारित।

वैवाहिक पंजीकरण
03 विवाह के तय समय के भीतर विवाह पंजीकरण करवाना अनिवार्य। एक पति-पत्नी नियम समान रुप से लागू।

तलाक पर समान अधिकार
04 तलाक पर पत्नी को पति जैसा समान अधिकार, सभी धर्म और सम्प्रदायों के महिला-पुरुषों को समान अधिकार।

माता-पिता हेतु
05 किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात उसकी सम्पत्ति में माता-पिता का भी समान अधिकार होगा।

अनुसूचित जनजाति
06 अनुसूचित जनजाति को समान नागरिक संहिता (यूसीसी) के दायरे से बाहर रखा गया है।

लिव इन रिलेशन
07 लिव इन रिलेशन के दौरान पैदा हुए बच्चों को उस युगल का जायज़ बच्चा ही माना जाएगा और उस बच्चे को जैविक संतान के समस्त अधिकार प्राप्त होंगे।

यू.सी.सी. (UCC) की यात्रा

- **यूसीसी पर विशेषज्ञ समिति का गठन** — 27 मई, 2022 को गठन, रिपोर्ट 02 फरवरी 2024 को प्रस्तुत
- **राज्य विधानसभा द्वारा अधिनियम अनुमोदित** — 08 फरवरी, 2024
- **भारत के माननीय राष्ट्रपति द्वारा अधिनियम अनुमोदित** — 08 मार्च, 2024
- **यूसीसी उत्तराखण्ड अधिनियम, 2024** — 12 मार्च, 2024
- **यूसीसी नियमावली समिति का गठन** — 14 फरवरी, 2024 को गठन, रिपोर्ट 18 अक्टूबर 2024 को प्रस्तुत
- **यूसीसी नियम** — राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित

यू.सी.सी समान नागरिक संहिता का उद्देश्य

- समाज के प्रत्येक कमजोर, गरीब और संवेदनशील वर्ग को सुरक्षा प्रदान करना एवं सशक्त बनाना।
- प्रत्येक वर्ग की महिलाओं, बच्चों, युवाओं और वृद्धों को विकास की मुख्य-धारा से जोड़ना।
- एक समान कानून के जरिए प्रदेश में एकता, अखंडता और राष्ट्रवाद की भावना को बढ़ावा देना।
- विवाह की आयु बढ़ाकर प्रदेश की बेटियों और साथ ही बेटों को उच्च शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करना।
- वर्षों से चली आ रही कुप्रथाओं को समाप्त करते हुए सशक्त और समृद्ध समाज का निर्माण करना।
- सभी समुदाय के लोगों को समानता का अधिकार देते हुए बेटा-बेटी व स्त्री-पुरुष का भेदभाव मिटाना।

रजिस्ट्रेशन करने हेतु लॉग इन करें....ucc.uk.gov.in

सूचना एवं लोक सम्पर्क विभाग, उत्तराखण्ड द्वारा जनहित में जारी।

www.uttarainformation.gov.in | uttarakhandDIPR | DIPR_UK | uttarakhand DIPR

उत्तराखण्ड शासन

देवभूमि रजत उत्सव

डेस्टिनेशन उत्तराखण्ड

सतत विकास को प्रोत्साहन

संकल्प नये उत्तराखण्ड का

"21वीं सदी के विकसित भारत के निर्माण के दो प्रमुख स्तंभ हैं। पहला, अपनी विरासत पर गर्व और दूसरा, विकास के लिए हर संभव प्रयास। आज उत्तराखण्ड, इन दोनों ही स्तंभों को लगातार मजबूत कर रहा है। ये दशक उत्तराखण्ड का दशक होगा।"

नरेन्द्र मोदी
प्रधानमंत्री

"माननीय प्रधानमंत्री जी ने 21वीं सदी के तीसरे दशक को उत्तराखण्ड का दशक कहा है। हम प्रधानमंत्री जी के विज़न के अनुरुप राज्य को हर क्षेत्र में आदर्श राज्य बनाने के लिये विकल्प रहित संकल्प के साथ काम कर रहे हैं।"

पुष्कर सिंह धामी
मुख्यमंत्री, उत्तराखण्ड

डबल इंजन की सरकार

बड़े निर्णय - बड़ा प्रभाव

समानता की गारंटी

समान नागरिक संहिता (यूसीसी)- स्वतंत्र भारत के इतिहास में उत्तराखण्ड पहला ऐसा राज्य बन गया है, जिसने समान नागरिक संहिता (यूसीसी) को लागू किया है। समस्त धर्म-समुदायों में विवाह, तलाक, गुजारा भत्ता और विरासत के लिए एक कानून का उत्तराखण्ड में प्रावधान है। समाज में बाल विवाह, बहु विवाह, तलाक जैसी सामाजिक कुरीतियों और कुप्रथाओं पर रोक सुनिश्चित होगी। लिव इन रिलेशनशिप के संबंध में पंजीकरण व अन्य व्यवस्थाओं के दूरगामी परिणाम निकलेंगे।

नारी शक्ति का सम्मान

30 प्रतिशत क्षैतिज आरक्षण-राज्य सरकार ने उत्तराखण्ड की सरकारी नौकरियों में महिलाओं की प्रतिभागिता बढ़ाने के लिए ऐतिहासिक निर्णय लिया है। इसके अंतर्गत सरकारी नौकरियों में महिलाओं के लिए 30 प्रतिशत क्षैतिज आरक्षण से संबंधित कानून लागू किया गया है। उत्तराखण्ड में महिला सशक्तिकरण की दृष्टि से इस निर्णय का व्यापक प्रभाव पड़ा है।

सशक्त भू-कानून

भूमि के अवैध कारोबार पर प्रहार - उत्तराखण्ड में जमीनों को खुर्द-बुर्द करने की शिकायतों को दूर करने के लिए राज्य सरकार ने सशक्त भू-कानून लागू करने का निर्णय लिया है। जनभावनाओं के अनुरुप राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था-1950 (संशोधन विधेयक 2025) में जमीन बेचने-खरीदने के लिए कड़े प्रावधान किए हैं। इस भू-कानून के माध्यम से जमीन के अवैध कारोबार पर नकेल कसना संभव होगा।

धर्मांतरण विरोधी कानून

जोर-जबरदस्ती पर रोक -दबाव बनाकर धर्मांतरण कराने की कोशिशों को हतोत्साहित करने के लिए राज्य सरकार सख्त कानून लेकर आई है। राज्य सरकार ने उत्तराखण्ड धर्म की स्वतंत्रता (संशोधन) विधेयक-2022 के माध्यम से जबरन या प्रलोभन देकर धर्म परिवर्तित कराने या करने पर 10 साल तक की सजा का प्रावधान किया गया है। जबरन धर्म परिवर्तन को रोकने में यह कानून सार्थक साबित हो रहा है।

नकल विरोधी कानून

पारदर्शी परीक्षा के हक में -राज्य में परीक्षा प्रणाली में पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए प्रतियोगी परीक्षा अध्यादेश-2023 लागू किया गया है। योग्य युवाओं के पक्ष में लागू किया गया यह कानून बेहद सख्त है, जिसमे नकल करने पर 10 वर्ष तक की कैद और 10 लाख तक के जुर्माने का प्रावधान किया गया है।

दंगारोधी कानून

संपत्तियों की सुरक्षा का कवच -दंगा-फसाद और अन्य गतिविधियों के कारण संपत्तियों को होने वाले नुकसान को रोकने के लिए सरकार सख्त कानून लेकर आई है। राज्य सरकार ने उत्तराखण्ड लोक और निजी संपत्ति क्षति वसूली कानून लागू किया है। इसके दायरे में सरकारी और निजी दोनों तरह की संपत्ति को रखा गया है। नुकसान करने वालों से ही क्षतिपूर्ति वसूलने की व्यवस्था संपत्तियों को सुरक्षित रखने में मददगार साबित होगी।

आंदोलनकारियों का मान

10 प्रतिशत क्षैतिज आरक्षण- उत्तराखण्ड राज्य निर्माण के लिए संघर्ष करने वाले आंदोलनकारियों को सरकार ने सौगात दी है। सरकारी नौकरियों में उनके लिए सरकार ने 10 प्रतिशत क्षैतिज आरक्षण की व्यवस्था सुनिश्चित की है। आंदोलनकारियों के सभी आश्रितों को भी क्षैतिज आरक्षण के दायरे में लाया गया है। राज्य आंदोलनकारियों की वर्षों पुरानी मांग को पूरी कर सरकार ने उनका सम्मान किया है।

विश्व पटल पर बन रही देवभूमि उत्तराखण्ड की अलग पहचान

बड़े आयोजन से बनी बड़ी पहचान

ज्वलंत विषयों पर गहन मंथनः जी-20 सम्मेलन की बैठकें

जी-20 सम्मेलन के अंतर्गत आयोजित इंफ्रास्ट्रक्चर वर्किंग ग्रुप की बैठकों का उत्तराखण्ड में सफल आयोजन किया गया। नरेंद्रनगर-ऋषिकेश और रामनगर में आयोजित इन बैठकों में देश-विदेश के प्रतिनिधियों के साथ महत्वपूर्ण चर्चा हुई। प्रौद्योगिकी, इन्फ्राटेक और डिजिटलीकरण की भूमिका की खोज के साथ-साथ जलवायु परिवर्तन से लेकर बुनियादी ढांचे के लचीलेपन और तेज शहरीकरण और समावेशन जैसे विषयों पर विचार विमर्श किया गया।

जड़ों से जुड़ावः अंतर्राष्ट्रीय प्रवासी उत्तराखण्डी सम्मेलन

विभिन्न देशों में रहते हुए व्यापार व अन्य क्षेत्रों में नाम कमाने वाले प्रवासी उत्तराखण्डियों को अपने साथ जोड़ने के लिए राज्य सरकार ने महत्वपूर्ण पहल की है। इस क्रम में 12 जनवरी 2025 को देहरादून में अंतर्राष्ट्रीय प्रवासी सम्मेलन का आयोजन किया गया। प्रतिभागियों ने राज्य सरकार के साथ मिलकर उत्तराखण्ड में निवेश करने और रोजगार के नए अवसर पैदा करने का संकल्प लिया।

उत्तराखण्ड में खेलों का नया अध्यायः 38वें राष्ट्रीय खेल

देवभूमि को रजत जयंती वर्ष के अवसर पर 38वें राष्ट्रीय खेलों की मेजबानी का अवसर मिला। उत्तराखण्ड ने ना सिर्फ भव्य आयोजन सुनिश्चित किया, बल्कि खेल के मैदान में अपने प्रदर्शन को नई ऊंचाई प्रदान की। दस हजार से ज्यादा खिलाड़ियों ने बेहतरीन आधारभूत ढांचे और उच्चस्तरीय सुविधाओं के बीच खेल प्रतिभा का प्रदर्शन किया। उत्तराखण्ड ने पहली बार सबसे ज्यादा 103 पदक जीते और मेडल टेली में सातवां स्थान प्राप्त किया। खेल विकास के दृष्टिकोण से राष्ट्रीय खेल उत्तराखण्ड के लिए मील का पत्थर साबित हुए।

उद्यमियों संग आया निवेशः ग्लोबल इन्वेस्टर्स समिट, 2023

राज्य सरकार ने दिनांक 08 व 09 दिसंबर 2023 को उत्तराखण्ड ग्लोबल इन्वेस्टर्स समिट का आयोजन किया, जिसमें उद्यमियों के उत्साह ने निवेश प्रस्तावों की चमकदार तस्वीर सामने रखी। उत्तराखण्ड को लक्ष्य से अधिक 3.50 लाख करोड़ के निवेश प्रस्ताव प्राप्त हुए। पीस टू प्रोसपेरिटी की टैगलाइन को वास्तविक रूप से अपनाते हुए सरकार उद्यमियों का भरोसा जीतने में सफल रही। करीब तीस निवेशक अनुकूल नई नीतियों के साथ ये प्रस्ताव धरातल पर उतर रहे हैं और प्रदेश की समृद्धि में भागीदार बन रहे हैं।

आयुष की लौः विश्व आयुर्वेद कांग्रेस एवं अंतर्राष्ट्रीय एक्सपो

आयुष गतिविधियों को विश्व स्तर पर विस्तारित करने के उद्देश्य से विश्व आयुर्वेद कांग्रेस एवं अंतर्राष्ट्रीय एक्सपो के दसवें संस्करण का उत्तराखण्ड में सफल आयोजन किया गया। 12 से लेकर 15 दिसंबर 2024 तक देहरादून में आयोजित इस कार्यक्रम में 60 से अधिक देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया और आयुर्वेद से जुड़े तमाम पहलुओं पर विस्तारपूर्वक चर्चा की।

सूचना एवं लोक सम्पर्क विभाग, उत्तराखण्ड द्वारा जनहित में जारी। www.uttarainformation.gov.in uttarakhandDIPR DIPR_UK uttarakhand DIPR

#ExploreUttarakhand @DIPR_UK

प्रो. हिमांशु रॉय

एम.ए. अंसारी, नेहरू समिति की रिपोर्ट और पृथक निर्वाचन क्षेत्र

पृथक निर्वाचन क्षेत्र के खिलाफ मुख्तार अहमद अंसारी की राय कांग्रेस के राजनैतिक रूप से स्वीकृत पाप' से एक महत्त्वपूर्ण विचलन था। एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

कांग्रेस के अध्यक्ष मुख्तार अहमद अंसारी (1880-1936) ने 1927 में भारत के संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन की अध्यक्षता की थी। इस सर्वदलीय सम्मेलन में कांग्रेस, हिंदू महासभा, मुस्लिम लीग और अन्य शामिल थे। उन्होंने राष्ट्रीय अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय संबोधन में एक महत्त्वपूर्ण भाषण दिया था। यह भाषण उस पृथक निर्वाचिका के विरुद्ध था, जिसे औपनिवेशिक राज्य ने मुस्लिम लीग के साथ मिलीभगत करके बनाया था और उसे संवैधानिक रूप दिया था। इस मुस्लिम लीग का गठन सामंती मुस्लिम अभिजात वर्ग की घटती राजनैतिक शक्ति को वापस पाने के लिए हुआ था।

कांग्रेस के साथ राजनैतिक समानता के लिए इस शक्ति को वापस प्राप्त करने के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की परिकल्पना की गई। और इसे अल्पसंख्यकों के लिए व्यक्तिगत अधिकारों और सामाजिक न्याय के विस्तार के रूप में पेश किया गया। 1916 के बाद धर्म आधारित पृथक राजनैतिक अधिकारों को धर्मनिरपेक्षता के अभिन्न अंग के रूप में अंगीकार किया जाने लगा, और कांग्रेस ने लखनऊ बैठक में इसे स्वीकार भी कर लिया।

इस पृष्ठभूमि के विपरीत, पृथक निर्वाचिका के खिलाफ आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन में अंसारी का अध्यक्षीय भाषण 'कांग्रेस के राजनैतिक रूप से स्वीकृत पाप' का एक महत्त्वपूर्ण विचलन था। राष्ट्र संघ की समिति की टिप्पणी का हवाला देते हुए उन्होंने कहा कि 'अल्पसंख्यकों की सच्ची सुरक्षा बहुसंख्यकों की सद्भावना है'। और यह 'देशभक्ति, जन भावना और देश के प्रति[1] समर्पण' रखने से पैदा हुए विश्वास से आती है।' 1857 (मुगल राजशाही का उन्मूलन) के बाद, मुस्लिम कुलीन वर्ग में राजनैतिक शक्ति घटने के कारण उनमें डर और पीड़ित होने की आशंका के चलते संवैधानिक सुरक्षा के प्रति एक आकर्षण पैदा हो गया था। कांग्रेस ने 1916 में इसे राजनैतिक आश्वासन देने का साथ अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी थी। महात्मा गांधी के साथ अपनी प्रतिस्पर्धा के चलते जिन्ना ने राजनैतिक वर्चस्व के लिए हमेशा राष्ट्रीय राजनैतिक आम सहमति बनाने की कोशिशों में मुश्किलें पैदा कीं। जिन्ना की इस सनक पर हमला करते हुए अंसारी ने कहा कि "संवैधानिक सुरक्षा उपाय अकुशलता पर इनाम हैं। किसी अल्पसंख्यक के पास जितने ज्यादा सुरक्षा उपाय होंगे, उसे उतनी ही ज्यादा उसकी जरूरत महसूस होगी। और संविधान के परोपकारी प्रावधानों द्वारा मुक्त प्रतिस्पर्धा की उत्साहजनक भावना से सुरक्षित, ये अल्पसंख्यक अज्ञानता, कट्टरता और आलस्य में और भी ज्यादा डूब जाएंगे, और इन्हें अंत में वही लोग दबा देंगे जिन्होंने आंशिक समर्थन[2] देने का वादा किया था।"

उनका यह नजरिया भविष्यसूचक था। इसने न केवल समुदाय के विकास में बाधा डाली, बल्कि देश को भी तोड़ कर रख दिया - यह आज भी राष्ट्र के लिए परेशनी का सबब है। उन्होंने सार्वभौमिक अधिकार, प्रतिस्पर्धा की स्वतंत्रता, तथा सभी के विकास के इरादे से उदार लोकतांत्रिक राष्ट्रीय आम सहमति के ढांचे के भीतर क्षमताओं पर आधारित प्रतिस्पर्धा की भावना का सुझाव दिया था। वह मुस्लिम लीग की राजनैतिक मांगों के परिणामस्वरूप पैदा होने वाली अकुशलता और धार्मिक अलगाव के खतरे

से अच्छी तरह परिचित थे।

जैसा कि हम जानते हैं, मुस्लिम लीग पृथक निर्वाचन क्षेत्र को खारिज करने के बदले केंद्रीय विधानमंडल, पंजाब और बंगाल प्रांत में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने हेतु सीटों के आरक्षण[3] के लिए एक विधायी तंत्र की मांग कर रही थी। उनकी इस मांग को मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता वाली नेहरू समिति ने खारिज कर दिया था। अस्वीकृति का आधार यह तर्क था कि वे (मुसलमान) पहले से ही इन दो प्रांतों में बहुमत में थे, और यह प्रतिनिधित्व की प्रणाली के साथ संगतपूर्ण नहीं है। उन्हें राजनैतिक सुरक्षा के लिए आरक्षण जैसे सुविधा की आवश्यकता नहीं है। हालांकि हिंदू बहुल ब्रिटिश प्रांतों में नेहरू समिति ने उन्हें प्रतिनिधित्व देने हेतु विधानमंडल में धर्म आधारित आरक्षण की व्यवस्था जारी रखी थी, लेकिन लखनऊ समझौते के तहत कांग्रेस द्वारा सहमत 'वेटेज के सिद्धांत' को खत्म कर दिया। केंद्रीय विधानमंडल में एक तिहाई सीटों के आरक्षण की मांग पर भी सहमति नहीं बनी- उसके पीछे यह तर्क दिया गया कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में उनकी आबादी का वितरण असमान है, जिसके चलते आरक्षण के सिद्धांत और तंत्र को लागू करना संभव नहीं है। इससे पहले मोतीलाल नेहरू, 1927 में मुसलमानों का विश्वास जीतने के लिए आरक्षण के इस सिद्धांत का समर्थन किया था। पृथक निर्वाचिका को समाप्त करने के उनके प्रस्ताव का विभिन्न प्रांतों के गैर-लीग नेताओं ने कड़ा विरोध किया। इसके कारण उन्हें अपना रास्ता बदलने पर मजबूर होना पड़ा। लखनऊ समझौते के बाद इस सिद्धांत का विरोध बढ़ने लगा था।

1916 में लखनऊ में कांग्रेस ने पृथक निर्वाचिका को राजनैतिक स्वीकृति दी थी जो एक 'बड़ी भूल' थी। इस भूल को बाद में लाजपत राय ने 13 दिसंबर 1924[4] को ठाकुरदास के सामने स्वीकार किया। इससे पहले गांधी जी ने लखनऊ में इस भूल को होते हुए देखा था। उन्होंने तब सार्वजनिक रूप से इसका विरोध नहीं किया था, लेकिन निजी तौर पर वे भी इस सिद्धांत से सहमत नहीं थे। कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच हुए इस समझौते ने प्रांतीय परिषदों में और यहां तक कि ब्रिटिश भारत के मुस्लिम बहुल प्रांतों में भी पृथक निर्वाचक मंडल के सिद्धांत को आगे बढ़ाया। मुस्लिम व्यापारी अभिजात वर्ग को अपने सामंती कुलीन वर्ग के साथ गठबंधन करके प्रांतीय परिषदों और केंद्रीय विधानमंडल में राजनैतिक प्रतिनिधित्व की आवश्यकता थी ताकि प्रांतीय और केंद्रीय कानूनों के माध्यम से वे अपने व्यापार और व्यावसायिक हितों की रक्षा कर सकें और अपने चैंबर्स ऑफ कॉमर्स को मजबूत बना सकें। केंद्रीय विधानमंडल में उनके प्रतिनिधित्व के अभाव के चलते वे विभिन्न क्षेत्रीय व्यापार मंडलों (दक्षिण भारतीय वाणिज्य और उद्योग मंडल, बंगाल राष्ट्रीय वाणिज्य और उद्योग मंडल, आंध्र राष्ट्रीय वाणिज्य और उद्योग मंडल) और फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्रीज (FICCI) की तुलना में खुद को पिछड़ा हुए महसूस कर रहे थे, जिसका गठन 1925 में हुआ था और जिसमें हिंदुओं और पारसियों का वर्चस्व था। उनसे प्रतिस्पर्धा करने के लिए मुस्लिम व्यापारिक अभिजात वर्ग ने बहुसंख्यकवादी प्रभुत्व से राजनैतिक संरक्षण का आख्यान गढ़ा। और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे आनुपातिक धार्मिक प्रतिनिधित्व के मुखौटे के पीछे विधायी प्रतिनिधित्व का मामला उठा रहे थे। तथ्य उनके आख्यान के विपरीत थे। ब्रिटिशों के भारत पर शासन से पहले मुस्लिम अभिजात वर्ग ने सदियों तक इसपर शासन किया था। उस दौरान उन्होंने कभी भी धार्मिक अल्पसंख्यकों द्वारा बहुसंख्यकों पर शासन करने का मुद्दा नहीं उठाया। 1885 में, कांग्रेस के गठन और लोकतांत्रिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं के निर्माण की मांग के बाद, मुस्लिम अभिजात वर्ग ने विधायिका में अपने धार्मिक प्रतिनिधित्व का मुद्दा उठाना शुरू कर दिया। इस मांग को उनके व्यापारिक अभिजात वर्ग और पारंपरिक कुलीन वर्ग ने आगे बढ़ाया, जिन्होंने 19वीं शताब्दी में गैर-मुसलमानों के बढ़ते व्यापार और राजनीति के सामने अपने घटते प्रभाव को महसूस किया था। ब्रिटिश प्रांतों में, खास तौर पर प्रेसीडेंसी शहरों में जहां उनका व्यवसाय और राजनीति थी, पृथक निर्वाचिका ने गैर-मुसलमानों के खिलाफ व्यापार और राजनैतिक प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए उन्हें कुछ लाभ प्रदान किया। उल्लेखनीय है कि पंजीकृत मतदाताओं में मुस्लिम कम थे क्योंकि यह कर भुगतान पर आधारित था। पृथक निर्वाचन मंडलों के माध्यम से बनाई गई कृत्रिम सुरक्षा उन्हें जिला बोर्डों, नगर पालिकाओं और प्रांतीय परिषदों में सीटें सुरक्षित करने में मदद

मिलती थी जिसके माध्यम से वे अपनी राजनीति को आगे बढ़ा सकते थे, प्रांतीय सरकारों और नगर निकायों के माध्यम से स्थानीय टैरिफ बनाकर अपने प्रतिद्वंद्वियों के खिलाफ अपने व्यवसाय को कृत्रिम रूप से चलाये रखने वाले कानून बना सकते थे। व्यवसाय और राजनीति दोनों में प्रतिद्वंद्वियों को धार्मिक विरोधियों के रूप में प्रस्तुत किया गया। इसका उद्देश्य बहुसंख्यकवाद को बढ़ावा देना था और इस लड़ाई में पसमांदा समाज को, जिनमें से अधिकांश गैर-मतदाता थे, उन्हें हथियार के रूप में इस्तेमाल किया गया।

ऐसे में अंसारी का अध्यक्षीय भाषण गैर-कांग्रेसी मुस्लिम अभिजात वर्ग के सामाजिक-राजनैतिक आख्यान और निहित स्वार्थ की पृष्ठभूमि में एक क्रांतिकारी बदलाव था, जिसे लगभग आधी सदी से प्रचारित-प्रसारित किया जा रहा था। 'स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा से अकुशलता संरक्षण' और संवैधानिक सुरक्षा उपायों के 'धर्मार्थ प्रावधानों' पर उनका ध्यान, जो लीग की मांगों की आलोचना थी, उन्हें अस्वीकार्य था क्योंकि मुस्लिम लीग औपनिवेशिक राज्य की कोख से पैदा हुई थी और अपने धर्मार्थ प्रावधानों के कारण अस्तित्व में थी। मुस्लिम लीग को जितना अधिक लोक समर्थन की कमी महसूस हुई, उसने उतना ही अधिक अपने अस्तित्व के लिए कांग्रेस और औपनिवेशिक राज्य से अपने धर्मार्थ प्रावधानों के लिए समर्थन की मांग की। उदाहरण के लिए, 1930 में, "जब इकबाल ने अपना ऐतिहासिक भाषण प्रस्तुत किया... उत्तर पश्चिमी भारत में एक मुस्लिम राज्य की मांग करते हुए, इलाहाबाद की बैठक में पचहत्तर सदस्यों (प्रतिनिधियों)[5] का कोरम भी नहीं था"; और इसका समर्थन करने वाला कोई प्रस्ताव भी नहीं था। सात साल बाद, औपनिवेशिक राज्य ने केंद्रीय विधानसभा में शरीयत अधिनियम लागू किया।

अंसारी पर हिंदुओं की अंधभक्ति करने, मुसलमानों को धोखा देने और उस कांग्रेस को खत्म करने का आरोप लगाया गया, जिसकी छवि 1916 के पहले 'राष्ट्रीय' थी। अब इसे हिंदू महासभा[6] का एक सहायक संगठन बना दिया गया। कांग्रेस अध्यक्ष के

अंसारी पर हिंदुओं की अंधभक्ति करने, मुसलमानों को धोखा देने और उस कांग्रेस को खत्म करने का आरोप लगाया गया, जिसकी छवि 1916 के पहले 'राष्ट्रीय' थी। अब इसे हिंदू महासभा का एक सहायक संगठन बना दिया गया। कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में उन्होंने जितना अधिक नेहरू समिति की रिपोर्ट को 'एक उज्ज्वल दिन की सुबह' के रूप में प्रचारित किया उतना ही अधिक उन पर मुसलमानों के प्रति जानबूझकर अवमानना करने और 'संख्या के अत्याचार' को वैध बनाने का आरोप लगा। गौरतलब है कि रिपोर्ट में पृथक निर्वाचन क्षेत्र को समाप्त करने, बंगाल और पंजाब के मुस्लिम बहुल प्रांतों में सीटों के आरक्षण और अन्य प्रांतों में उनके लिए महत्व की सिफारिश की गई थी। लेकिन सार्वजनिक तौर पर जो कुछ भी नजर आ रहा था, उससे कहीं ज्यादा चल रहा था

रूप में उन्होंने जितना अधिक नेहरू समिति की रिपोर्ट को 'एक उज्ज्वल दिन की सुबह' के रूप में प्रचारित किया उतना ही अधिक उन पर मुसलमानों के प्रति जानबूझकर अवमानना करने और 'संख्या के अत्याचार' को वैध बनाने का आरोप लगा। गौरतलब है कि रिपोर्ट में पृथक निर्वाचन क्षेत्र को समाप्त करने, बंगाल और पंजाब के मुस्लिम बहुल प्रांतों में सीटों के आरक्षण और अन्य प्रांतों में उनके लिए महत्व की सिफारिश की गई थी। लेकिन सार्वजनिक तौर पर जो कुछ भी नजर आ रहा था, उससे कहीं ज्यादा चल रहा था। उस अनदेखी की गई सिफारिश ने आग को और हवा दी। प्रांतों की अवशिष्ट शक्तियां केंद्र सरकार को हस्तांतरित की जानी थीं। इससे उनके क्षेत्रीय व्यापार मंडलों में घबराहट फैल गई, और उन्हें अपने व्यापार को और अधिक नुकसान पहुंचने का भय सताने लगा। फिक्की ने एक केंद्रीकृत अखिल भारतीय व्यापार कानून की मांग की थी और यह कोई सामान्य संयोग नहीं था। जब अंसारी ने 'मुक्त प्रतिस्पर्धा' की बात की तो ऐसा महसूस किया गया कि वे फिक्की की भाषा बोल रहे थे। भूमि स्वामियों को परिषदों और नगरपालिका बोर्डों/जिला बोर्डों (अलग निर्वाचन क्षेत्रों और वेटेज प्रणाली के माध्यम से) के सदस्यों के रूप में मनोनीत और निर्वाचित किया गया। उनके पास अलग-अलग शिकायतें थीं कि रिपोर्ट की स्वीकृति के अधीन अलग निर्वाचन क्षेत्र को समाप्त कर दिया जाएगा। इस प्रकार नेहरू समिति की रिपोर्ट से उनके राजनैतिक प्रतिनिधित्व और व्यापारिक हितों को खतरा पैदा हो गया। इसके चलते अंसारी पर 'बहुसंख्यकों की सांप्रदायिकता' को खुली छूट देने का आरोप लगाया गया, और ऐसा करने वाले संयुक्त प्रांत के मुसलमान थे जिन्होंने 'धर्मयुद्ध का नेतृत्व किया था' जो 'पंजाब और बंगाल[7] में मुस्लिम बहुसंख्यकों के कथित अधिकारों के लिए' लड़ रहे थे।

नेहरू समिति की रिपोर्ट (समिति के अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू, सचिव जवाहरलाल नेहरू, सदस्य अली इमाम, तेज बहादुर सप्रू, सुभाष चंद्र बोस, जयकर और ऐनी बेसेंट) को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वह 1916 में लखनऊ में कांग्रेस से हुई भूल को दूर करने के लिए कृतसंकल्प थी। हालांकि, उसने मुसलमानों को 1909 के बाद दिए गए राजनैतिक विशेषाधिकारों को पूरी तरह से समाप्त नहीं किया। उसने पृथक निर्वाचिका के स्थान पर उन निर्वाचन क्षेत्रों में विधानमंडलों में आरक्षण की व्यवस्था की जहां मुसलमान अल्पसंख्यक थे और उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत में गैर-मुसलमानों के लिए भी आरक्षण की व्यवस्था की। यह पंजाब और बंगाल में लागू नहीं था। इससे पहले मोतीलाल और सप्रू ने पृथक निर्वाचिका को क्रमशः 'सार्वजनिक जीवन में एक घातक सिद्धांत' और 'आवश्यक बुराई' घोषित किया था। इसकी तुलना में आरक्षण एक बेहतर विकल्प था और

यह अली इमाम, ऐनी बेसेंट और एम. ए. अंसारी के समर्थन के बिना संभव नहीं होता। इसमें भाषाई सिद्धांत के आधार पर प्रांतों के पुनर्गठन का प्रस्ताव रखा गया था, जिस पर कांग्रेस पहले ही सहमत थी। हालांकि, इसने प्रांतों की शेष शक्ति को केंद्र को हस्तांतरित करने का प्रस्ताव रखा। इसमें व्यापार और वाणिज्य को बाह्य और आंतरिक करने तथा सीमा शुल्क, राजस्व, उत्पाद शुल्क, आयकर आदि पर कराधान को केंद्रीय विषयों में स्थानांतरित करने का भी प्रस्ताव दिया गया। ऐसे प्रस्ताव लीग के मुस्लिम अभिजात वर्ग के व्यापारिक और राजनैतिक हितों को प्रभावित कर रहे थे। लीग पृथक निर्वाचन क्षेत्र की मांग को छोड़ने के लिए तैयार थी, बशर्ते इसके स्थान पर उन्हें केन्द्रीय विधानमंडल में एक तिहाई आरक्षण दिया जाता। नेहरू समिति ने इसकी सिफारिश नहीं की। अंसारी ने तर्क दिया कि 'मातृभूमि का हित' और 'राष्ट्रीय देशभक्ति' प्रतिनिधियों के वर्गीय हितों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने 'सहानुभूतिपूर्ण समझौता', 'दिल की उदारता' और 'अपने देश के प्रति कर्तव्य' की वकालत की। यहां 1928 में भारतीय राष्ट्रीय अधिवेशन में उनके अध्यक्षीय भाषण को उद्धृत करना समीचीन होगा[8]:

कई वर्षों के गहरे अंधकार के बाद, जिसमें उद्देश्यों और लक्ष्यों को लेकर अत्यधिक उलझन थी, सांप्रदायिक मतभेदों की काली छाया ने हमें एक भयानक दु:स्वप्न की तरह सताया था - वहां नेहरू समिति के कार्य ने अंतत: एक उज्जवल दिन की शुरुआत की।

इसके तुरंत बाद मोतीलाल नेहरू ने अध्यक्षीय अभिभाषण के साथ अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उन्होंने इस रिपोर्ट को 'देश के हित', 'समुदायों के हित' और 'अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों का अधिकार' कहा। उन्होंने इसे 'एक संपूर्ण जीव', 'एक संरचना' कहा, जिसमें से एक ईंट भी निकाल देने पर यह ढह सकती है। इसके बादजूद, उन्होंने इसे लागू करने और स्वीकार करने की सिफारिश नहीं की, बल्कि उन्होंने इसे प्रतिनिधियों[9] के वर्गीय हितों के अनुसार 'पालन करने और सुधार करने' का विकल्प खुला रखा। उन्होंने प्रतिनिधियों को रिपोर्ट में संशोधन की सिफारिश करने के परिणामों के प्रति आगाह भी किया। रिपोर्ट को वास्तव में उत्तर प्रदेश के मुस्लिम प्रतिनिधियों से प्रतिरोध का सामना करना पड़ा, जिन्होंने विभिन्न प्रांतों में राजनैतिक लामबंदी कर रिपोर्ट को अस्वीकार करने का प्रयास किया था। लेकिन मुंबई को छोड़कर अधिकांश मुस्लिम प्रतिनिधियों ने रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया था, जिनमें बंगाल और पंजाब के प्रतिनिधि भी शामिल थे। जिन्ना द्वारा प्रस्तावित तीन संशोधनों को भी अस्वीकार कर दिया गया। वे संशोधन इस प्रकार थे: पहला, केंद्रीय विधानमंडल के एक तिहाई सदस्य मुस्लिम होने चाहिए; दूसरा, वयस्क मताधिकार लागू न होने की स्थिति में पंजाबी और बंगाली मुसलमानों को दस साल के लिए सीटों का आरक्षण मिलना चाहिए; और आखिरी कि अवशिष्ट शक्तियां प्रांतों[10] में निहित होनी चाहिए।

मोतीलाल को जिन्ना से बहुत उम्मीद लगा रखी थी। उन्हें लगा था कि जिन्ना रिपोर्ट स्वीकार कर लेंगे। लेकिन उनके (जिन्ना के) अंतिम दो प्रस्तावों ने, सम्मेलन में हार का सामना करने के बावजूद, मुस्लिम अभिजात वर्ग के बीच एकता को बरकरार रखा। नेहरू रिपोर्ट ने उनके बीच अस्थायी मतभेद पैदा कर दिया था। इस मतभेद को सम्मेलन के बाद के वर्षों में जिन्ना के प्रस्ताव ने दूर कर दिया। नेहरू जिन्ना के प्रस्ताव पर बातचीत करने को तैयार थे, लेकिन लाजपत राय और मुंजे ने उन्हें (मोतीलाल को) सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व[11] पर आगे समझौता न करने के लिए आगाह किया।

1920 और 30 के दशक में अंग्रेजीदां जिन्ना की प्रतिभा मुस्लिम अभिजात वर्ग को बरकरार रखने में थी। उन्हें मुसलमानों का लोक समर्थन नहीं मिला था, और यह लीग की तत्कालीन मौजूदा सदस्यता में बहुत अच्छी तरह परिलक्षित होता है। लीग के प्रतिनिधियों की संख्या या इसके सम्मेलनों में कोरम की कमी इस बात का सबूत है। 1930 में इलाहाबाद में इकबाल ने जो मुस्लिम राज्य के लिए प्रस्ताव रखे थे उसमें प्रतिनिधियों की अपेक्षित संख्या उपस्थित नहीं थी। यहां तक कि उनके प्रस्ताव का समर्थन[12]। करने वाला भी कोई नहीं था। जनप्रिय इच्छाशक्ति की इस महत्त्वपूर्ण कमी की भरपाई राजनैतिक आक्रामकता, नवाचारों, सुधारों और मीडिया में दृश्यता के माध्यम से की गई। सार्वभौमिक सत्य के सुसमाचार के रूप में स्वीकार्य लोकप्रिय रूपकों का इस्तेमाल अक्सर लीग को भारतीय मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में पेश करने में किया जाता था। पश्चिमी परिधान में सजे-धजे जिन्ना अंग्रेजी प्रेस के प्रिय थे, और उन्हें औपनिवेशिक राज्य का समर्थन प्राप्त था। सम्मेलन में हार के बावजूद, उनके द्वारा पेश किये गये तीन प्रस्तावों ने मुस्लिम अभिजात वर्ग को उनके साथ ला खड़ा किया। यदि नेहरू रिपोर्ट लागू हो जाती तो जिन्ना के राजनैतिक रूप से अप्रचलित हो जाने की संभावना बढ़ जाती। भारत शायद विभाजन के दंश से बच जाता।

संदर्भ

1. वी.बी. कुलकर्णी, कॉन्फ्लिक्ट इन इंडियन सोसाइटी, भारतीय विद्या भवन, 1981, पृष्ठ. 110.
2. पूर्वोक्त
3. मुशीरुल हसन, नेशनलिज्म एंड कम्युनल पॉलिटिक्स इन इंडिया, मनोहर, नई दिल्ली, 1979, पृ. 276
4. पूर्वोक्त. , पृ. 278-279
5. पूर्वोक्त. , पृ. 206, 226
6. मुशीरुल हसन, एम. ए. अंसारी, मनोहर, नई दिल्ली 2010, पृष्ठ. 195.
7. मुशीरुल हसन, नेशनलिज्म एंड कम्युनल पॉलिटिक्स इन इंडिया, उद्धृत कार्य, पृ.285.
8. वी.बी. कुलकर्णी, ऑप. सीआईटी., पृ.111.
9. पूर्वोक्त, पृ. 112.
10. मुशीरुल हसन, भारत में राष्ट्रवाद और सांप्रदायिक राजनीति, उद्धृत कार्य, पृ. 297.
11. पूर्वोक्त, पृ. 305.
12. मुशीरुल हसन, एम.ए. अंसारी, उद्धृत कार्य, पृ. 206.

अब्दुल्लाह मंसूर

भारत विभाजन : मुस्लिम लीग बनाम मोमिन कॉन्फ्रेंस

पहले तो अशराफ बुद्धिजीवियों ने लोकतंत्र का विरोध किया, लेकिन जब बात नहीं बनी तो पसमांदा जातियों को भी कौम में जोड़ने की बात होने लगी। एक ऐतिहासिक वृत्तांत

भारत में मुस्लिम समुदाय का इतिहास जटिल और बहुआयामी रहा है। मध्यकाल से लेकर आधुनिक काल तक, मुस्लिम समाज में विभिन्न वर्गों और जातियों के बीच सामाजिक और आर्थिक विभाजन देखने को मिला। अशराफ (उच्च वर्ग) मुसलमानों और पसमांदा (तथाकथित निम्न जाति) मुसलमानों के बीच एक स्पष्ट विभाजन रहा है। अशराफ मुसलमान, जो विदेशी मूल के थे, स्थानीय मुसलमानों को अकसर हेय दृष्टि से देखते थे। उन्होंने अपनी संस्कृति और भाषा को श्रेष्ठ मानते हुए स्थानीय संस्कृति को नीचा दिखाया। इस प्रकार, मुस्लिम समाज कभी एक समान इकाई नहीं रहा, बल्कि सामाजिक और आर्थिक आधार पर विभाजित रहा। मध्यकालीन भारत में मुस्लिम शासन के दौरान, सरकारी विभागों और उच्च पदों पर मुख्य रूप से विदेशी मूल के मुसलमानों का ही वर्चस्व था। स्थानीय मुसलमानों को इन पदों से दूर रखा जाता था। यहाँ तक कि जो हिंदू उच्च जाति के लोग मुसलमान बने थे, उन्हें भी शुरुआत में शासन में जगह नहीं मिली। आधुनिक भारत में अंग्रेजों ने भारत में धार्मिक पहचान को बढ़ावा देने के लिए कई रणनीतियाँ अपनाईं। 1857 की क्रांति के बाद उन्होंने अपनी सत्ता को मजबूत करने के लिए धर्म का इस्तेमाल किया। उन्होंने हिंदू और मुस्लिम समुदायों के बीच मतभेद पैदा करने की कोशिश की। अंग्रेजों ने मुस्लिम समाज की धार्मिक पहचान को प्राथमिक पहचान के रूप में बढ़ावा दिया. उन्होंने जाति, वर्ग और भाषा जैसे अन्य महत्वपूर्ण पहचानों को कमजोर करने का प्रयास किया।

1906 में ढाका में मोहम्मडन एजुकेशनल कॉन्फ्रेंस के वार्षिक सत्र के समापन पर, भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न प्रांतों से आए लगभग 3,000 प्रमुख मुस्लिम प्रतिनिधियों ने ढाका के नवाब सलीमुल्लाह खान (नवाब सर ख्वाजा सलीमुल्लाह बहादुर, 1871-1915) के निमंत्रण पर एक विशेष बैठक में भाग लिया। इस बैठक में यह निर्णय लिया गया कि अशराफ मुसलमानों की राजनैतिक नेतृत्व और मार्गदर्शन के लिए एक राजनैतिक संगठन की स्थापना की जाए। हालांकि, सर सैयद अहमद खान ने मुसलमानों को राजनीति से दूर रहने की सलाह दी थी। लेकिन उनके एक प्रमुख अनुयायी, प्रशंसक और अलीगढ़ आंदोलन के एक महत्वपूर्ण सदस्य नवाब वकार-उल-मुल्क और इन तीन हजार प्रतिनिधियों की सहमति से 'ऑल इंडिया मुस्लिम लीग' का गठन हुआ। इसके पहले अध्यक्ष शिया इस्माइली संप्रदाय के 48वें इमाम, आगा खान (सर सुल्तान मोहम्मद शाह बिन इमाम आगा अली शाह, 1877-1957) बने। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य अशराफ मुसलमानों के नागरिक अधिकारों को स्पष्ट करना और उनकी रक्षा करना था। लेकिन बाद में इसने 'द्विराष्ट्र सिद्धांत' के आधार पर देश विभाजन का समर्थन किया। नवाब वकार-उल-मुल्क (1841-1917) ने इस विचारधारा को आगे बढ़ाया।[1] अंग्रेजों ने मुस्लिम लीग के गठन में भी मदद की और मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र की मांग का समर्थन किया। उनका उद्देश्य हिंदू-मुस्लिम एकता को रोकना और राष्ट्रवादी आंदोलन को कमजोर करना था। इस तरह अंग्रेजों ने धार्मिक आधार पर भारतीय समाज को बांटने की कोशिश की, जिसके परिणामस्वरूप मुसलमानों में अलगाववादी प्रवृत्ति पैदा हुई।

लीग का मानना था कि मुसलमान एक अलग 'राष्ट्र' हैं और उन्हें एक विशिष्ट राजनैतिक

इकाई के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए। वे चाहते थे कि मुसलमानों को हिंदुओं के साथ समान प्रतिनिधित्व मिले, चाहे वे संख्या में कम ही क्यों न हों। लीग ने मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचक मंडल और सरकार में आरक्षित पदों की माँग की। उनका मानना था कि केवल मुसलमान ही मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। लीग समाज को धार्मिक समुदायों के समूह के रूप में देखती थी, न कि व्यक्तियों के रूप में। 1909 का मार्ले-मिंटो सुधार इस संदर्भ में महत्वपूर्ण था, जिसने मुसलमानों को एक अलग राजनैतिक समूह के रूप में मान्यता दी। इस कानून ने भारत की राजनीति में धर्म के आधार पर बंटवारे को बढ़ावा दिय। 1909 का अधिनियम एक महत्त्वपूर्ण कानून था जिसने भारत में मुसलमानों की राजनैतिक स्थिति को बदल दिया। इस कानून ने मुसलमानों को एक अलग राजनैतिक समूह के रूप में मान्यता दी. इसमें सिर्फ मुसलमान ही नहीं, बल्कि उनके अंदर के विभिन्न समुदाय और उपसमुदाय भी शामिल थे। साथ ही, अलग-अलग भाषा और जातियों के लोग भी इसमें आते थे। इस कानून के बाद, मुस्लिम उम्मीदवारों को चुनाव जीतने के लिए अपने धार्मिक समुदाय के हितों पर ज्यादा ध्यान देना पड़ा। भले ही वे पूरे देश की राजनीति में बड़ी भूमिका निभाना चाहते थे, लेकिन उन्हें अपने समुदाय के मुद्दों पर ही ज्यादा बात करनी पड़ती थी। दूसरी तरफ, हिंदू उम्मीदवारों को अब अपने क्षेत्र के मुसलमानों के बारे में सोचने की जरूरत नहीं रही। वे सिर्फ अपने समुदाय के वोटों पर ध्यान दे सकते थे, हालांकि कानून के हिसाब से एक मुसलमान किसी भी सीट से चुनाव लड़ सकता था, लेकिन ऐसा करने पर उसे मुस्लिम वोट नहीं मिलते। क्योंकि मुस्लिम वोटर सिर्फ मुस्लिम उम्मीदवार को ही वोट दे सकते थे। इस व्यवस्था में, अलग-अलग धार्मिक समूह और उपसमूह थे। इसलिए कोई भी उम्मीदवार अपने धर्म के लोगों के समर्थन के बिना चुनाव लड़ने का जोखिम नहीं उठाना चाहता था। इस तरह, 1909 का यह कानून भारत की राजनीति में धर्म के आधार पर बँटवारे को बढ़ावा देने वाला साबित हुआ।[2]

अशराफ उलेमा वर्ग ने लोकतंत्र को यह कह कर नकार दिया कि लोकतंत्र को एक पश्चिमी आयात है, जो इस्लामी सिद्धांतों के अनुरूप नहीं था। उनका मानना था कि राजनीति का एकमात्र उद्देश्य धर्म के महान उद्देश्यों की सेवा करना है, जिसमें विश्वासियों और ईश्वर के बीच संबंध स्थापित करना शामिल है, और इसलिए धार्मिक मानदंडों को कभी भी राजनैतिक उद्देश्यों के अधीन नहीं किया जाना चाहिए। वही आधुनिक बुद्धिजीवी जैसे सर सैयद, इकबाल भी लोकतंत्र के खिलाफ थे। अशराफ बुद्धिजीवी इस बात से चिंतित थे कि अगर भारत में लोकतंत्र आया, तो बहुसंख्यक ही शासन करेगा। सर सैयद ने कांग्रेस के गठन तथा इसकी राजनैतिक गतिविधियों का सख्त विरोध किया। जब कांग्रेस ने सरकार में भारतीय प्रतिनिधित्व का सवाल उठाया तो मुस्लिम अभिजात्य वर्ग (उच्च वर्ग) के प्रतिनिधि के रूप में सर सैयद ने इस माँग के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि चुनाव होने पर हिंदू मतदाताओं की संख्या मुसलमानों की तुलना में अत्यधिक होगी और जाहिर है हिंदू प्रार्थियों को अधिक समर्थन मिलेगा। उन्होंने प्रतिनिधि व्यवस्था का यह कहकर विरोध किया कि सम्पत्ति, धन तथा शिक्षा में मुसलमान हिंदुओं के बराबर नहीं थे इसलिए उन्हें प्रतिनिधित्व भी बराबर नहीं मिलेगा।... मुसलमान इस तथ्य को नहीं भूल पा रहे थे कि अपनी शारीरिक शक्ति के बल पर तथा मुसलमान एक श्रेष्ठ जाति हैं, यह डर बैठाकर वे हिंदुओं पर शासन कर चुके थे। जिन लोगों पर वह शासन कर चुके थे, अब उन्हीं के हाथों में शासन व अधिकार हों, यह वे मान नहीं पा रहे थे।[3]

'मुस्लिम अभिजात्य वर्ग' (अशराफ) ने अंग्रेजों पर इस बात के लिए दबाव डाला कि वे उनके प्रभाव और मान-सम्मान का ध्यान रखें। 'यूपी के मुसलमानों के प्रतिनिधित्व' के नाम पर उन्होंने एक अपील की और सरकार से कहा कि देश के जागीरदार होने के नाते प्रांतों पर उनका अभी भी प्रभाव था, इसलिए संख्यागत बहुमत से वे अधिक महत्त्वपूर्ण थे। इस वजह से पारिवारिक वंशावली को अहमियत दी जानी चाहिए। अपने इलाहाबाद के सम्बोधन में इकबाल ने इसी भावना को अभिव्यक्ति दी, जब उन्होंने कहा कि इस देश में पाश्चात्य लोकतंत्र नहीं चल सकता। उनकी शायरी में भी लोकतंत्र विरोधी विचार स्पष्ट हैं (जैसे "जम्हूरियत एक तर्ज-ए-हुकूमत है कि जिसमें बंदों को गिना करते हैं, तौला नहीं करते")। यह मुस्लिम अभिजात्य वर्ग (उच्च वर्ग) की उस मानसिकता को दर्शाता है, जिसमें आम आदमी के साथ मेल-जोल रखकर यह वर्ग अपनी सामाजिक मान-मर्यादा खोना नहीं चाहता था। वे अपनी श्रेष्ठता सुरक्षित और बरकरार रखना चाहते थे।[4] पहले तो

पसमांदा आंदोलन की शुरुआत मुख्य तौर पर पिछली सदी के दूसरे दशक में शुरू हुआ. तब इसे मोमिन आंदोलन के नाम से जाना गया. 1939 में मोमिन कांफ्रेंस की एक तस्वीर

अशराफ बुद्धिजीवियों ने लोकतंत्र का विरोध किया, लेकिन जब यह संभव नहीं हुआ, तो पसमांदा जातियों को भी कौम में जोड़ने की बात होने लगी ताकि हिंदू समाज की तुलना में अपने समाज की संख्या बढ़ा कर दिखा सकें। यहाँ भी अशराफों ने पसमांदा जातियों को संख्या से अधिक कुछ नहीं समझा।

डेविड पेज की किताब 'प्रील्यूड टु पार्टीशन' है। इस किताब में विशेष रूप से 1920 के दशक में होने वाली घटनाओं पर विशेष ध्यान दिया गया है। डेविड पेज ने इस सवाल का जवाब खोजने की कोशिश की है कि आखिर क्या कारण था कि हिंदू और मुसलमान जो सदियों से एक साथ शांतिपूर्वक रह रहे थे, वे एक दूसरे के दुश्मन हो गए, और इन मतभेदों और नफरतों ने सांप्रदायिकता को जन्म दिया। इन कारणों की शुरुआत वह उन सुधारों से करता है जो ब्रिटिश सरकार ने भारत में शुरू किए थे। उदाहरण के लिए, 1880 में जब स्थानीय स्व-जिला स्तर और नगरपालिका के चुनाव शुरू हुए, तो इसने संख्या के महत्व को हिंदू और मुसलमान दोनों पर स्पष्ट कर दिया कि जिस समुदाय की संख्या अधिक होगी वह चुनाव में जीतेगा। 1909 के सुधारों का संबंध प्रांतीय चुनाव से था, इसका एक प्रभाव यह हुआ कि लोगों के लिए राष्ट्रीय मुद्दों से ज्यादा स्थानीय मुद्दों का महत्व हो गया। जब 1919 में प्रांतों में चुनाव कराके वहाँ भारतीय मंत्रियों को कुछ अधिकार दिए गए तो अब राजनीति का स्वरूप प्रांतीय हो गया। जब 1935 के अधिनियम में सिंध को भी अलग कहा गया, तो इसने प्रांतीय राजनीति के महत्व को और बढ़ा दिया। इसका परिणाम क्या हुआ। ब्रिटिश सरकार का इसके माध्यम से यह उद्देश्य था कि राष्ट्रीय दलों को और विशेष रूप से कांग्रेस को तोड़ा जाए। क्योंकि इन सुधारों ने प्रांतीय नेताओं को जन्म दिया और उनके महत्व को बढ़ाया जबकि राष्ट्रीय नेताओं का महत्व कम हुआ। इसकी वजह से उत्तरी भारत में पुराने मुस्लिम परिवारों का जो प्रभाव और रसूख था और उनका नेतृत्व स्थापित था, वह इस प्रक्रिया से टूट गया, इसलिए अपना नेतृत्व खो जाने और प्रभाव समाप्त होने का डर उनके मन में बैठ गया, इस कारण से उन्होंने अपने नेतृत्व के स्थिरीकरण के लिए धर्म और भाषा का उपयोग किया ताकि इन प्रतीकों के माध्यम से आम मुसलमानों को एकत्र कर सकें और अपना नेतृत्व बनाए रख सकें।लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि जब 1937 के चुनाव में कांग्रेस को सफलता मिली, और उसने प्रांतों में अपनी सरकार स्थापित कर ली तो इसने कांग्रेस की स्थिति को मजबूत बना दिया। मुस्लिम लीग ने भी प्रांतीय क्षेत्रों के महत्व और उनकी समस्याओं को समझते हुए कमजोर केंद्र और शक्तिशाली प्रांतों की माँग की। मुस्लिम लीग को इसलिए उस समय सफलता मिली जब उसने प्रांतों की समस्याओं को राष्ट्रीय मुद्दों पर प्राथमिकता दी। इसलिए देखा जाए तो राजनीति ने जो प्रांतीयता का रूप धारण किया, उसने अंतत: भारत के विभाजन के मार्ग निर्धारित किए।डेविड पेज ने इस पर भी प्रकाश डाला है कि ब्रिटिश सरकार ने किन तरीकों को अपनाकर, भारत के अमीरों, जमींदारों और प्रभावशाली व्यक्तियों को अपने नियंत्रण में रखा। उदाहरण के लिए, सरकारी नौकरियां इस अवधि में उन अमीरों और जमींदारों के बेटों को दी जाती थीं जो सरकार के वफादार थे। 1896 में यूपी में 161 डिप्टी कलेक्टर थे, उनमें से केवल 15 इंटर पास थे, 9 के पास डिग्री थी, बाकी इससे मुक्त थे। 225 तहसीलदारों में 4 इंटर पास थे और केवल एक के पास डिग्री थी। उच्च पदों के लिए नामांकन होता था।[5]

1937 तक सांप्रदायिकता ने भारत की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाई थी। इस अवधि में जो प्रांतीय चुनाव हुए, उनमें भी हिंदू-मुस्लिम मुद्दा नहीं उठाया गया। प्रांतीय राजनीति इन नफरतों से दूर थी। लेकिन जब 1937 में कांग्रेस ने चुनाव में जीत के बाद मंत्रिमंडल बनाए, तो उस समय भी जिन्ना कांग्रेस से समझौता करने को तैयार थे। मगर नेहरू के अनुसार भारत में केवल कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार ही दो पक्ष थे। इस पर और हुआ कि जब कांग्रेस ने मुसलमानों से संपर्क का अभियान शुरू किया तो जिन्ना ने इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त की, क्योंकि इस अभियान का उद्देश्य मुस्लिम लीग के नेतृत्व को कमजोर करना था। इन परिस्थितियों में जिन्ना ने मुस्लिम लीग का पुनर्गठन किया और कांग्रेस तथा उसके मंत्रिमंडलों के खिलाफ अभियान चलाया। लेकिन 1939 तक मुस्लिम लीग भारत के सभी मुसलमानों में लोकप्रिय नहीं थी, और न ही उस समय तक मुसलमानों को एक अलग राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत किया गया था।1939 में जब कांग्रेस ने मंत्रिमंडलों से इस्तीफा दिया तो जिन्ना ने इस अवसर का पूरी तरह से उपयोग किया और "यौम-ए-नजात" (मुक्ति दिवस) मनाकर मुस्लिम लीग के लिए रास्ता साफ किया।

1940 में लाहौर प्रस्ताव पारित इसमें जिन्ना ने कहाँ 'मैं अपने मुस्लिम भाइयों को आश्वस्त करना चाहता हूँ कि... भारत की जमीन का बँटवारा होने पर जनसंख्या की अदला-बदली पर, जहाँ तक सम्भव हो, विचार करना होगा। दूसरे, मुस्लिम अल्पसंख्यकों को गलत भरमाया जाता है कि भारत के विभाजन या विभाजन की किसी भी योजना में उनकी स्थिति बदतर हो जाएगी और उन्हें अधर में छोड़ दिया जाएगा। मैं समझा सकता हूँ कि मुसलमान, चाहे जहाँ वे अल्पसंख्यक हों, अखण्ड भारत या एक केंद्र सरकार के तहत अपनी स्थिति को बेहतर नहीं कर सकते। चाहे कुछ भी हो जाए, वे अल्पसंख्यक ही बने रहेंगे। वे उन सभी सुरक्षा उपायों की माँग कर सकते हैं जो कोई भी सभ्य सरकार उसकी अधिकतम सीमा तक जानती है। लेकिन भारत के विभाजन के रास्ते में आकर वे किसी भी तरह अपनी स्थिति बेहतर नहीं कर सकते हैं। दूसरी ओर, वे बाधा के अपने रवैये से, मुस्लिम मातृभूमि और 6 करोड़ मुसलमानों को एक सरकार के अधीन ले आएँगे, जहाँ वे हमेशा के लिए अल्पसंख्यक से अधिक कुछ नहीं रहेंगे... हिंदू भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यकों के लिए सवाल यह है कि क्या 9 करोड़ के पूरे मुस्लिम भारत को हिंदू-बहुल राज के अधीन किया जाना चाहिए या क्या उन क्षेत्रों में रहने वाले कम से कम 6 करोड़ मुसलमानों के पास अपनी मातृभूमि होनी चाहिए और इस तरह उन्हें अपने आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक विकास और राजनैतिक जीवन का अवसर अपनी प्रतिभा अनुसार मिले और वे अपने भविष्य के भाग्य को आकार दे सकें, साथ ही हिंदुओं और अन्य लोगों को भी

ऐसा करने की अनुमति दें। मुस्लिम मातृभूमि में हिंदुओं और अन्य अल्पसंख्यकों की भी ऐसी ही स्थिति होगी।'[6]

इस प्रकार मुस्लिम लीग ने भारतीय मुसलमानों को एक अलग 'राष्ट्र' के रूप में प्रस्तुत किया क्योंकि वह उन्हें एक विशिष्ट राजनैतिक इकाई के रूप में मान्यता दिलाना चाहती थी। लीग का मानना था कि मुसलमानों की धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान हिंदुओं से अलग है और एक हिंदू बहुल भारत में उनकी रक्षा नहीं हो सकती। लीग मुसलमानों के लिए समान राजनैतिक प्रतिनिधित्व और 'वास्तविक शक्ति' चाहती थी। उसे डर था कि स्वतंत्र भारत में हिंदुओं का वर्चस्व होगा और मुसलमानों के हित सुरक्षित नहीं रहेंगे। लीग ने दावा किया कि मुसलमान और हिंदू दो अलग-अलग राष्ट्र हैं जिनके रीति-रिवाज, परंपराएं और जीवन शैली अलग हैं। उसका मानना था कि एक अलग मुस्लिम राज्य में ही इस्लामी कानून और मूल्यों को सही तरीके से लागू किया जा सकता है। लीग ने मुसलमानों को अलग राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत करके अंग्रेजों से अधिक समर्थन और रियायतें पाने की कोशिश की।

मोमिन कॉन्फ्रेंस

बुनकर वंश के मुसलमानों को बिरादरियों में सबसे निचले स्तर का माना जाता था और कई क्षेत्रों में उनसे जबरन श्रम लिया जाता था। उदाहरण के लिए, गया और शाहाबाद के जमींदार उन्हें पारंपरिक कुली के रूप में नियुक्त करते थे। उनके करघों पर जमींदारों द्वारा एक अवैध कर, कथियारी, लगाया जाता था, और एक रॉयल्टी मासर्फा के रूप में करघे के मासिक शुद्ध लाभ पर लगाई जाती थी। कई गांवों में जमींदार एक अवैध घर कर वसूलते थे जिसे घर-द्वारी कहा जाता था। उर्दू और बोलचाल की भाषाओं में जुलाहों के खिलाफ कहानियाँ और कहावतें यूपी, बंगाल और बिहार में आम थीं और इन्हें शरीफ द्वारा उनके उत्पीड़न की पुष्टि के रूप में व्यापक रूप से देखा जाता था।[7] यहाँ एक दिलचस्प मुकदमे का जिक्र करना जरूरी है। गोरखपुर के जमींदार और अशराफ मुसलमान पसमांदा (अजलाफ/

बुनकर वंश के मुसलमानों को बिरादरियों में सबसे निचले स्तर का माना जाता था और कई क्षेत्रों में उनसे जबरन श्रम लिया जाता था। उदाहरण के लिए, गया और शाहाबाद के जमींदार उन्हें पारंपरिक कुली के रूप में नियुक्त करते थे। उनके करघों पर जमींदारों द्वारा एक अवैध कर, कथियारी, लगाया जाता था, और एक रॉयल्टी मासर्फा के रूप में करघे के मासिक शुद्ध लाभ पर लगाई जाती थी। कई गांवों में जमींदार एक अवैध घर कर वसूलते थे जिसे घर-द्वारी कहा जाता था। उर्दू और बोलचाल की भाषाओं में जुलाहों के खिलाफ कहानियाँ और कहावतें यूपी, बंगाल और बिहार में आम थीं और इन्हें शरीफ द्वारा उनके उत्पीड़न की पुष्टि के रूप में व्यापक रूप से देखा जाता था

अरजाल) मुसलमानों से "रेजालत टैक्स" वसूल करते थे, क्योंकि वे इन समुदायों को "रजील" या निम्न जाति का मानते थे। जब नियामतुल्लाह अंसारी ने इस अन्यायपूर्ण कर का विरोध किया, तो जमींदारों ने पहले धमकियों का सहारा लिया और फिर काजी तसद्दुक हुसैन ने गोरखपुर मुंसिफी कोर्ट में एक मुकदमा दायर किया। उन्होंने दावा किया कि नियामतुल्लाह ने कई वर्षों से कर नहीं चुकाया है, अंसारी समुदाय "रजील/नीच (दलित) जाति" है, और अशराफ और जमींदार होने के नाते उन्हें यह कर वसूलने का अधिकार है। नियामतुल्लाह अंसारी ने इस मुकदमे का दृढ़ता से विरोध किया और 22 मई 1939 को, मुंसिफ ने काजी का मुकदमा खारिज कर दिया, यह कहते हुए कि "जोलाहे रजील नहीं हैं" काजी ने इस फैसले के खिलाफ गोरखपुर सेशन कोर्ट और फिर इलाहाबाद हाई कोर्ट में अपील की। हाई कोर्ट में यह केस "क्या जोलाहा रजील है" के शीर्षक से चला, जहां दोनों पक्षों ने अपने-अपने तर्क प्रस्तुत किए. काजी पक्ष के तर्कों को बाद में "जोलाहनामा" नामक पुस्तक में प्रकाशित किया गया, जबकि नियामतुल्लाह के पक्ष के तर्कों को "काजीनामा" के रूप में प्रकाशित किया गया। इस मुकदमे की कार्यवाही "मोमिन गजट" समाचार पत्र और अन्य प्रकाशनों में नियमित रूप से प्रकाशित होती रही. काजी तसद्दुक हुसैन के साथ उनके पुत्र काजी तलमंद हुसैन भी इस मुकदमे में सक्रिय थे, जो उस्मानिया विश्वविद्यालय के अनुवाद विभाग में एक प्रतिष्ठित सदस्य थे. उन्होंने जोलाहों को "रजील" साबित करने के लिए हर संभव प्रयास किया, लेकिन अंत में काजी पक्ष को हार का सामना करना पड़ा और न्यायालय ने जोलाहों के पक्ष में फैसला सुनाया. यह ऐतिहासिक मुकदमा भारतीय मुस्लिम समाज में जातिगत भेदभाव और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है, जो गोरखपुर की निचली अदालत से शुरू होकर उच्च न्यायालय तक पहुँचा।[8]

भारत में लोकतंत्र और सामाजिक चेतना के प्रभाव में 1910 के बाद मुस्लिम समाज में जाति आधारित संगठन बनने शुरू हुए। उन्नीसवीं सदी के आखिर से उत्तर भारत के कई जुलाहों ने अपनी पहचान बदलने की कोशिश शुरू कर दी। उन्होंने अपने पुराने हिंदू नाम और जुलाहा शब्द का इस्तेमाल छोड़ दिया। इसके बजाय, उन्होंने नए नाम अपनाए जैसे 'मोमिन' (जिसका मतलब है ईमानदार या इज्जतदार व्यक्ति), 'अंसारी' (एक अरब पूर्वज का नाम जिससे वे अपना रिश्ता जोड़ते थे), या 'मोमिन अंसार' या 'शेख मोमिन'। हालांकि मोमिन शब्द शायद उन्नीसवीं सदी से पहले भी कुछ जगहों पर चलन में था, लेकिन 1911 की जनगणना रिपोर्ट में यह नाम बदलने का रुझान साफ दिखाई दिया। इस नाम बदलने के पीछे दो मुख्य मकसद थे - ऊँची जातियों के बराबर दर्जा पाना और एक शुद्ध इस्लामी पहचान बनाना। इस तरह जुलाहा समुदाय ने अपनी सामाजिक हैसियत

सुधारने और धार्मिक पहचान मजबूत करने की कोशिश की।[9] मोमिन समुदाय को एक सामाजिक-राजनैतिक आंदोलन के रूप में संगठित करने के प्रयास कलकत्ता में 1914 में फलाह उल-मोमिनीन (विश्वासियों की भलाई) के गठन के माध्यम से शुरू हुए, इसके बाद दिसंबर 1923 में एक और संघ कलकत्ता जमायत-उल-मोमिनीन का गठन हुआ। यह संगठन ऑल इंडिया जमायत-उल-मोमिनीन या ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस का पूर्ववर्ती था, जिसे दिसंबर 1926 में सासाराम के हाजी मोहम्मद फर्खुंद अली के नेतृत्व में स्थापित किया गया था। इस संगठन के प्रारंभिक उद्देश्य बुनकरों के पारंपरिक शिल्प को पुनर्जीवित करना, आत्म-सम्मान, धार्मिक आचरण और आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ावा देना थे। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए समुदाय का पुनर्गठन और एकता आवश्यक थी। यह संगठन जुलाहों के सामाजिक उत्थान और राजनैतिक अभिव्यक्ति के लिए एक प्रभावी निकाय के रूप में कार्य करता था और एक संगठित ट्रेड यूनियन के रूप में भी। अप्रैल 1928 में कलकत्ता में अब्दुल मजीद-अल-हरीरी बनारस की अध्यक्षता में पहले वार्षिक सत्र में, नेताओं ने अपने पतन के लिए अंग्रेजी-शिक्षित वर्ग को दोषी ठहराया और मदरसों की स्थापना के माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की वकालत की। यह भी अपेक्षा की गई थी कि समुदाय के सरदार और उलेमा भव्य शादियों और अन्य कुरीतियों को कम करने जैसे सामाजिक सुधारों के लिए काम करेंगे। वास्तव में, इस राष्ट्रीय स्तर के निकाय के गठन से ठीक पहले, यूपी और बिहार में कई स्थानीय जमायतें 'अंसारी' समुदाय की एकता और सुधार के लिए सक्रिय थीं।[10] यह संगठन कोलकाता में ही क्यों बना, इसे समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि कोलकाता भारत की आर्थिक राजधानी थी। वहाँ पर प्रवासी श्रमिकों की बड़ी संख्या थी, जिनमें अंसारी समाज के लोग अधिक थे। एक साथ रहते हुए इनकी सामाजिक और सियासी जागरूकता बढ़ी। भारत में बढ़ रहे लोकतांत्रिक प्रभाव ने भी इनकी जागरूकता और एकजुटता को बढ़ावा दिया।

1935 के भारत सरकार अधिनियम के बाद, 1937 में प्रांतीय चुनाव हुए। उस समय सांप्रदायिक राजनीति अपने चरम पर थी। दबे-कुचले मुस्लिम समुदायों के प्रतिनिधि के रूप में, ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस की भूमिका राजनैतिक चर्चा में बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई। ऑल इंडिया मुस्लिम लीग को उच्च वर्ग के मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था के रूप में देखा गया, जिससे ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस को अपनी पहचान बचाने के लिए (मुस्लिम लीग से) दूरी बनाए रखनी पड़ी। इन परिस्थितियों में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को एक राजनैतिक विकल्प के रूप में देखा गया, जिसके साथ कॉन्फ्रेंस जुड़ सकती थी। जवाहरलाल नेहरू ने देखा कि 'यूपी और बिहार में मोमिन (मुख्य रूप से बुनकर वर्ग) और मुस्लिम किसान कांग्रेस के पक्ष में थे क्योंकि वे लीग को सामंती जमींदारों का उच्च वर्गीय संगठन मानते थे'। जवाहरलाल नेहरू ने 1937 के चुनाव की पूर्व संध्या पर बिहार जमायत-उल-मोमिनीन को आश्वासन दिया था कि 'हम मोमिन समुदाय के महत्व से पूरी तरह अवगत हैं और हम इसे मदद करने के लिए अपनी शक्ति में सब कुछ खुशी से करेंगे'। इसलिए चुनावों के तुरंत बाद, बिहार जमायत-उल-मोमिनीन की कार्यकारी समिति ने बिहार कांग्रेस कैबिनेट में मोमिनों के प्रतिनिधित्व की माँग की, विशेष रूप से कपड़ा और अन्य कुटीर उद्योगों के विभाग में। इस बीच, मुस्लिम लीग ने भी कांग्रेस के प्रयास की आलोचना की कि वह सामूहिक साक्षरता और मुस्लिम संपर्क अभियानों के माध्यम से मुस्लिम समुदाय को विभाजित कर रही है। मोमिनों के उत्थान के लिए 10,000 रुपये की अनुदान राशि का भी विरोध किया गया। मुस्लिम लीग ने बिहार विधान सभा के मोमिन सदस्यों से कहा कि अगर वे मुस्लिम लीग में शामिल होने के लिए तैयार नहीं हैं तो वे इस्तीफा दे दें। मोमिन संगठनों ने मुस्लिम लीग से खुद को अलग करके जवाब दिया और कांग्रेस से संबद्ध एक अलग पार्टी बनाने की इच्छा दिखाई।

1937 के चुनावों के बाद कांग्रेस पार्टी द्वारा शुरू किए गए मुस्लिम जन संपर्क अभियान ने संयुक्त प्रांत और बिहार के कुछ हिस्सों में कांग्रेस के पक्ष में अंसारी समुदाय को संगठित किया। संयुक्त प्रांत में गाजीपुर, मिर्जापुर और अन्य आसपास के क्षेत्रों के अंसारियों को मोमिन कॉन्फ्रेंस के महत्त्वपूर्ण और अनुकूल प्रभाव के तहत बड़ी संख्या में मुस्लिम लीग से दूर कर दिया गया। इस समय तक भारतीय राजनैतिक परिदृश्य कांग्रेस और विरोधी कांग्रेस राजनैतिक ताकतों (जिसमें मुस्लिम लीग शामिल थी) की द्विध्रुवीय दुनिया में विभाजित हो गया था। मुस्लिम लीग ने भारतीय मुसलमानों के 'एकमात्र प्रवक्ता' होने का दावा करना शुरू कर दिया था, जिसे कांग्रेस ने विभिन्न मुस्लिम समूहों और संगठनों की तटस्थता या समर्थन का दावा करके खारिज कर दिया। मोहम्मद अली जिन्ना के भारतीय मुसलमानों के आधिकारिक और प्रतिनिधि संगठन के रूप में मुस्लिम लीग के दावे के जवाब में, जवाहरलाल नेहरू ने 'जमायत-उल-उलेमा, ऑल इंडिया शिया कॉन्फ्रेंस, मजलिस-ए-अहरार, ऑल इंडिया

1935 के भारत सरकार अधिनियम के बाद, 1937 में प्रांतीय चुनाव हुए। उस समय सांप्रदायिक राजनीति अपने चरम पर थी। दबे-कुचले मुस्लिम समुदायों के प्रतिनिधि के रूप में, ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस की भूमिका राजनैतिक चर्चा में बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई। ऑल इंडिया मुस्लिम लीग को उच्च वर्ग के मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था के रूप में देखा गया, जिससे ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस को अपनी पहचान बचाने के लिए दूरी बनाए रखनी पड़ी। इन परिस्थितियों में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को एक राजनैतिक विकल्प के रूप में देखा गया, जिसके साथ कॉन्फ्रेंस जुड़ सकती थी

मोमिन कॉन्फ्रेंस आदि' जैसे मुस्लिम संगठनों का उल्लेख किया, जो कांग्रेस के समान राजनैतिक मंच साझा करते थे। एक अन्य कांग्रेस नेता राजेंद्र प्रसाद ने मुस्लिम लीग के दावे को खारिज कर दिया क्योंकि उनका मानना था कि मोमिन मुसलमानों के बहुमत का एक बहुत बड़ा हिस्सा बनाते हैं, जो अपनी अलग जमायत में संगठित हैं और जिन्होंने खुले तौर पर और बार-बार मुस्लिम लीग के दावों को खारिज किया है। पॉल ब्रास ने देखा है कि 'मुस्लिम लीग, जो अभिजात मुस्लिम नेताओं द्वारा संचालित थी, का मोमिनों पर कोई प्रभाव नहीं था, जबकि कांग्रेस, अपने गांधीवादी चरखा प्रतीक के साथ और स्वदेशी हस्तशिल्प के समर्थन के वादों के साथ, मुस्लिम हथकरघा बुनकरों के आर्थिक हितों को आकर्षित करती थी।' लेकिन गांधीवादी कार्यक्रमों से अधिक, कांग्रेस की अपील जिसने कम से कम सतही तौर पर अभिजात्य प्रभुत्व (अधिकार या नियंत्रण) को समाप्त करके सभी वर्गों को शामिल किया, मोमिनों के लिए भी अधिक आकर्षक साबित हुई। पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे भेदभाव और निम्न दर्जे की सोच ने समाज पर ऐसा गहरा असर डाला है कि इसने लोगों की राजनैतिक पसंद को भी प्रभावित किया है। यह असर गांधीवादी विचारों से जुड़ाव से भी ज्यादा ताकतवर साबित हो सकता है।[11]

मोमिन बनाम मुस्लिम

'मुस्लिम' और 'मोमिन' शब्द वास्तव में अलग-अलग संदर्भों में इस्तेमाल किए जाते थे और आज भी किए जाते हैं। 'मुस्लिम' एक व्यापक शब्द है जो सभी इस्लाम अनुयायियों के लिए प्रयोग किया जाता है। यह शब्द विशेष रूप से अशराफ (उच्च जाति) मुसलमानों के संदर्भ में अधिक प्रयोग किया जाता था। 'मोमिन' शब्द का प्रयोग विशेष रूप से पिछड़े वर्ग के मुसलमानों के लिए किया जाता था, जैसे जोलाहा (बुनकर), धुनिया, और अन्य पिछड़ी जातियां। आजादी से पहले और बाद में भी, 'मुस्लिम' शब्द का प्रयोग अक्सर अशराफ जातियों के संदर्भ में किया जाता है, जबकि 'मोमिन' शब्द अजलाफ और अरजल (पिछड़े और दलित) मुसलमानों

'मुस्लिम' और 'मोमिन' शब्द वास्तव में अलग-अलग संदर्भों में इस्तेमाल किए जाते थे और आज भी किए जाते हैं। 'मुस्लिम' एक व्यापक शब्द है जो सभी इस्लाम अनुयायियों के लिए प्रयोग किया जाता है। यह शब्द विशेष रूप से अशराफ मुसलमानों के संदर्भ में अधिक प्रयोग किया जाता था। 'मोमिन' शब्द का प्रयोग विशेष रूप से पिछड़े वर्ग के मुसलमानों के लिए किया जाता था, जैसे जोलाहा धुनिया, और अन्य पिछड़ी जातियां। आजादी से पहले और बाद में भी, 'मुस्लिम' शब्द का प्रयोग अक्सर अशराफ जातियों के संदर्भ में किया जाता है, जबकि 'मोमिन' शब्द अजलाफ और अरजल मुसलमानों के लिए प्रयोग किया जाता है

के लिए प्रयोग किया जाता है। यह विभाजन मुस्लिम समाज में मौजूद जातिगत भेदभाव को दर्शाता है, जहाँ अशराफ जातियाँ (सैयद, शेख, मुगल, पठान) अपने को उच्च मानती थीं, जबकि अन्य जातियों को निम्न माना जाता था।

मोमिन कॉन्फ्रेंस 1940 के दशक सबसे मुखर होकर मुस्लिम लीग के खिलाफ खड़ी हुई। मौलाना अली हुसैन (15 अप्रैल 1890 - 6 दिसंबर 1953) की शुरुआत से यह कोशिश रही कि बुनकरों के अलावा अन्य पसमांदा जातियों को भी जागरूक, सक्रिय और संगठित किया जाए। बहुत लोग तो उन्हें 'कमली बाबा' के रूप में जानते-पहचानते थे। उनकी तकरीरें आम-फहम जुबान में निरक्षर लोगों के समझने लायक भी होती थीं संगठन में आसिम बिहारी खुद को हमेशा पीछे रखते और दूसरों को आगे बढ़ाते। उन्होंने अपने आप को कभी भी संगठन का अध्यक्ष नहीं बनाया, लोगों के बहुत आग्रह पर भी सिर्फ महासचिव तक खुद को सीमित रखा। आसिम बिहारी संगठन को राजनैतिक बाध्यता से दूर रखने का निर्णय लिया।[12] संगठन के अंदर बराबर इस बात की वकालत करते रहे कि मोमिन कान्फ्रेंस का स्वतन्त्र अस्तित्व और नजरिया कायम रहना चाहिए। उसे कांग्रेस की बी-टीम हरगिज नहीं बनना चाहिए। आसिम बिहारी ने यूपी, दिल्ली, पंजाब समेत कई राज्यों में संगठन को खड़ा किया और 1928 में कोलकाता में पहला आल इंडिया सम्मेलन आयोजित किया। आसिम बिहारी ने भारत छोड़ो आंदोलन और देश के बंटवारे के विरोध में सक्रिय भूमिका निभाई। मोमिन कॉन्फ्रेंस के एक और प्रमुख नेता अब्दुल कयूम अंसारी (1 जुलाई 1905 - 18 जनवरी 1973) ने मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था के खिलाफ एक नायक के रूप में उभर कर आंदोलन को और तेज किया। बताया जाता है कि 1938 में पटना की एक विधानसभा सीट पर चुनाव लड़ने की घटना ने अंसारी साहब को मोमिन कॉन्फ्रेंस के करीब ला दिया। मुस्लिम लीग के एक प्रांतीय नेता ने उनका आवेदन स्वीकार किया, लेकिन उनके बाहर निकलते ही ताने सुनाई पड़े, "अब जुलाहे भी एम.एल.ए. बनने का ख्वाब देखने लगे।" 1940 में मुस्लिम लीग ने लाहौर घोषणा के तहत पाकिस्तान बनाने का प्रस्ताव पास किया। 21 अप्रैल 1940 को, आलमगंज (जिसे बाद में मोमिनाबाद नाम दिया गया) पटना में, बिहार प्रांतीय मोमिन कॉन्फ्रेंस की एक बैठक लाहौर प्रस्ताव के खिलाफ आयोजित की गई..... मोमिनों का पूरा समुदाय विभाजन का पूरी तरह से विरोध करने का इरादा रखता है और चूंकि मुस्लिम लीग मोमिनों का प्रतिनिधित्व नहीं करती, इसलिए उसे उनके भाग्य का फैसला करने का अधिकार नहीं है। यह भी बताया गया कि यहाँ तक कि मुस्लिम बहुल प्रांतों में भी, मोमिनों और अन्य श्रमिक वर्ग के मुसलमानों को रजील के रूप में माना और व्यवहार किया जाता था। मोमिन कॉन्फ्रेंस के लिए, इस्लाम खतरे में है का नारा मोमिनों को संगठित होने से विचलित करने के लिए एक चाल के अलावा कुछ नहीं था। मोमिनों(अंसारी) को

सलाह दी गई थी कि वे उच्च जाति के नेतृत्व वाले पूंजीवादी और सत्ता की लालच में लगी मुस्लिम लीग से दूर रहें। मुजफ्फरपुर में, जिला मोमिन कॉन्फ्रेंस की एक बैठक में, सभी अंसारियों से मुस्लिम लीग का विरोध करने का आग्रह किया गया।

21 अप्रैल 1940 को पटना में कय्यूम अंसारी के भाषण ने मुस्लिम लीग को चौंका दिया क्योंकि श्री अंसारी ने पाकिस्तान के विचार को इस्लाम की हार घोषित किया। आसिम बिहारी ने कहा कि मोमिनों को कोई धार्मिक, भाषाई या सांस्कृतिक भय नहीं था। जहां भी वे रहते थे, वही उनका पाकिस्तान था। इसी तरह की प्रतिक्रिया ए.ए. मुहम्मद नूर से आई। उन्होंने पटना में ऑल इंडिया मोमिन यूथ कॉन्फ्रेंस की बैठक को संबोधित करते हुए कहा कि पाकिस्तान योजना गैर-इस्लामी और बिल्कुल अव्यावहारिक है।[13] ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस के उपाध्यक्ष अब्दुल कय्यूम अंसारी ने मोमिनों की सभाओं पर हो रहे लगातार हमलों से तंग आकर एक चेतावनी जारी की :हम मोमिन हालांकि बेहद शांतिप्रिय हैं, लेकिन गांधीवादी अहिंसा के सिद्धांत का पालन नहीं करते। हम भी एक आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत की परिपाटी में यकीन रखते हैं। हम मुस्लिम लीग के गुंडों द्वारा किए जा रहे हमलों, ऊटपटांग हरकतों के खिलाफ, हाथ बाँध कर खड़े नहीं रहेंगे। 1940 में दिल्ली में होने वाली आजाद मुस्लिम कॉन्फ्रेंस के लिए तैयारी कर रहे कार्यकर्ताओं पर भी हमले किए गए। मुस्लिम लीग ने उन देशप्रेमी कार्यकर्ताओं के पीटने के लिए, जो कॉन्फ्रेंस से जुड़े विभिन्न कार्य पूरे कर रहे थे, बाकायदा एक दल का गठन किया। इन हमलों में कई कार्यकर्ता गंभीर रूप से घायल हुए।[14]

आजाद मुस्लिम सम्मलेन 27 अप्रैल 1940 को दिल्ली में हुआ, ऑल इंडिया आजाद मुस्लिम कॉन्फ्रेंस का मुख्य उद्देश्य था, भारत की एकता और अखंडता को बनाए रखना, भारत के विभाजन का विरोध करना, मुस्लिम लीग द्वारा प्रस्तावित द्वि-राष्ट्र सिद्धांत का विरोध करना था। इस सम्मलेन में बहुत से संगठनों ने हिस्सा लिया जैसे ऑल इंडिया मजलिसे अहरार, खुदाई खदिमतगार, बंगाल कृषक प्रजा पार्टी, ऑल इंडिया मुस्लिम पार्लियामेंट्री बोर्ड, अंजुमने-वतन, बलूचिस्तान, जमीअत अहले-हदीस वगैरा शामिल थे। इन संगठनों के साथ मोमिन कॉन्फ्रेंस ने भी भाग लिया। इतिहास इस बात का गवाह है कि "मुस्लिम लीग द्वारा उठायी गयी पाकिस्तान की माँग का विरोध करने के लिए मई 1940 में दिल्ली में एक विशाल प्रदर्शन किया गया। जिसमें 40,000 बुनकरों के साथ मोमिन कॉन्फ्रेंस ने दिल्ली के इंडिया गेट पर भाग" लेकिन कांग्रेसी नेताओं ने इस चेतावनी की अनसुनी की। बाद में हुई ऐतिहासिक कांग्रेस-लीग समझौता-वार्ता में आल इंडिया मोमिन कान्फ्रेंस के प्रतिनिधियों को आमन्त्रित भी नहीं किया गया। मोमिन कान्फ्रेंस की मांगों की उपेक्षा ने मुस्लिम लीग को राजनैतिक क्षितिज पर एक साम्प्रदायिक संगठन के रूप में उभरने का मौका दिया, जो देश की एकता के लिए घातक हुआ।[15]

फिर भी इस ऐतिहासिक कॉन्फ्रेंस में जो बात कही गई वह आज भी महत्त्वपूर्ण है इस कॉन्फ्रेंस की अध्यक्षता अल्लाह बख़्श सूमरो कर रहे थे उन्हों ने कहा 'हमारी धार्मिक आस्थाएं चाहे कुछ भी हों मगर हमें अपने देश में पूरे तौर पर मेल-जोल के माहौल में रहना चाहिए। हमारे आपसी सम्बंध ऐसे होने चाहिएं जैसे कि एक संयुक्त परिवार में अलग-अलग आस्था रखने वाले भाई और दूसरे लोग अपने विश्वासों को बिना रोक-टोक जी सकें, और यह अन्तर उनकी साझी सम्पत्ति के इस्तेमाल में कोई बाधा उत्पन्न न करे। दो-कौमी नजरिये के समर्थकों और पाकिस्तान निर्माण की योजना का जवाब देते हुए उन्होंने कहा : 9 करोड़ भारतीय मुसलमान, जो भारत के पूर्ववर्ती निवासियों के वंशज हैं, वे द्रविड़ों और आर्यों की तरह ही इसी माटी के बेटे हैं। इस साझा भूमि पर उनका भी अन्य लोगों की ही तरह अधिकार है। विभिन्न देशों के नागरिक अपनी आस्था बदलने के साथ अपनी नागरिकता नहीं बदलते। पूरी दुनिया में इस्लाम का प्रसार होने पर विभिन्न देशों और संस्कृतियों से जुड़े लोगों ने इसे अपनाया जैसा कि पूरी दुनिया में देखा गया है। कोई अलग या विशेष इलाका नहीं, बल्कि पूरा भारत देश भारतीय मुसलमानों की मातृभूमि है। किसी भी हिंदू या मुसलमान को इसका अधिकार नहीं है कि वह उन्हें इस मादरे-वतन के एक इंच भू-भाग से भी अलग कर सके।[16]

विभाजन का विरोध करने वाले मुसलमानों के इस आन्दोलन को कभी कोई महत्त्व नहीं मिल सका। हालाँकि विश्वयुद्ध चल रहा था, लेकिन अँग्रेजों को मुस्लिम लीग, राजे-रजवाडे, जमींदारों, हिंदू और मुस्लिम सांप्रदायिकों के जारी समर्थन पर भरोसा था। इसके अलावा, उन्होंने एक ढाँचा बनाया था जिसमें केवल काँग्रेस और मुस्लिम लीग की ही भारतीय जनता की राय का प्रतिनिधित्व करने वाली दो प्रमुख राजनैतिक संस्थाओं के रूप में मान्यता थी। ब्रिटिश सरकार भारत में शान्ति और कानून व्यवस्था बनाये रखने

आजाद मुस्लिम सम्मलेन 27 अप्रैल 1940 को दिल्ली में हुआ, ऑल इंडिया आजाद मुस्लिम कॉन्फ्रेंस का मुख्य उद्देश्य था, भारत की एकता और अखंडता को बनाए रखना, भारत के विभाजन का विरोध करना, मुस्लिम लीग द्वारा प्रस्तावित द्वि-राष्ट्र सिद्धांत का विरोध करना था। इस सम्मलेन में बहुत से संगठनों ने हिस्सा लिया जैसे ऑल इंडिया मजलिसे अहरार, खुदाई खदिमतगार, बंगाल कृषक प्रजा पार्टी, ऑल इंडिया मुस्लिम पार्लियामेंट्री बोर्ड, अंजुमने-वतन, बलूचिस्तान, जमीअत अहले-हदीस वगैरा शामिल थे। इन संगठनों के साथ मोमिन कॉन्फ्रेंस ने भी भाग लिया। इतिहास इस बात का गवाह है कि "मुस्लिम लीग द्वारा उठायी गयी पाकिस्तान की माँग का विरोध करने के लिए मई 1940 में दिल्ली में एक विशाल प्रदर्शन किया गया

के लिए उत्सुक रहती थी, और वायसराय लिनलिथगो और औपनिवेशिक कार्यालय काँग्रेस के खतरे को रोकने के लिए बेचैन थे।[17]

1946 के चुनाव में मुस्लिम लीग ने यूपी और बिहार में अच्छा प्रदर्शन किया, लेकिन बिहार की 40 सीटों में से 33 सीटें जीतने के बावजूद, जमीयतुल मोमिनीन (मोमिन कॉन्फ्रेंस) के प्रत्याशी मुस्लिम लीग को कड़ी टक्कर देते हुए 6 सीटों पर कामयाब हुए। 1946 का आम चुनाव की अहमियत तब और भी बढ़ जाती है जबकि पाकिस्तान के गठन के सवाल पर इसे लोकमत संग्रह (रेफरेंडम) मान लिया गया। यहीं पर इस बात का जिक्र कर देना जरूरी है कि इन चुनावों में तकरीबन तेरह फीसदी बालिग मर्द और औरतों को वोट देने का अधिकार था। 64 रुपया सालाना मालगुजारी, सवा रुपया चौकीदारी टैक्स देने वाले तथा मैट्रिक पास मर्द और साक्षर महिला को ही वोट देने का अधिकार था। एक रुपए की कीमत उस जमाने में बड़ी थी। एक रुपए में एक जोड़ा साड़ी-धोती मिलती थी। दस सेर पक्का चावल की कीमत एक रुपया ही थी। इस चुनाव में सभी लोगों को वोट देने का अधिकार रहता तो शायद हिन्दुस्तान के दो टुकड़े नहीं होते।[18]

कुछ अशराफ कांग्रेस के साथ थे और पाकिस्तान के विरोधी थे, लेकिन एक वर्ग के रूप में अशराफ वर्ग पाकिस्तान आंदोलन के साथ रहा। 1936-1946 तक मोमिन कॉन्फ्रेंस की सक्रियता ने पसमांदा समाज, विशेष रूप से बुनकर समाज, को मुस्लिम लीग की अलगाववादी राजनीति से दूर रखा। धर्म की जगह जाति को महत्व देने से पसमांदा समाज के रोटी-रोजी के मुद्दे को प्रमुखता मिली। मुस्लिम समाज में सामाजिक न्याय पर बल दिया गया और धार्मिक कट्टरपंथ के खिलाफ आवाज उठाई गई। इस प्रकार, पसमांदा आंदोलन ने मुस्लिम समाज के भीतर जात-पात की लड़ाई को मजबूत किया और पसमांदा समुदायों को उनके अधिकारा के लिए जागरूक किया। इस आंदोलन ने मुस्लिम लीग की धार्मिक कट्टरता के खिलाफ और पसमांदा समाज के हितों की रक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय मुस्लिम समाज में पसमांदा और अशराफ के बीच गहरा विभाजन रहा है। अशराफ मुसलमान, जो स्वयं को उच्च वंश का मानते थे, हमेशा पसमांदा मुसलमानों को निम्न और हेय दृष्टि से देखते रहे। यह भेदभाव सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में व्यापक रूप से मौजूद था। भारत के विभाजन के समय, यह विभाजन और भी स्पष्ट हो गया। जहाँ अशराफ वर्ग मुख्य रूप से मुस्लिम लीग और पाकिस्तान के विचार का समर्थन कर रहा था, वहीं पसमांदा मुसलमान भारत की एकता और अखंडता के पक्ष में दृढ़ता से खड़े रहे। मोमिन कॉन्फ्रेंस जैसे संगठनों ने पाकिस्तान के विचार का जोरदार विरोध किया और भारत की एकता के लिए संघर्ष किया। आज भी, पसमांदा मुसलमान अपनी भारतीय राष्ट्रीयता पर गर्व महसूस करते हैं। उनका मानना है कि पूरा भारत उनकी मातृभूमि है और उन्हें इसके एक इंच भूमि से भी अलग नहीं किया जा सकता। उनका यह दृढ़ विश्वास और देशभक्ति उनके पूर्वजों द्वारा किए गए बलिदानों की विरासत है, जिन्होंने भारत की एकता और अखंडता के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। इस प्रकार, पसमांदा मुसलमानों ने न केवल विभाजन के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई, बल्कि भारत की एकता के लिए अपने प्राणों की आहुति भी दी। उनका यह योगदान भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है, जो उनकी देशभक्ति और राष्ट्रीय एकता के प्रति समर्पण को दर्शाता है।

संदर्भ-

1. फलाही,मसऊद आलम, जात-पात और मुस्लमान, तीसरा संस्करण, नई दिल्ली,2020, अल-काजी, पृ.332
2. अहमद, इश्तियाक, जिन्ना, उनकी सफलताएँ, विफलताएँ और इतिहास में भूमिका, अनुवाद आलोक बाजपेयी, अलका बाजपेयी, नोएडा, उत्तर प्रदेश, 2024, सेतु प्रकाशन, पृ.69
3. अली, मुबारक, इतिहास का मतांतर, नई दिल्ली, 2010, राजकमल प्रकाशन, पेज नंबर-110
4. वही, पृ. 111
5. अली, मुबार, तारिख तहकीक के नए रुझानात, लाहौर, फिक्शन हाउस, 2004, पेज नंबर-95 -96
6. अहमद, इश्तियाक, जिन्ना, उनकी सफलताएँ, विफलताएँ और इतिहास में भूमिका, अनुवाद आलोक बाजपेयी, अलका बाजपेयी, नोएडा, उत्तर प्रदेश, 2024, सेतु प्रकाशन, पृ. 221-222
7. घोष, पापिया, मुहाजिर्स ऐंड द नेशन.बिहार इन द 1940ज, नई दिल्ली, 2010, राउटलेज
8. अंसारी, अशफाक हुसैन, मोमिन कॉन्फ्रेंस कि दस्तावेजी तारीख (डॉक्यूमेंटरी हिस्ट्री ऑफ मोमिन कॉन्फ्रेंस), पब्लिकेशन, मोमिन मीडिया-2000, पृ. 36-37
9. घोष, पापिया, मुहाजिर्स ऐंड द नेशन.बिहार इन द 1940ज, नई दिल्ली, 2010, राउटलेज
10 राय संतोष कुमार, फॉर्मेशन ऑफ अ कोलोनियल आइडेंटिटी: द मोमिन अंसार्स इन अर्ली ट्वेंटीथ सेंचुरी नॉर्दर्न इंडिया, प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियान हिस्ट्री कांग्रेस, 2006-2007, वॉल्यूम 67 (2006-2007) पृ.563-570
11. वही
12. अनवर,अली, मसावात की जंग, नई दिल्ली, 2001,वाणी प्रकाशन, पृ.106
13. सज्जाद, मोहम्मद, थीसिस, बिहार मुस्लिम्स' रेस्पॉन्स टु टू नेशन थिअरी 1940-47, 2003, सेंटर ऑफ एडवांस्ड स्टडी डिपार्टमेंट ऑफ हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ (इंडिया) पृ.197-198
14. इस्लाम, शम्सुल, भारत-विभाजन विरोधी मुस्लमान, नई दिल्ली, फरोस प्रकाशन, 2019, पेज नंबर-234-235
15. अनवर, अली, मसावात की जंग, नई दिल्ली, 2001, वाणी प्रकाशन, पृ.111
16. इस्लाम, शम्सुल, भारत-विभाजन विरोधी मुस्लमान, नई दिल्ली, फरोस प्रकाशन, 2019, पेज नंबर-106-109
17. अहमद, इश्तियाक, जिन्ना,उनकी सफलताएँ, विफलताएँ और इतिहास में भूमिका, अनुवाद आलोक बाजपेयी, अलका बाजपेयी, नोएडा, उत्तरप्रदेश, 2024, सेतु प्रकाशन, पृ.224
18. वही, पृ.114

डॉ. ओहिउद्दीन अहमद

असम में बराक घाटी के पसमांदा मुसलमान

असम की बराक घाटी में पसमांदा मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक है। उनकी सामाजिक-राजनैतिक स्थिति का एक विवरण

पसमांदा शब्द का अर्थ है वे लोग जो कहीं पीछे छूट गए। भारत में पसमांदा मुसलमानों की ऐतिहासिक उत्पत्ति लाखों मूल निवासियों दलितों, अछूतों, बौद्धों और आदिवासियों के इस्लाम धर्मांतरण से जुड़ी हुई है। उन लोगों ने सामाजिक अन्याय और असमानता से छुटकारा पाने की उम्मीद में इस्लाम को अपनाया। लेकिन साथ ही नए उभरे मुस्लिम समाज में भी जाति के विकास ने उन्हें हाशिए पर ला धकेला। वे वंचित रहे और उन्हें भेदभावपूर्ण व्यवहार का शिकार होना पड़ा। इसके चलते वे मुख्यधारा के समाज से पीछे रह गए। भारतीय उपमहाद्वीप के किसी भी हिस्से में रहने वाले पसमांदा मुसलमानों को अजलाफ, अरजाल या अतराप जैसे नामों से जाना जाता है। उनकी पहचान आज भी अशराफ या उच्च जाति के मुसलमानों से अलग है।

परिचय

दक्षिण असम की बराक घाटी में वर्तमान में तीन जिले शामिल हैं - कछार, हेलाकांडी और करीमगंज। इन जिलों में बड़ी संख्या में पसमांदा मुस्लिम समुदाय रहते हैं। पूर्ववर्ती दो जिले पूर्ववर्ती आदिवासी कछारी राज्य के मैदानी क्षेत्र थे। ब्रिटिश काल के पूर्व, प्राकृतिक आपदाओं और विनाशकारी मौसमी बाढ़ जैसे कई कारणों के चलते यहां मानव बस्तियां बहुत कम थीं। लेकिन विनाशकारी बाढ़ का एक सकारात्मक पहलू भी था, वो था खेती के लिए उपजाऊ भूमि का निर्माण। यही वजह रही कि पड़ोसी बंगाल जिले, विशेषकर सिलहट से बड़ी संख्या में बंगाली लोग पलायन कर गए। औपनिवेशिक काल के दौरान, कछार एक बंगाली उपनिवेश बन गया और यहां की मुस्लिम आबादी बहुत ज्यादा थी। करीमगंज वर्तमान बांग्लादेश के सिलहट जिले का ही एक हिस्सा था। विभाजन के दौरान कराए गये सिलहट जनमत संग्रह के परिणामस्वरूप यह असम के भारतीय क्षेत्र में शामिल हो गया। बंगाली प्रवासियों में से अधिकांश किसान थे, साथ ही अन्य व्यवसायों से जुड़े मुसलमान भी यहां आकर बस गए जिनमें महिमल (मुस्लिम मछुआरा), किरान (किराएदार किसान) या नानकार किरान (बंधुआ मजदूर), पाटिकर (वंशानुगत चटाई कारीगर), हज्जाम (मुस्लिम नाई), बाजुनिया (मुस्लिम संगीतकार), चर्मकार (खालिया) और खारी (पूर्व बेड़िया) शामिल हैं।

चौदहवीं शताब्दी में मुस्लिम कब्जे वाले बांग्लादेश के सिलहट क्षेत्र में प्रसिद्ध सूफी संत, शेख शाह जलाल यमनी के आगमन के बाद स्थानीय लोगों ने बड़े पैमाने पर इस्लाम अपना लिया। इससे पहले ऐतिहासिक साक्ष्यों में केवल दो मुस्लिम परिवारों का ही उल्लेख मिलता है। लेकिन 1872 की जनगणना में हिंदू और मुस्लिम आबादी की संख्या लगभग बराबर पाई गई और उसके बाद की जनगणनाओं में मुस्लिम आबादी में वृद्धि देखने को मिली।

तालिका - I
सिलहट में मुस्लिम जनसंख्या (जनगणना में हिंदू-मुस्लिम जनसंख्या)

साल	1872	1881	1891	1901	1911	1921	1931	1941	1951	+/-
हिंदू	49.97	48.21	47.16	46.80	44.44	43.27	40.87	36.88	31.51	-18.46
मुसलमान	49.67	49.57	52.17	52.65	55.19	56.40	58.87	60.71	67.77	+18.10

स्त्रोत - 1872 से 1952 तक की जनगणना

बराक घाटी में मुस्लिम समाज की उत्पत्ति देशांतरण और आंशिक रूप से स्थानीय धर्मांतरण के फलस्वरूप हुई। चूंकि धर्मांतरित होने वाले लोग स्थानीय निवासी थे, जिसके चलते वे धर्मांतरण से पूर्व की अपनी सामाजिक परंपराओं और सांस्कृतिक प्रथाओं के अधिक आदी थे। और वे अपनी पूर्व-धर्मांतरित स्थिति के आधार पर विभिन्न सामाजिक समूहों और उप-समूहों में विभाजित हो गये। उन्होंने अपना पैतृक व्यवसाय जारी रखा, जिसे उनके उच्च जाति के सह-धर्मी नीची नजर से देखते थे। सामाजिक स्तरीकृत कृषि प्रणाली या सामंतवाद के उदय से मौजूदा सामाजिक भेदभाव और भी मजबूत हो गया। विभिन्न मुस्लिम व्यावसायिक समूहों का सामाजिक स्तर और भी नीचे चला गया।

मुस्लिम काल के दौरान, कठोर भू-संस्था का विकास हुआ जिसमें सामंतवाद की विशेषता नजर आती थी। इसके चलते सामाजिक रूप से स्तरीकृत कृषि प्रणाली ने आकार लिया। साथ ही जहां भूमि संस्था से जुड़े लोग समाज के उच्च तबके या अशरफ बन गए, वहीं विभिन्न व्यावसायिक समूहों से जुड़े लोग अजलाफ बन गए। अजलाफ समुदाय मुख्यधारा के मुस्लिम समाज से अलग-थलग रहने लगा और उन्हें पसमांदा मुसलमान कहा गया। बराक घाटी के पसमांदा मुस्लिम समुदायों की चर्चा नीचे की गई है

माहिमल

माहिमल (स्थानीय रूप से मैमल के नाम से जाना जाता है) बराक घाटी के पसमांदाओं का सबसे बड़ा जाति समूह है। माहिमल शब्द की उत्पत्ति दो फारसी शब्दों '*माही*' जिसका अर्थ मछली है और '*मल्लाह*' जिसका अर्थ नाविक है, से मिलकर हुई है। माहिमल वे स्वदेशी धर्मांतरित लोग थे जो मछली पकड़ने और नाव खेने[1] से जुड़े थे।[1] तत्कालीन सिलहट-कछार क्षेत्र की विशेषता बड़ी तादाद में जल निकाय थे जिनमें नदियां, झीलें और आर्दभूमि थी। इनमें मछलियां प्रचुर मात्रा में थीं।. कैबरेटा, चांडाल, पाटनी, नामशूद्र और अन्य मछली पकड़ने और खेती करने वाली जातियों की स्थिति हिंदू समाज में बेहद अपमानजनक थी। विशाल मुस्लिम आबादी मूल रूप से पोड, चांडाल, कोच, राजभंसी आदि मूल समूहों से आई थी, ये लोग आर्य संस्कृति से बहुत कम प्रभावित थे[2]। तेरहवीं शताब्दी के दौरान सूफी शेख शाह जलाल यमनी के आगमन के बाद, स्थानीय लोगों में बड़े पैमाने पर धर्मांतरण हुआ। माहिमल स्थानीय मछुआरा जातियों से मुसलमान बने थे और धर्म परिवर्तन के बाद भी वे अपने पैतृक पेशे से जुड़े हुए थे। जैसे-जैसे नया मुस्लिम समाज उभरा, वह दो महत्वपूर्ण खाद्य उत्पादन गतिविधियों, मछली और चावल, के आधार पर विभाजित हो गया। खेती से जुड़े लोगों को '*बांगल*' के नाम से जाना जाने लगा और मछुआरों को माहिमल या मैमल कहा जाने लगा।

पूर्ववर्ती सिलहट क्षेत्र[3] में कुल मुसलमानों का 20% प्रतिशत माहिमल थे। मुस्लिम मछुआरा जातियां भारत के विभिन्न भागों में अलग-अलग नामों से जानी जाती थीं। जेम्स वाइज ने बंगाल के संदर्भ में महिफरोश या निकारी जैसी मुस्लिम मछुआरा जातियों का उल्लेख किया है। ये जातियां इस्लाम धर्म अपनाने के बाद भी अपने पैतृक व्यवसाय से जुड़ी रहीं। शुरुआती दिनों में वे अपने व्यवसाय की जरूरतों के चलते ज्यादातर नदी किनारे और जल जमाव वाले इलाकों में बस गए थे। अधिकांश मछुआरे खेतीबाड़ी का भी काम करते थे। वे चौधरी या तालुकदारों के *मिरासदारों* (जमींदारों) के *रैयत* (कृषि श्रमिक) या किरायेदार के रूप में काम करते थे और धीरे-धीरे जमीन हासिल करते थे। लेकिन वे अपने अशरफ सह-धर्मियों के सामाजिक भेदभाव के कारण मुख्यधारा के मुस्लिम समाज से अलग-थलग पड़ गये। उनका *मिरासदारों* ने तरह-तरह से शोषण और उत्पीड़न किया। उदाहरण के लिए उन्हें जमींदार के घर के सामने जूते पहनकर और छाता लेकर चलने की भी अनुमति नहीं थी।

मछली पकड़ना सबसे कलंकित व्यवसाय समझा जाता था, इसलिए इसे अपमानजनक मानते थे। कोई भी मुसलमान इससे जुड़ना[4] नहीं चाहता था। पूरे बांग्लादेश[5] में मछुआरे के पेशे को अपमानजनक माना जाता था। चूंकि शिकार और मछली पकड़ना बंगाल का सबसे आदिम व्यवसाय था, इसलिए मुस्लिम आक्रमणकारियों ने हमेशा बंगाल के मूल निवासियों को नीच[6] माना। जिन लोगों ने इस्लाम नहीं अपनाया और हिंदू धर्म में ही रहे, वे आज के अनुसूचित जाति समुदाय जैसे कि कैबेरटा, पाटिनी, नामशूद्र और इसी तरह के अन्य लोग थे[7]। समय के साथ-साथ मुगल आक्रमण के बाद कई भगोड़े अफगान सैनिकों ने जंगल वाले सिलहट क्षेत्र में शरण ली, जिनमें से कई ने मछली पकड़ने का व्यवसाय अपनाया और माहिमल में शामिल हो गए। डोम, चांडाल, माल, पाटिनी जैसी तत्कालीन निम्न जाति के हिंदू इस्लाम धर्म अपनाने के बाद अपने नाम के साथ[8] आगे 'माही' जोड़ते थे।

कई बार उनके साथ अछूतों जैसा व्यवहार किया जाता था और इसलिए, उनमें खुद को '*शेख*' के रूप में पहचानने की प्रवृत्ति थी। मैमल को भी *नानकार प्रोजा* या बंधुआ कृषकों में शामिल किया गया था। वे जमींदारों के काश्तकार भी थे और पेशे से[9] मछुआरे भी। पूर्वी बंगाल में मछली पकड़ना सबसे कलंकित व्यवसाय था और उन्हें किसी भी दूसरे समुदाय की तुलना में सबसे ज्यादा तिरस्कार का सामना करना पड़ता था। मुसलमानों में जातिगत भेदभाव की कड़वी सच्चाई उच्च जाति के मुसलमानों की माहिमल के प्रति धारणा में प्रकट हुई। उच्च जाति के मुसलमान नमाज और रोजा रखते हैं, लेकिन इस्लाम के मूल्य और सिद्धांत के मूल्यांकन में बुरी तरह विफल रहे, जो अज्ञानता (*जहालत*) का युग[10] प्रतीत होता है। वे सिलहट क्षेत्र में सबसे बड़े मुस्लिम जाति समूह थे।

बराक घाटी के माहिमल मुख्य रूप से पड़ोसी सिलहट जिले से आए प्रवासी थे। अपने व्यवसायिक कारणों के चलते वे ज्यादातर जल निकायों और दूरदराज इलाकों के पास बस गए। ज्यादातर मछुआरे किसान भी थे। जहां एक तरफ वे प्राकृतिक आपदाओं के सामने बेबस थे, जिसमें उनके घर, फसलें, पालतू जानवर नष्ट हो जाते थे और नदियों के कटाव से उनका

गांव नष्ट हो जाता था, वहीं दूसरी तरफ उन्हें अपनी ही उच्च जाति के सह-धर्मियों के गंभीर भेदभाव का सामना करना पड़ता था। उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया। माहिमल को दशकों तक गंभीर सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ा और हाशिए पर रहने को विवश होना पड़ा।

माहिमल समुदाय ने 1930 के दौरान पहली बार अपनी दयनीय सामाजिक-आर्थिक स्थिति के खिलाफ आवाज उठाई और यूपी के मोमिन कॉन्फ्रेंस से प्रेरित होकर सरकार से विशेषाधिकार की मांग की। उन्होंने अपने लोगों में जागृति पैदा करने की कोशिश की। सिलहट में अपने हिंदू समकक्षों के साथ मिलकर मुस्लिम मछुआरों ने असम-बंगाल मत्स्यजीवी सम्मेलन (असम-बंगाल मछुआरा सम्मेलन) नामक एक संगठन भी बनाया। इस सम्मेलन का पहले सत्र का आयोजन सिलहट के पास हुआ और इसमें अविभाजित असम के मंत्री अक्षय कुमार दास ने भाग लिया।

सिलहट के माहिमल ने भी मुस्लिम लीग के द्वि-राष्ट्र सिद्धांत को खारिज कर दिया। उन्होंने असम प्रांतीय चुनाव में मुस्लिम लीग के खिलाफ उम्मीदवार खड़े किये। माहिमल के उम्मीदवार, अफाज उद्दीन ने लीग के उम्मीदवार दीवान अब्दुल बारी चौधरी के खिलाफ चुनाव लड़ा। लेकिन अफाज उद्दीन मामूली अंतर से हार गए। लेकिन इस हार ने माहिमल के सामाजिक-राजनैतिक अधिकार के लिए लड़ने की प्रतिबद्धता को मजबूत किया।

देश का विभाजन होने के बाद भारतीय स्वतंत्रता ने निस्संदेह उनके सामाजिक आंदोलन को एक गंभीर झटका दिया। जबरदस्त सांप्रदायिक उकसावे के बावजूद सिलहट के माहिमल ने पाकिस्तान और मुस्लिम लीग के खिलाफ सामूहिक मतदान किया। सिलहट जनमत संग्रह (1974) के परिणामस्वरूप, तत्कालीन असम के सिलहट जिले को पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) में शामिल कर दिया गया था, जिसका साढ़े तीन थाना क्षेत्र अब असम के करीमगंज जिला के अंतर्गत है।

राजनैतिक अलगाव के चलते असम की बराक घाटी में रहने वाले माहिमल पूर्वी पाकिस्तान में रहने वाले अपने समकक्षों से अलग हो गए। वहीं उनकी जाति के अधिकतर बुद्धिजीवी और सामाजिक कार्यकर्ता भी वहीं रह गए। असम की बराक घाटी के माहिमल ने अपने संरक्षकों को खो दिया। इन परिस्थितियों को देखकर, समुदाय के कुछ शिक्षित व्यक्तियों ने 1960 के दशक में एक संगठन का गठन किया। इस संगठन ने सामाजिक मुक्ति और उनके सामाजिक-राजनैतिक उत्थान के लिए लगातार प्रयास किए और आखिरकार, 1966 में असम सरकार ने माहिमल समुदाय को ओबीसी श्रेणी में शामिल कर लिया।

पाटिकर

तत्कालीन सिलहट-कछार क्षेत्र की कारीगर मुस्लिम व्यावसायिक जाति को पाटिकर या बोलचाल में पटियारा के नाम से जाना जाता था। उनका यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि उनका वंशानुगत व्यवसाय एक खास प्रकार के मुर्ता नामक बेंत से विशेष गुणवत्ता वाली चटाई बनाना था। इस चटाई को पाटी कहते थे। यह बेंत प्राकृतिक रूप से सिलहट-कछार क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में उगाई जाती है। इस विशेष प्रकार की चटाई को उसकी कलात्मक गुणवत्ता के लिए जाना जाता है जिसमें पीढ़ियों से चले आ रहे वंशानुगत कौशल नजर आता है। पाटी महीन और आरामदायक होती है। यह गर्मी के मौसम में ठंडक का एहसास कराती है और इसीलिए इसे *शीतल पाटी* भी कहते हैं[11]। डब्ल्यू डब्ल्यू हंटर ने भी इस उत्पाद की महीन, कलात्मक और चमकदार बनावट, अधिक कीमत और कुलीन लोगों[12] के बीच मांग को देखते हुए प्रशंसा की थी। पाटिकर की हिंदू और मुस्लिम दोनों शाखाएं थीं। हिंदू पाटिकरों को पटियारा दास[13] कहा जाता था।

उनकी प्रचलित परंपरा के अनुसार, वे बदकाश के मूल निवासी काजी उमर के वंशज थे जो शेख शाह जलाल यमनी के शिष्यों में से एक थे। मुसलमानों की सिलहट विजय के बाद, उनके शिष्य अलग-अलग जगहों पर फैल गए। और काजी उमर करीमगंज के कालीगंज क्षेत्र में बस गए। कालीगंज में उनकी पवित्र दरगाह आज भी मौजूद है। ऐसा दावा किया जाता है कि पाटिकर उन लोगों के वंशज हैं जो अफगानिस्तान से काजी उमर के साथ आकर बस गए थे। लेकिन इस दावे के समर्थन में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। आज की तारीख में लगभग 20 हजार पाटिकर बराक घाटी (विशेषकर कालीगंज क्षेत्र) में तथा शेष बांग्लादेश के सिलहट क्षेत्र में बसे हैं।

उनके विदेशी मूल के दावे को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसकी वजह यह है कि इस चटाई का निर्माण केवल बंगाल के सिलहट और सिलीगुड़ी में ही होता है। पूरे भारत में धर्मांतरित मुसलमानों के बीच विदेशी वंश का आविष्कार आम बात थी। वे समान हिंदू कारीगर जातियों से ध र्मांतरित होकर आए थे और सामाजिक अन्याय और उत्पीड़न से छुटकारा पाने की आशा में उन्होंने इस्लाम धर्म अपनाया था। उल्लेखनीय है कि उस वक्त डोम और चांडाल जैसी कारीगर जातियां हिंदू समाज में अछूत समझी जाती थीं। पाटिकरों को निम्न सामाजिक दर्जा इस आधार पर दिया गया कि डोम और चांडाल जैसी कारीगर जातियां उनके धर्मांतरण से पहले के समय में घृणित और बहिष्कृत मानी जाती थीं। उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में कोई बदलाव नहीं आया। यही वजह थी कि वे मुस्लिम सामाजिक पदानुक्रम में भी सबसे निचले पायदान पर रहे। उन्हें उनके अशरफ सह-धर्मी मुख्य रूप से अपमानजनक व्यवसाय से जुड़े होने के कारण नीची नजर से देखते थे।

पाटिकर गरीब थे और उनमें से अधि कांश ने अपने पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे व्यवसाय को छोड़ दिया था। इसके बावजूद भी वे मुख्यधारा के मुस्लिम समाज से अलग-थलग ही रहे। पाटिकर विशेष रूप से एक अंतर्विवाह करने वाला समुदाय है। इसका बाकी मुस्लिम समाज के साथ बहुत कम सामाजिक संपर्क है। इन्हें वर्ष 2001 में अन्य पिछड़ा वर्ग में शामिल किया गया।

किरान

कृषि के पेशे से जुड़े और जमींदारों या

मीरासदारों की जमीन पर खेती करने वाले लोगों के समूह को किरान कहा जाता था। फारसी शब्द किरान की उत्पति कथित तौर पर किसान या कृषक शब्द से हुई है। वैसे अन्य लोगों का मानना था कि यह शब्द फारसी शब्द "किराया'अन" से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है किराए पर या किरायेदार। किरान कोई विशेष जाति या जातीय समूह नहीं था, बल्कि ये पूर्ववर्ती सिलहट-कछार क्षेत्र में बतौर काश्तकार खेती करने वाले लोगों का एक संगठित वर्ग था। वे विभिन्न व्यावसायिक जातियों से आये थे जिन्हें हिन्दू समाज में अपमानजनक समझा जाता था और इस्लाम में धर्मांतरित हुए थे।

बंगाल और विशेष रूप से सिलहट पर मुस्लिम कब्जे के परिणामस्वरूप प्रचलित कृषि व्यवस्था में दूरगामी परिवर्तन हुए और सामाजिक रूप से स्तरीकृत कृषि प्रणाली का उदय हुआ। तुर्क-अफगान शासकों ने राजस्व बढ़ाने के लिए बंजर वन भूमि का बड़े पैमाने पर आर्थिक विस्तार शुरू किया जिसके कारण बड़े पैमाने पर इस्लामीकरण हुआ। सीमांत क्षेत्र में रहने वाले किसानों ने हल जोतने वाले धर्म के रूप में इस्लाम को अपना लिया।

मुस्लिम काल के दौरान, सिलहट क्षेत्र में विकसित विस्तृत भूमि संस्था ने शक्तिशाली जमींदारों यानी मीरासदारों के उदय की विशेषता बताई। इनके पास भूमि पर विशेष अधिकार था। उनमें से कई को उनकी संबंधित संपत्ति के भीतर राजा के रूप में देखा जाता था। किसानों और खेतिहरों को उनकी दया पर छोड़ दिया गया, जिसके चलते उनका लंबे समय तक शोषण और उत्पीड़न हुआ। किरान किसानों की स्थिति यूरोपीय सामंतवाद की तुलना में सबसे खराब थी, जिन्हें केवल दास या सर्फ माना जाता था। किराणा समुदाय की उत्पत्ति प्रभावशाली भू-स्वामी अभिजात वर्ग द्वारा काश्तकार की स्थिति को दासता की सीमा तक धकेलने का परिणाम थी।

किरान की दो श्रेणियां थीं- सामान्य किरान और नानकार किरान। सामान्य किरान जमींदार की जमीन पर बस गए और उन्हें लगान देने लगे। उन्हें घर के लिए एक भूखंड और आजीविका के लिए जमीन आवंटित की गई थी। इसके बदले में उनकी महिलाओं को अपने मालिक को विभिन्न सेवाएं देनी होती थीं। उनकी स्थिति दास या सर्फ से अधिक कुछ नहीं थी और वे जमींदार के हर आदेश का पालन करते थे। वे अक्सर प्रतिद्वंद्वी जमींदारों के खिलाफ बतौर लाठी काम करते थे।उन्हें मामूली अपराधों में बेदखली सहित गंभीर शारीरिक दंड भोगना पड़ता था। इतना ही नहीं उनकी महिलाओं को जमींदार मनोरंजन के साधन के रूप में इस्तेमाल करते थे। तीस के दशक में किरान समुदाय ने जमींदारों द्वारा किये जा रहे शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ हथियार उठा लिए, लेकिन औपनिवेशिक प्रशासन के साथ मिलकर जमींदारों ने क्रूरतापूर्वक उनका दमन किया। उन्हें और भी कठोर शर्तों के साथ दासता स्वीकार करने के लिए मजबूर किया गया।

मूल रूप से नानकर प्रोजा में विभिन्न व्यावसायिक समूह शामिल हैं। वर्तमान किरान सिलहट (करीमगज सहित) के नानकर प्रोजा के वंशज थे। कछार और हैलाकांडी के किरान मुख्य रूप से सिलहट से आए प्रवासी थे। दशकों बाद भी, सामाजिक क्षेत्र में किसी भी बड़े बदलाव न होने के कारण उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति अपरिवर्तित रही। उनकी घृणित सामाजिक स्थिति सामाजिक रूप से स्तरीकृत कृषि प्रणाली के कारण थी जिसने उन्हें निम्न सामाजिक दर्जा दिया। उनमें से अधिकांश गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं और शिक्षा में खराब स्थिति के कारण वे सभी प्रकार की सरकारी नियुक्तियों से वंचित हैं। किरान एक अंतर्विवाही समुदाय है जिसका तथाकथित अशरफ वर्ग के साथ लगभग कोई सामाजिक संबंध नहीं है। असम सरकार ने वर्ष 2003 में उन्हें अन्य पिछड़ा वर्ग का दर्जा दिया।

हज्जाम या नापित

नापित के व्यवसाय से पारंपरिक रूप से जुड़े लोगों के समूह को हज्जाम या नापित कहा जाता था और उनका दर्जा मुस्लिम समाज में बहुत निम्न था। उनकी सामाजिक स्थिति हिंदू समकक्षों के समान ही बेहद घृणित थी। हज्जाम की दो शाखाएं हैं- एक समूह खतना में लगा हुआ है जबकि दूसरा हेयरड्रेसिंग का काम करता है। बराक घाटी के मुस्लिम हज्जामों ने अपना पैतृक व्यवसाय लगभग छोड़ दिया है, क्योंकि नाई का काम एक कलंकित पेशा माना जाता है। वहीं आजकल खतना पेशेवर चिकित्सक द्वारा अंजाम दिया जाता है।

बराक घाटी की हज्जाम जाति नाई के पेशे से जुड़ी विभिन्न हिंदू जातियों से धर्मांतरित होकर आई स्वदेशी लोगों की वंशज थी। वे बराक घाटी के विभिन्न भागों में सीमांत समुदाय के रूप में बसे हैं। जाति जनगणना न होने के कारण, उनकी जनसंख्या का सही अनुमान नहीं लगाया जा सका। वे अंतर्विवाह करने वाले समूह हैं जिनका मुस्लिम समाज के उच्च तबके के साथ बहुत कम सामाजिक मेलजोल है। वे आर्थिक-सामाजिक रूप से पिछड़े हैं, और शिक्षा के क्षेत्र में उनकी स्थिति खराब है। यही वजह है कि वे सभी प्रकार की सरकारी नियुक्तियों से वंचित हैं। असम सरकार ने वर्ष 2003 में उन्हें ओबीसी का दर्जा दिया।

बाजुनिया या धुलिया

पारंपरिक रूप से संगीतकार के पेशे से जुड़ी मुस्लिम जाति को स्थानीय मुस्लिम समाज में बाजुनिया या *धूलिया* (ढोल बजाने वाला) कहते थे। इस्लामी समाज में संगीत निषिद्ध होने के बावजूद, शादियों और विभिन्न मुस्लिम समारोहों में गाया बजाया जाता था। बाजुनिया जाति के लोग बराक घाटी के विभिन्न हिस्सों में बसे हुए हैं और जाति जनगणना के अभाव के कारण उनकी सही आबादी का पता नहीं लगाया जा सका है। वे हिंदू नाई जाति से धर्मांतरित होकर आए थे और धर्मांतरण के बाद भी अपने पैतृक पेशे से जुड़े थे। उन्हें मुस्लिम समाज में बहुत निम्न दर्जा दिया गया था। ऐसा केवल इस्लाम में संगीत पर शास्त्रीय प्रतिबंध के कारण नहीं बल्कि उनकी पूर्व-धर्मांतरित स्थिति के कारण भी

था। संगीतकार के पेशे से जुड़े लोगों को हिंदू समाज में बहिष्कृत माना जाता था।

बराक घाटी के बाजुनिया लोग मुख्य रूप से बंगाल के जिलों से आये प्रवासी थे और अतीत में आजीविका की तलाश में यहां बस गये थे। उनकी अधिकांश आबादी ने अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़ दिया था और कृषि व अन्य अच्छे काम अपना लिए थे। वे आर्थिक रूप से बहुत गरीब हैं, शैक्षिक रूप से पिछड़े हैं और सामाजिक रूप से अलग-थलग हैं, जिसका मुख्य कारण उनके पूर्वज का अपमानजनक व्यवसाय से जुड़ा होना है। वे पूर्णत: अंतर्विवाही समूह हैं, जिनका शेष मुस्लिम समाज के साथ बहुत कम सामाजिक मेलजोल है। वर्ष 2003 में असम सरकार ने उन्हें ओबीसी श्रेणी में शामिल किया।

मिरशिकर

करीमगंज के लंगई इलाके में लोगों का एक बहुत छोटा समूह बसा था जिसे मिरशिकर के नाम से जाने जाते थे। यह समूह पारंपरिक रूप से पक्षियों का शिकार करता था। सिलहट-कछार क्षेत्र के दलदली क्षेत्र में कथित तौर पर सबसे पहले निषाद नामक भोजन संग्रहकर्ता रहते थे। बेहद दलदली आर्द्र भूमि विभिन्न प्रजातियों के पक्षियों का प्राकृतिक आवास थी। स्थानीय लोगों को पक्षियों का शिकार करने और उन्हें खाने की आदत थी, वहीं कुछ पक्षियों को पालतू पक्षियों के रूप में पालते थे।

ऐसा माना जाता है कि बंगाल के मिरशिकर स्थानीय शिकारी जातियों से धर्मांतरित होकर बंगाल जिले से इस क्षेत्र में आये थे। हिंदू मिरशिकर चिरी-मान थे, जो बेदिया का एक छोटा उप-विभाग[14] था। जेम्स वाइज ने एक मुस्लिम शिकारी जाति[15] का उल्लेख किया है जो एक अर्ध हिन्दू जाति है, जिसकी संख्या 1982 में सिलहट में[16] केवल 188 थी। ऐसे में केवल अनुमान लगाया जा सकता है कि मुस्लिम मिरशिकर हिंदू मिरशिकर जाति से धर्मांतरित थे और अपने पैतृक व्यवसाय से जुड़े थे। 1091 में हुई जनगणना में मिरशिकर को एक अलग जाति के रूप में गिना गया, जिसमें 395 लोग थे।

बराक घाटी के मिरशिकर मुख्य रूप से करीमगंज के लंगई इलाके में बसे थे। लेकिन 1950 के हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिक तनाव के बाद, उनमें से अधिकांश सिलहट चले गए। पक्षियों के विलुप्त होने और शिकार पर सरकारी प्रतिबंध के कारण उन्होंने अपना पारंपरिक व्यवसाय छोड़ना पड़ा। परंपरागत रूप से शिकार और मछली पकड़ना सबसे घृणित व्यवसाय माना जाता था। यही वजह थी कि मुस्लिम समाज में इन्हें बहुत निम्न दर्जा दिया गया था। मिरशिकर एक अत्यंत हाशिए पर पड़ी जाति है, जो आर्थिक रूप से गरीब और शैक्षणिक रूप से पिछड़ी है। वे अंतर्विवाह करने वाली जाति भी हैं, जिनमें आपस में विवाह के मामले बहुत कम देखने को मिलते हैं। यहां तक कि सरकार ने उन्हें ओबीसी का दर्जा भी नहीं दिया है।

उर्दूभाषी मुसलमान

ब्रिटिश काल के दौरान उत्तर-भारतीय राज्यों के अलग-अलग स्थानों से चाय बागानों में मजदूरी करने आये और असम में बसने वाले मुसलमानों को उर्दू भाषी मुसलमान या हिंदुस्तानी मुसलमान कहते थे। वे ज्यादातर बराक घाटी के विभिन्न चाय बागानों में बसे थे। ब्रह्मपुत्र घाटी में, उन्हें जुलाहा कहा जाता था और हाल ही में उन्हें असम के एक स्थानीय समुदाय के रूप में शामिल किया गया है।

उर्दू बोलने वाले मुसलमान हाशिए पर पाये जाने वाले मुस्लिम समूह हैं और मुख्यधारा के मुस्लिम समाज से अलग हैं। उनमें यह अंतर न केवल उनकी अलग भाषा और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के कारण है बल्कि खराब सामाजिक-आर्थिक स्थिति भी इसका कारण है। चाय बागानों के मालिकों ने उनका बहुत शोषण किया और जिसके चलते उनमें से बहुत से लोगों ने अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़कर अन्य सुंदर कामों को अपना लिया। वे अंतर्विवाह करने वाले समूह थे जिनका अन्य मुसलमानों के साथ बहुत कम सामाजिक मेलजोल था। असम सरकार ने उन्हें ओबीसी का दर्जा दिया था।

संदर्भ-

1. जलालाबादी ए.बी.एस., *श्येलटर मैमल समाज: ओइतेज्या सत्तेओ उपपेखिता, अलकवसर* (बंगाली में), खंड 7. संख्या 11(2011), पृ. 03/08/2017 को http:// ww.alkawsar.com से एक्सेस किया गया
2. ईटन आर.एम., द *राइज ऑफ इस्लाम एंड द बंगाल फ्रंटियर* (1206-1760), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1994. पृ. 118
3. जलालाबादी, उपरोक्त पृष्ठ, कोई तारीख नहीं"
4. वाइज, जेम्स, *नोट्स ऑन रेस, कास्ट एंड ट्रेड्स इन ईस्टर्न बंगाल*, हैरिसन्स एंड संस, लंदन, 1883, http:// www.latrobe.edu. au.on से एक्सेस किया गया पृ. 281
5. आरेफीन, हेलालुद्दीन खान, द *हिंदू कास्ट मॉडल एंड द मुस्लिम सोशल स्ट्रैटिफिकेशन इन बांग्लादेश*, अप्रकाशित थीसिस, मेमोरियल यूनिवर्सिटी, न्यूफाउंडलैंड, 1879, पृ. 69
6. बोकथ, हुमायूं, *ए सोशियोलाजी स्टडी ऑफ ए फिशिंग कम्यूनिटी ऑफ बराक वैली*, अप्रकाशित पीएचडी थीसिस, गुवाहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी, 2014, पृ. 57
7. हक, अनवारुल, मैमल। मुस्लिम फिशरमैन 1985, पृ.1
8. चौधरी, अच्युताचरण, *सिलहटर इतिब्रिट्टा*, (बंगाली में), उत्तराग्शा, खंड। III और IV, बोइवाला, कोलकाता, 2017, पृ. 515
9. अहमद, केयू, *करीमगंजर इतिहास*, (बंगाली में), नतुन दिगंता प्रकाशन, सिलचर, 2013, पृ. 135
10. जलालाबादी उपरोक्त पृष्ठ, कोई तारीख नहीं.
11. चौधरी, अच्युताचरण, *सिलहटर इतिब्रिट्टा*, (बंगाली में), पुरबाग्शा, वॉल्यूम1, उत्सव प्रकाशन, ढाका, 2002, 30-31
12. हंटर, *ए स्टैटिस्टिकल अकाउंट्स ऑफ असम*, वॉल्यूम। ट्रबनेर एंड कंपनी लंदन, II, 1975, पृ., 304
13. चौधरी, उपरोक्त, पृ. 31
14. वाइज, उपरोक्त, पृ. 217-18
15. उपरोक्त, पृ. 109
16. हंटर, उपरोक्त, पृ. 275

डॉ. राहिल अहमद

अल्लाह बख्श सूमरो पाकिस्तान प्रस्ताव के खिलाफ पहली पसमांदा शहादत

भारत विभाजन के विरोध की कीमत अल्लाह बख्श सूमरो को अपनी जान देकर चुकानी पड़ी। सूमरो के सिद्धांतों और प्रयासों का एक संक्षिप्त विवरण

भारत विभाजन मानव इतिहास की अत्यंत दु:खद घटनाओं में शुमार होता है। इसी कारण विगत वर्षों से 14 अगस्त को विभाजन विभीषिका दिवस मनाने की शुरुआत की गई है। यह स्थापित तथ्य है कि मुस्लिम राष्ट्र 'पाकिस्तान' के लिए भारत विभाजन का आंदोलन चूँकि मुस्लिम अतिवादियों द्वारा चलाया गया था, राष्ट्रवादी भारतीय मुसलमानों ने कट्टरपंथी इस्लामिक राष्ट्र पाकिस्तान का चुनाव न करके लोकतांत्रिक, पंथनिरपेक्ष और विविधता से परिपूर्ण मातृभूमि भारत को ही अपना राष्ट्र माना था। पसमांदा मुसलमान और उनके लोकप्रिय जननेता, जिनकी भूमिका सांप्रदायिक घृणा और देश विभाजन की राजनीति का मुकाबला करने में महत्त्वपूर्ण थी, वे इतिहास के पन्नों से लगभग गायब हैं, ऐसे ही एक नायक थे अल्लाह बख्श सूमरो। इनकी लोकप्रियता ने विभाजनकारी मुस्लिम लीग के लिए एक बड़ा खतरा पैदा कर दिया था। सूमरो स्वतंत्रता संग्राम में अपनी भूमिका में तब सामने आए जब उन्होंने दो कार्यकाल (मार्च, 1938–अप्रैल, 1940 और मार्च, 1941–अक्टूबर, 1942) के लिए सिंध के मुख्यमंत्री के रूप में कार्य किया और उसके बाद भारत छोड़ो आंदोलन का समर्थन करने के लिए अपनी 'खान बहादुर' की उपाधि त्यागकर न केवल देश की स्वतंत्रता अपितु इसकी अखंडता के लिए भी प्राणों की बाजी लगाकर संघर्ष किया। सूमरो एक प्रतिबद्ध देशभक्त थे जिनसे मुस्लिम लीग बहुत घृणा करती थी। स्थानीय जाट सिंधी परिवार से संबंध रखने वाले अल्लाह बख्श सूमरो अपने सरल जीवन और लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता के लिए जाने जाते थे। सिंधी पसमांदा राष्ट्रवादी मुस्लिम राजनेता अल्लाह बख्श सूमरो की कहानी भारतीय स्वतंत्रता इतिहास में बहुत कम स्थान पा सकी है। जबकि 1930 के दशक के अंत और 1940 के दशक के प्रारंभ में सिंध की प्रांतीय राजनीति पर उनका प्रभाव अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। उन्होंने सक्रिय राजनीति में मात्र छह वर्ष बिताए और इस कालावधि में वे सिंध विधानसभा में विपक्ष के पहले नेता और ब्रिटिश गवर्नर द्वारा बर्खास्त किए जाने से पहले दो बार प्रांत के मुख्यमंत्री (प्रीमियर) भी बने। देशप्रेम का उनका जज्बा इतना प्रबल था कि विदेशी शासन एवं सांप्रदायिक शक्तियों का सामना करने हेतु सूमरो ने 'द आजाद' नामक एक समाचार पत्र का प्रकाशन निर्भीकता से किया। इसमें प्रकाशित आलेखों ने स्वतंत्रता संग्राम की ज्वाला को भारतीय जनमानस में प्रज्वलित करने के साथ सरकारी हलकों को आशंकित एवं आतंकित कर रखा।

आज अखंड भारत के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को पर्याप्त स्थान दिए जाने की आवश्यकता है। सूमरो देशभाक्ति के मशालवाहक और ब्रिटिश आधिपत्य के प्रबल विरोधी थे। इस कारण वे सभी तरह की सांप्रदायिक ताकतों की विभाजनकारी राजनीति के सामने एक मुख्य चुनौती के रूप में उभरे, विशेषकर मुस्लिम लीग की ब्रिटिश पोषित राजनीति के समक्ष। सूमरो के अखबार 'द आजाद' ने ऐसी प्रतिगामी और विभाजनकारी ताकतों को 1930 और 1940 के दशकों में चुनौती दी थी, जो देश का विभाजन मजहब के आधार पर करने को आतुर थी। अल्लाह बख्श सूमरो का जन्म 1900 ई. में शिकारपुर कस्बे में हुआ था, जो कभी सिंध का व्यापारिक शहर हुआ करता था। सूमरो की प्रारंभिक शिक्षा जैकोबाबाद के थुल तालुका में हुई, जहां से 1918 ई. में उन्होंने मैट्रिक पास किया। उनके पिता हाजी मोहम्मद उमर सूमरो

अपने समय के एक प्रसिद्ध ठेकेदार और व्यवसायी थे। ऐसे में अल्लाह बख्श सूमरो अपने जमींदार पिता के व्यवसाय में ठेकेदार के रूप में शामिल हो गए। फिर, 23 वर्ष की आयु में, उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया तथा जैकबाबाद नगरपालिका के लिए चुने गए। अपनी शिक्षा, बुद्धिमानी और अपने परिवार के राजनैतिक संबंधों एवं ब्रिटिश प्रणाली में संयोजन के कारण सूमरो प्रांत के राजनैतिक हलकों में तेजी से उभरे और शीघ्र ही वे स्थानीय जिला बोर्ड के अध्यक्ष बन गए। 1926 में उन्होंने एक प्रभावशाली भूस्वामी प्रतिद्वंद्वी को हराया और बॉम्बे विधान परिषद (बीएलसी) में ऊपरी सिंध का प्रतिनिधित्व किया, जहाँ वे अगले दस वर्षों तक रहे। 1937 में, सिंध के बॉम्बे प्रेसीडेंसी से अलग होने तक लगातार नौ साल तक सिंध का प्रतिनिधित्व किया।[1] बॉम्बे विधान परिषद में सिंध के प्रतिनिधि के रूप में, वे बॉम्बे प्रेसीडेंसी और अपने प्रदेश सिंध के मुद्दों पर दृढ़ रहे। उनके प्रयासों की बदौलत इस क्षेत्र में सुक्कुर बैराज परियोजना का निर्माण हुआ, आधुनिक और वैज्ञानिक कृषि प्रणाली के साथ निर्मित यह गतिशील सिंचाई परियोजना सिंध के लोगों को अपने आर्थिक लक्ष्यों को आगे बढ़ाने और अपनी जीवनशैली में सुधार करने का सुनहरा अवसर प्रदान करने वाली एक महत्वाकांक्षी परियोजना थी। बाद में, सिंध को बॉम्बे प्रेसीडेंसी से अलग कर दिए जाने के पश्चात् वे सिंध यूनाइटेड पार्टी के सदस्य के रूप में नवगठित सिंध विधानसभा के लिए चुने गए तथा 1938 और 1941 के बीच दो अवसरों पर सिंध प्रांत के मुख्यमंत्री बने। ईमानदारी, देशभक्ति, विनम्रता और अपने प्रांत के कल्याण हेतु दृढ़ समर्पण के लिए जाने जाने वाले सूमरो ने सिंध के राजनैतिक परिदृश्य पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ा। जिसका प्रभाव आज भी इस क्षेत्र की स्थानीय राजनीति में इनके वंशजों की प्रभावशालीता के रूप में परिलक्षित होता है।

सूमरो ने 'सिंध यूनाइटेड (या इत्तेहाद) पार्टी' (SUP) के बैनर तले पहला प्रांतीय चुनाव लड़ा और सीटें जीतने के उपरांत पार्टी के संसदीय नेता भी चुने गए। सिंध यूनाइटेड पार्टी सदन की एकल बहुमत वाली पार्टी थी, लेकिन सिंध के गवर्नर सर लैंसलॉट ग्राहम ने एक अलोकतांत्रिक मिसाल कायम की और सर गुलाम हुसैन को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया, जिनकी मुस्लिम लीग पार्टी के पास सदन की कुल 60 सीटों में से मात्र 3 सीटें ही थीं। ऐसे में अल्लाह बक्स सूमरो को विपक्षी नेता के पद से संतोष करना पड़ा।

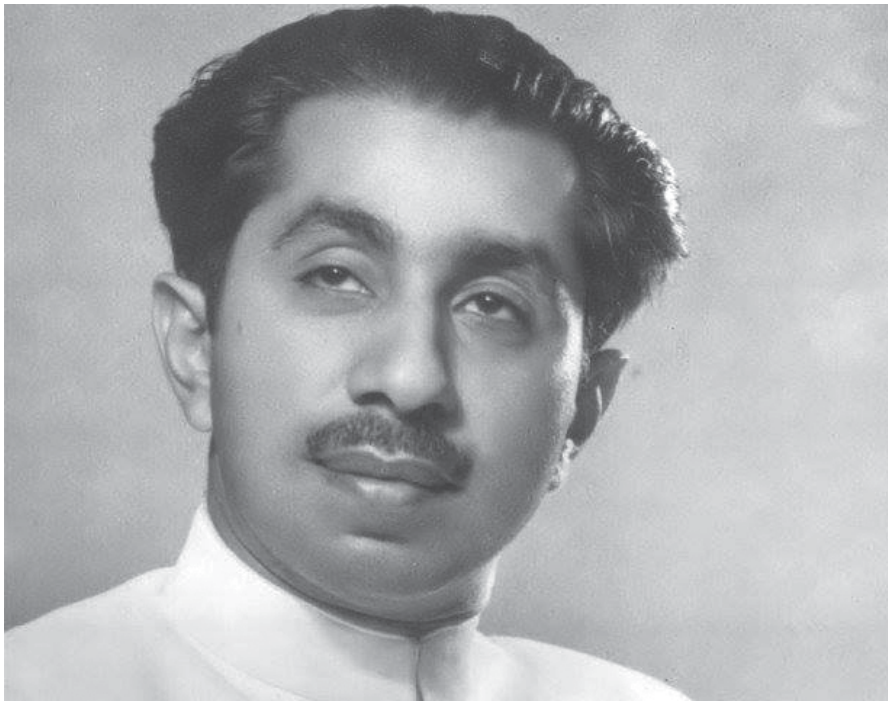

चित्र : अल्लाह बख्श सूमरो

यदपि गवर्नर की अलोकतांत्रिक व्यवस्था विफल रही और जोड़-तोड़ व अलोकतांत्रिक प्रविधि से गठित मंत्रिमंडल को त्यागपत्र देना पड़ा। ऐसे में अल्लाह बक्स सूमरो को 23 मार्च, 1938 से 18 अप्रैल, 1940 तक अपने प्रथम कार्यकाल के अतंर्गत सिंध प्रांत के मुख्यमंत्री के रूप में दायित्वों के निष्पादन का अवसर मिला। पदभार ग्रहण करते ही सांप्रदायिकता विरोधी अल्लाह बक्स सूमरो की उदार सरकार ने जाति और पंथ से ऊपर जनता की भलाई के लिए समर्पित होकर कार्य किया, उनकी सकारात्मक भूमिका तथा प्रगतिवादी सोच ने प्रांत को प्रगति के पथ पर आगे बढ़ाया और विभिन्न समुदायों के बीच एकता और सद्भाव पैदा किया। उन्होंने कृषि क्षेत्र में भी अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार किए। ऐसे में उनकी लोकप्रियता, जनतांत्रिक व्यवहार एवं सांप्रदायिकता विरोधी कार्यशैली से भयभीत होकर विपक्ष ने सूमरो को अपदस्थ करने के षडयंत्र प्रारंभ कर दिए।

सूमरो के सरकार गठन के पश्चात् अक्टूबर, 1938 में मुस्लिम लीग द्वारा कराची में एक विशाल सम्मेलन आयोजित किया गया था। यहाँ लीग के दिग्गजों ने हिंदुओं, कांग्रेस और अल्लाह बक्स के विरूद्ध आक्रामकता प्रदर्शित की। उन्होंने एक प्रस्ताव भी पारित किया जिसमें हिंदुओं और मुसलमानों के 'दो राष्ट्रों' के लिए आत्मनिर्णय की बात की गई थी। इसके पश्चात् मुस्लिम लीग से संबद्ध सिंध लीगर्स ने सांप्रदायिक रूप से विस्फोटक मस्जिद मंजिलगाह मुद्दे[2] (सिंध के सुक्कुर में स्थित एक गुंबददार इमारत, जिसे स्थानीय मुसलमान इस आधार पर नियंत्रित करना चाहते थे कि इसका प्रयोग पूर्व में कभी मस्जिद के रूप में किया गया था। ज्ञातव्य है कि मंजिलगाह का स्थान हिंदू मंदिर के ठीक सामने था, जिसका मतलब था कि सुक्कुर नगर पालिका सांप्रदायिक तनाव से बचना चाहती थी और इसलिए उसने दावे को खारिज कर दिया।) का लाभ उठाने का निर्णय लिया। जिससे धार्मिक विद्वेष फैलाया जा सके। उन्होंने मस्जिद मंजिलगाह की बहाली का मुद्दा उठाया और सूमरो की सरकार को अस्थिर करने के लिए आंदोलन प्रारंभ किया। जैसे-जैसे बातचीत आगे बढ़ी, सुक्कुर में माहौल सांप्रदायिक प्रकृति का होता गया।

मुस्लिमों ने विवादित इमारत को बलपूर्वक अपने नियंत्रण में कर लिया।[3] इसका परिणाम सांप्रदायिक अशांति और दंगों की लहर थी जो सुक्कुर से आसपास के जिलों तक फैल गई। जिसने सूमरो की सरकार को अस्थिर करने का कार्य किया। ऐसे में सूमरो को लगा कि सांप्रदायिकता के बीज सिंध की महान धरती के लिए बहुत ही हानिकारक और जोखिमपूर्ण हैं। अत: उन्होंने इस मुद्दे पर कोई सौदेबाजी न करते हुए निडरता से सांप्रदयिक तत्वों का सामना करने का प्रयास किया और इनके समक्ष आत्मसमर्पण करने की अपेक्षा अपने पद को त्यागना ही उचित समझा और पद से त्यागपत्र दे दिया।

इस प्रकार सिंध लीगर्स ने अल्लाह बक्स की सरकार गिराने का अपना प्राथमिक लक्ष्य प्राप्त तो कर लिया परंतु लीग की छवि और सिंध की सांप्रदायिक शांति दोनों को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी, क्योंकि पद की हानि ने सूमरो को तो प्रांतीय या राष्ट्रीय राजनीति की पृष्ठभूमि में नहीं धकेला पर मुस्लिम लीग का सांप्रदयिक चेहरा स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आ गया और इसने सूमरो की नीतियों व सिद्धान्तों को और दृढ़ता प्रदान की। सरकार के पतन के पश्चात् सिंध विधानसभा के लिए जब पुन: चुनाव हुए, तो सूमरो ने भारी बहुमत से विजय प्राप्त करते हुए फिर से 7 मार्च, 1941 से 14 अक्टूबर, 1942 तक सिंध प्रांत की बागडोर मुख्यमंत्री के रूप में संभाली। कमान संभालने के साथ ही सर्वप्रथम उन्होंने सामंती व्यवस्था के विरूद्ध एक विधेयक पेश कर इसे विधानसभा में पारित करवाया। उन्होंने सांप्रदायिक ताकतों की आलोचना करते हुए उन लोगों को एक पत्र भी लिखा, जो लोगों में सांप्रदायिक भावनाओं को भड़काकर राजनैतिक सत्ता हथियाने की साजिश कर रहे थे। इस पत्र ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के साहित्यिक इतिहास में एक मूल्यवान दस्तावेज के रूप में अपना स्थान बनाया।

उपलब्ध साक्ष्य बतलाते हैं कि उनकी लोकप्रियता एवं सिंध में उनके प्रभाव के कारण उन्हें कई बार मुस्लिम लीग में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया था। यहाँ तक कि मोहम्मद अली जिन्ना ने उनसे व्यक्तिगत रूप से संपर्क किया और उनसे

आजाद मुस्लिम कॉन्फ्रेंस के मंच से अल्लाह बक्स सूमरो ने मुस्लिम लीग और मोहम्मद अली जिन्ना के पाकिस्तान बनाने के प्रयासों का विरोध किया और लीग की निंदा करते हुए कहा कि यह भारत की प्रगति के मार्ग में मुख्य बाधा है। इस अवसर पर उनका दूरदर्शी अध्यक्षीय भाषण एक ऐतिहासिक दस्तावेज और भविष्य के लिए एक प्रकाश स्तंभ है। अध्यक्षीय संबोधन में सूमरो ने मजहब और विरासत के नाम पर लीग के गलत तर्कों का भंडाफोड़ किया

अखिल भारतीय मुस्लिम लीग में शामिल होने का अनुरोध किया, परंतु सूमरो कभी भी अपने मत से विचलित नहीं हुए। सूमरो ने उनके अनुरोध को यह कहते हुए सख्ती से अस्वीकार कर दिया कि मजहब के आधार पर राजनैतिक दलों की स्थापना करना इस्लाम के मूल सिद्धांतों के खिलाफ है। 'वे धर्मनिरपेक्षता और प्रांतीय स्वायत्तता पर आधारित राजनीति के अपने संस्करण पर अड़े रहे। वे न तो लीगी थे और न ही कांग्रेसी।' प्रांत में उनके काम और प्रखर होते स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी समन्वयकारी भूमिका को देखते हुए ब्रिटिश सरकार द्वारा उन्हें 'खान बहादुर' की उपाधि के साथ-साथ 'ऑर्डर ऑफ द ब्रिटिश एंपायर' उपाधि से भी सम्मानित किया गया था। स्वतंत्रता आंदोलन में लीग की सांप्रदायिकता की राजनीति एवं अन्य तथाकथित राष्ट्रवादी अशरफ मुसलमान नेताओं की उदासीनता के प्रत्युत्तर में मार्च, 1940 में, सूमरो द्वारा एक अखिल भारतीय गैर सांप्रदायिक पार्टी 'आजाद मुस्लिम कॉन्फ्रेंस' का गठन किया गया और वे इसके अध्यक्ष भी चुने गए। मुस्लिम लीग ने 23 मार्च, 1940 को लाहौर में मुसलमानों के लिए एक स्वतंत्र देश की सिफारिश वाला प्रस्ताव पारित किया था। इसके तुरंत बाद इस प्रस्ताव के विरोध में 27 से 30 अप्रैल, 1940 के बीच सूमरो ने दिल्ली में राष्ट्रवादी मुसलमानों (जो कि सामान्यत: पसमांदा थे) के एक बड़े सम्मेलन का सफल आयोजन किया। जिसे उन्होंने आजाद मुस्लिम कॉन्फ्रेंस नाम दिया। यह सम्मेलन कई 'राष्ट्रवादी' मुस्लिम राजनैतिक संरचनाओं जो सभी लीग के 'सांप्रदायिक' मत से विपरीत विचार रखते थे, को एक साथ एक मंच पर लाने में सफल रहा। जैसे कि अहरार, जमीयत उलेमा-ए-हिंद, शिया राजनैतिक सम्मेलन, अखिल भारतीय मोमिन कॉन्फ्रेंस, इत्तेहाद-ए-मिल्लत और खान अब्दुल गफ्फार खान की लाल कुर्ती सेना इत्यादि।

आजाद मुस्लिम कॉन्फ्रेंस के मंच से अल्लाह बक्स सूमरो ने मुस्लिम लीग और मोहम्मद अली जिन्ना के पाकिस्तान बनाने के प्रयासों का विरोध किया और लीग की निंदा करते हुए कहा कि यह भारत की प्रगति के मार्ग में मुख्य बाधा है।[4] इस अवसर पर उनका दूरदर्शी अध्यक्षीय भाषण एक ऐतिहासिक दस्तावेज और भविष्य के लिए एक प्रकाश स्तंभ है। अध्यक्षीय संबोधन में सूमरो ने मजहब और विरासत के नाम पर लीग के गलत तर्कों का भंडाफोड़ किया। अपने भाषण में उन्होंने भारत के साझा इतिहास और साझी भारतीय विरासत पर विस्तार से बात रखी और सबको मिलाकर बने भारतीय राष्ट्र और राष्ट्रवाद पर जोर दिया और बताया कि विभिन्न समुदायों के बीच जो समन्वय है, उसे तोड़ देने में किसी का भला नहीं है।

ज्ञात सूचनाओं के अनुसार मुस्लिम लीग की विभाजनकारी राजनीति की निंदा करने के लिए उस सम्मेलन में देश भर से लगभग 75 हजार लोगों ने भाग लिया था। सम्मेलन में भाग लेने वाले अधिकत्तर लोग अलग-अलग राजनैतिक और सामाजिक संगठनों से संबद्ध थे। ये प्रमुख रूप से पिछड़े और मुस्लिम समाज के कामगार वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे। सम्मेलन में इनकी भागीदारी से यह स्पष्ट हो गया कि मुस्लिम लीग मुस्लिम समाज के अशराफ या सुविधासंपन्न मुसलमानों की ही प्रतिनिधि पार्टी थी[5] और बहुसंख्यक अजलाफ या पिछड़े अरजाल वर्ग का कोई समर्थन मुसलमान लीग की राजनीति को प्राप्त नहीं था। निश्चित रूप से

मुस्लिम लीग आम मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था नहीं थी। अपनी नीतियों एवं हितों की रक्षार्थ अंग्रेजों ने मुसलमानों के एक सहयोगी संभ्रांत वर्ग (अशराफ) की पहचान कर मुस्लिम लीग के गठन में षड्यंत्रकारी योजना प्रोत्साहित कर क्रियान्वित की थी। ऐसे में सूमरो के सम्मेलन ने साम्राज्यवादी अंग्रेजों को चौंकाया तथा ब्रिटिश संसद में इसकी चर्चा की। सम्मेलनों ने ब्रिटिश अधिकारिया के मन में भी मुस्लिम लीग के प्रति संशय उत्पन्न कर दिया परंतु न चाहते हुए भी वे वास्तविकता को स्वीकार करने की स्थिति में नहीं थे। लीग की स्थिति को स्पष्ट करते हुए मार्च, 1942 में हाउस ऑफ कॉमन्स में एक प्रश्न के उत्तर में, बताया गया था कि 'बड़े और प्रभावशाली मुस्लिम समुदायों के प्रतिनिधि एक स्वतंत्र और एकीकृत भारत के पक्ष में जिन्ना की मुस्लिम लीग को अस्वीकार कर रहे हैं,' राज्य सचिव अमेरी ने पुष्टि की कि मुझे पता है कि श्री जिन्ना का नेतृत्व सभी मुसलमानों द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है, लेकिन मेरे पास इस बात पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है कि मुस्लिम लीग मुस्लिम राजनैतिक राय व्यक्त करने वाला प्रमुख संगठन बना हुआ है।[6]

23 मार्च, 1940 को लाहौर में मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान प्रस्ताव पारित किए जाने के ठीक एक महीने बाद लोकप्रिय मुस्लिम नेता अल्लाह बख्श सूमरो ने पाकिस्तान के निर्माण के संबंध में कहा था कि 'यह माँग कई गलत धारणाओं पर आधारित है जो यह मानती हैं कि भारत में सिर्फ हिंदू और मुसलमान रहते हैं। यह बताना आवश्यक है कि भारत के सभी मुसलमान भारतीय राष्ट्र होने पर गर्व करते हैं। 28 अप्रैल, 1940 को सूमरो की अध्यक्षता में हुए सम्मेलन में घोषणा की गई कि 'भारत अपनी भौगोलिक और राजनैतिक सीमाओं के साथ एक अविभाज्य समग्रता है और इस तरह यह जाति या धर्म से परे सभी नागरिकों की आम मातृभूमि है जो इसके संसाधनों के संयुक्त मालिक हैं।'[7]

28 अप्रैल, 1940 को द संडे स्टेटमेंट में अल्लाह बक्स सूमरो के भाषण का यह अंश छपा था कि "9 करोड़ मुस्लिमों का बहुसंख्यक हिस्सा भारत के सबसे पुराने लोगों में से एक है और वह भी द्रविड़ और आर्यों की तरह ही यहाँ भूमिपुत्र है। उसका भी इस जमीन पर पहले पहल बसने वालों की तरह का दावा है। केवल अलग मजहब अपना लेने भर से कोई राष्ट्र से अलग नहीं हो जाता, वैश्विक विस्तार की प्रक्रिया में इस्लाम कई राष्ट्रीयताओं और क्षेत्रीय संस्कृतियों से घुलता मिलता रहा है।" सूमरो ने हिंदू और मुसलमानों की साझी विरासत के लंबे इतिहास का उल्लेख मुस्लिम लीग के द्वि-राष्ट्र सिद्धांत के विरूद्ध आक्रामकता से किया। उनके भाषण का एक अंश हिंदुस्तान टाइम्स में छपा था- "हिंदू, मुसलमान और किसी भी अन्य लोगों द्वारा पूरे हिंदुस्तान या इसके किसी खास हिस्से का दावा सिर्फ अपने लिए करना एक जहरीली गलती है। एक मुकम्मल और संघीकृत और मिलीजुली इकाई के रूप में यह देश यहाँ रहने वाले सभी लोगों का है और इसकी विरासत पर भारतीय मुसलमानों का भी उतना ही हक है जितना अन्य भारतीयों का।

इन परिस्थितियों के बीच भारतीय जन को विश्वास में लिए बिना देश को विश्वयुद्ध में झोंकना तथा 1942 ई. में क्रिप्स मिशन की असफलता ने उपमहाद्वीप के राजनैतिक परिदृश्य को पूर्णतः परिवर्तित कर दिया। ऐसी विषम परिस्थितियों में महात्मा गांधी को 'अंग्रेजों, भारत छोड़ो' आंदोलन प्रारंभ करने के साथ ही 'करो या मरों' का आह्वान भी करना पड़ा। आंदोलन की घोषणा के साथ ही अंग्रेजी शासन का दमनचक्र भी चल पड़ा और भारतीयों को अनेक यातनाओं से गुजरना पड़ा। अंग्रेजों की क्रूर कार्रवाइयों ने अल्लाह बक्स सूमरो को ब्रिटिश नीतियों का दृढ़ता से विरोध करने के हेतु विवश किया।

19 सितंबर, 1942 को उन्होंने ब्रिटिश प्रधानमंत्री सर विंस्टन चर्चिल को एक पत्र लिखा और दमनचक्र के विरोध में अपनी उपाधियाँ 'ऑर्डर ऑफ द ब्रिटिश एंपायर' और 'खान बहादुर' का परित्याग कर दिया। पत्र में सूमरो ने लिखा, "वे ब्रिटेन द्वारा अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यों के लिए भारत को निरंतर अधीन बनाए रखने का समर्थन नहीं कर सकते थे। मैं इस बात से पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि भारत को स्वतंत्र रहने का पूरा अधिकार है और भारत के लोगों को ऐसी परिस्थितियाँ मिलनी चाहिए, जिनमें वे शांति और सद्भाव से रह सकें, परंतु ब्रिटिश सरकार की घोषणा और कार्यवाईयों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि विभिन्न भारतीय दलों और समुदायों को उनके मतभेदों को सुलझाने में सहयोग देने और देश के लोगों को सत्ता सौंपने तथा उन्हें स्वतंत्रता में सुखपूर्वक रहने और अपने जन्मसिद्ध अधिकार के अनुसार अपने देश के भाग्य को आकार देने की अनुमति देने के बजाय, ब्रिटिश सरकार की नीति भारत पर अपने साम्राज्यवादी नियंत्रण को जारी रखने और उसे अधीन बनाए रखने, राजनैतिक और सांप्रदायिक मतभेदों का दुष्प्रचार के लिए उपयोग करने तथा अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यों और इरादों की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय शक्तियों को कुचलने की रही है... मैं महसूस करता हूँ कि मैं ब्रिटिश सरकार से प्राप्त सम्मान को बरकरार नहीं रख सकता, जिसे मैं उत्पन्न परिस्थितियों में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रतीक के रूप में ही मानता हूँ।[8]

इस प्रकार इस कठोर पत्र के माध्यम से गांधी और नेहरू दोनों के हिरासत में होने के कारण, सूमरो ने ब्रिटिश सत्ता को विशेष रूप से अस्वीकार कर दिया, जिसके कारण सुभाष चंद्र बोस ने रेडियो पर उनके कार्य की सराहना की। सूमरो के इस पत्र के प्रत्युत्तर में ब्रिटिश प्रशासन की प्रतिक्रिया इतनी उग्र थी कि 10 अक्टूबर, 1942 को सिंध के गवर्नर सर ह्यूग डॉव ने घोषणा की कि "उन्हें सूमरो पर कोई भरोसा नहीं है", और इस प्रकार विधानसभा के विश्वास मत के उपरांत भी सूमरो को पद से बर्खास्त कर दिया गया। अल्लाह बक्स सूमरो ने इसे अलोकतांत्रिक और असंवैधानिक कृत्य घोषित किया। फिर भी अपनी बर्खास्तगी के उपरांत भी उन्होंने अपनी साम्राज्यवाद, अलगाववाद व धार्मिक विभाजन विरोधी राजनैतिक भूमिका जारी रखी। जिसके कारण उनके अस्तित्व को निहित स्वार्थी ताकतों ने अपनी भविष्य की योजना के लिए खतरा माना और 14 मई, 1943 को अपने गृह नगर शिकारपुर में एक तांगे में यात्रा करते समय सूमरो की दिनदहाड़े हत्या कर दी गई।[9]

उनकी हत्या किसने की यह आज तक रहस्य बना हुआ है। संभवतः द्वि-राष्ट्रवादी मुस्लिम लीग का इसके पीछे हाथ था। हालांकि कुछ लोगों पर मुकदमा चला, सजा

भी हुई, लेकिन सच्चाई सामने न आ सकी। उनकी हत्या को कई समाचार पत्रों ने राष्ट्रीय आपदा की तरह देखा। उनकी असमायिक मृत्यु के बाद समकालीन समाचार पत्रों में और कई राष्ट्रवादी नेताओं ने जिस तरह की अभिव्यक्तियाँ दी थीं उससे उनके व्यक्तित्व और देश को हुए नुकसान का आकलन सहजता से किया जा सकता है। हिंदुस्तान टाइम्स में उनके बारे में लिखा था- "वह एक सर्वश्रेष्ठ सिंधी, एक सच्चे मुसलमान और भारत के शानदार सपूतों में एक थे। जो किसानों की तरह यहाँ की जमीन से प्यार करते थे और हमेशा खद्दर पहनते थे। 20 वर्ष की उम्र से ही वह खादी पहनने लगे थे क्योंकि वह गरीबों से मोहब्बत करते थे। हिंदू और मुसलमान बराबरी से उन्हें अपना नेता मानते थे। विभाजन और कड़वाहट के दौर में भी वह स्वतंत्र और एकजुट हिंदुस्तान पर विश्वास रखते थे और आने वाले सालों में एक यूनाइटेड स्टेट ऑफ एशिया का सपना देखते थे।"[10]

अमृत बाजार पत्रिका ने लिखा कि वह एक "प्रभावशाली शख्सियत थे जिनके अंदर जिम्मेदारी की ऊँची भावना थी और अपनी मान्यता के प्रति अभूतपूर्व साहस था। वह सभी लोगों से सम्मान और प्रशंसा पाते थे, यहाँ तक उनसे अलग विचार रखने वाले भी उनके मुरीद थे।" समाचार पत्र ने उनकी मौत पर टिप्पणी करते हुए आगे लिखा, "एक ढेरों संभावनाओं वाले जीवन का अचानक अंत हो गया और आज भारत इस 42 साल के नौजवान की मौत के बाद थोड़ा और गरीब हो गया है जिसकी देशभक्ति और कर्तव्य के प्रति समर्पण को आज के दु:खद हालात के गुजर जाने के बाद बहुत याद किया जाएगा।"[11]

सिंधी राष्ट्रवादी भारतीय राजनीतिज्ञ और पत्रकार के.आर. मलकानी के अनुसार, "विनम्र अल्लाह बक्स ड्राइवर के बगल में बैठते थे। उन्होंने कभी भी कार के बोनट पर आधिकारिक झंडा नहीं फहराया। कभी भी रिसेप्शन या पार्टियों का निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। ट्रेन में वे ऊपरी बर्थ का इस्तेमाल करते थे और दूसरों को ज्यादा सुविधाजनक निचली बर्थ का इस्तेमाल करने देते थे। एक बार जब बाढ़ के पानी ने शिकारपुर को खतरे में डाल दिया, तो उन्होंने नहर को तोड़ दिया ताकि उनकी अपनी जमीनें जलमग्न हो जाएँ और शहर बच जाए। लेकिन सबसे बढ़कर वह गैर-सांप्रदायिक और राष्ट्रवादी थे।[12] सूमरो ने अखंड भारत के लिए साहसपूर्वक बलिदान दिया। एक नेता के नाते भारत विभाजन को लीगी प्रस्ताव के बाद मात्र तीन महीनों के भीतर उन्होंने दिल्ली में अखंड भारत के पक्ष में प्रचंड सम्मेलन किया। उनके बाद इतनी साहसिक सक्रियता वाला कोई नेता नहीं रहा। काश! सन 1946 व 47 की उन दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के समय यह जीवटवाला नेता जिंदा होता, तो शायद इतिहास बदल जाता। मुस्लिम लीग के साथ समझौता एवं निरंतर वार्ता करने वाले कांग्रेस के नेता सूमरो की 'आजाद मुस्लिम कॉन्फ्रेंस' या 'मोमिन कॉन्फ्रेंस' को अपना समर्थन देते तथा जिन्ना को मुस्लिम आबादी का ठेकेदार नहीं मानते तो शायद इतिहास बदल जाता। न केवल जीवन काल में कांग्रेस ने सूमरो को या पसमांदा संगठनों को साथ नहीं लिया। आजादी के बाद भी उनके नायकत्व को वे सदैव ही नकारते रहे। यह दुर्भाग्यपूर्ण है।

आज पसमांदा मुस्लिमों में आई जागृति के कारण यह तथ्य रेखांकित हो रहा है कि मुस्लिम लीग के साथ भारत का सामान्य मुसलमान नहीं था। दुर्भाग्य से भारत की राजनीति में सदैव अशराफों को ही मुसलमान माना गया, परिणामत: सांप्रदायिकता व पृथकतावाद की विष बेल बढ़ती ही चली गई। सूमरो जैसे महापुरुषों की स्मृति ही संभवत: इस जहरीलेपन को कुछ कम कर सकेगी।

संदर्भ-

1. खादिम हुसैन सूमरो, अल्ला बक्स सूमरो: एपोस्टल ऑफ सेकुलर हार्मनी (सेहवान शरीफ: सैन पब्लिशर्स, 2001)
2. हामिदा खुहरो, 'मस्जिद मंजिलगाह, 1939-40: टेस्ट केस फॉर हिंदू-मुस्लिम रिलेशंस इन सिंध,' मॉडर्न एशियन स्टडीज 32 अंक 1 (फरवरी 1998) पृ. 52-53
3. साथ ही, आयशा जलाल, सेल्फ ऐंड सोवरिंटी: इंडिविजुअल ऐंड कम्युनिटी इन साउथ एशियन इस्लाम सिंस 1850 (लंदन राउटलेज, 2000), 415-16. https://doi.org/10.1017/9781316711224.011 कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस से ऑनलाइन प्रकाशित
4. वेस्टन रिपोर्ट, 26. https://doi.org/10.1017/9781316711224.011 कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस से ऑनलाइन प्रकाशित
5. ऑल इंडिया इंडिपेंडेंट मुस्लिम कॉन्फ्रेंस में 27 अप्रैल 1940 को दिया गया के.बी. अल्ला बक्स का अध्यक्षीय संबोधन (नई दिल्ली: नेशनल जर्नल प्रेस, 1940), जोंस, पॉलिटिक्स इन सिंध में उद्धृत, 172
6. एस इरफान हबीब, 31 जुलाई 2020 https://hindi.caravanmagazine.in/commentary/allah-baksh-sumroos-life-shows-that-indian-muslims-are-not-pakistanis-left-behind-hindi
7. देखें, 'इंडिया (मोस्लेम) रीप्रेजेंटेशन,' हाउस ऑफ कॉमंस डिबेट, 12 मार्च 1942, खंड 378, पृ. 1186-7
8. निकोलस मैंसर्ज, सं. ट्रांस्फर ऑफ पावर, खंड 1: द क्रिप्स मिशन,जनवरी से अप्रैल 1942 (लंदन: एचएमएसओ, 1970), 293 https://doi.org/10.1017/9781316711224.011 कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस से ऑनलाइन प्रकाशित
9. सूमरो टु वायसरॉय, 19 सितंबर 1942, डेली गजट में पुन: प्रकाशित, 21 सितंबर 1942
10. फोर्टनाइट्ली रिपोर्ट फॉर द फर्स्ट हाफ ऑफ मे 1943, आईओआर एल/पीजे/5/259 बीएल
11. एस इरफान हबीब, 31 जुलाई 2020 https://hindi.caravanmagazine.in/commentary/allah-baksh-sumroos-life-shows-that-indian-muslims-are-not-pakistanis-left-behind-hindi
12. एस इरफान हबीब, 31 जुलाई 2020 https://hindi.caravanmagazine.in/commentary/allah-baksh-sumroos-life-shows-that-indian-muslims-are-not-pakistanis-left-behind-hindi
13. दादा केवलराम रतनमल मलकानी, फ्रीडम मूवमेंट इन सिंध, द सिंध स्टोरी अ ग्रेट अकाउंट ऑन सिंध, सानी हुसैन पन्हवार, 1997, द्वारा पुन: प्रकाशित, पृ.94 द सिंध स्टोरी; कॉपीराइट © www.panhwar.com

डॉ. कहकशाँ

हिंदी उपन्यास और पसमांदा समाज: एक आलोचनात्मक विश्लेषण

हिंदी उपन्यास साहित्य भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं को अभिव्यक्त करने वाला एक सशक्त माध्यम रहा है। यह समाज के हाशिए पर पड़े समुदायों की पीड़ा, संघर्ष और उनकी चेतना को उजागर करता है। दलित और आदिवासी साहित्य पर व्यापक चर्चा हुई है, लेकिन पसमांदा समाज, जो सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक रूप से उपेक्षित रहा है, हिंदी उपन्यासों में उतनी प्रमुखता से नहीं उभर पाया। हिंदी साहित्य में पसमांदा समाज की सीमित उपस्थिति इस ओर इशारा करती है कि या तो इस वर्ग को लेकर साहित्यिक चेतना का अभाव रहा है या फिर साहित्यिक विमर्श में सवर्ण मुस्लिम वर्चस्व के चलते पसमांदा समुदाय की अनदेखी की गई है। जिस कारण यह हमारे समाज में आज भी पीछे की लाइन में दिखाई दे रहे। यह समाज सामाजिक अधिकारों से भी वंचित है।

हिंदी समाज में मुस्लिम समाज का चित्रण तो जरूर हुआ है, लेकिन यह केवल उसके सवर्ण समुदाय तक ही सीमित होकर रह गया है। पिछड़ा तबका इस मामले में भी पिछड़ गया। एक आलोचनात्मक विश्लेषण

पसमांदा समाज की अवधारणा और उसकी उपेक्षा

'पसमांदा' शब्द फारसी भाषा से आया है, जिसका अर्थ 'पीछे छूटे हुए' होता है। भारतीय संदर्भ में यह उन मुस्लिम समुदायों के लिए प्रयुक्त होता है जो सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए हैं। अली अनवर अंसारी की पुस्तक 'मसावात की जंग' (2001) में यह स्पष्ट किया गया है कि भारतीय मुस्लिम समाज में भी जातिगत भेदभाव व्याप्त है और मुसलमान मुख्यत: दो वर्गों में विभाजित हैं-अशराफ (सवर्ण मुसलमान) और पसमांदा (पिछड़े और दलित मुसलमान)।

सच्चर कमेटी रिपोर्ट (2006) के अनुसार, भारत की कुल मुस्लिम जनसंख्या का लगभग 85% हिस्सा पसमांदा जातियों का है। फिर भी, हिंदी उपन्यासों में इस समुदाय की उपस्थिति अत्यंत सीमित रही है। हिंदी साहित्य में मुस्लिम जीवन को लेकर जितना भी लेखन हुआ है, उसमें अधिकांशत: सवर्ण मुस्लिम समाज का ही चित्रण किया गया है। प्रेमचंद, राही मासूम रजा, इस्मत चुगताई और कुर्रतुल ऐन हैदर, अब्दुल बिस्मिल्लाह जैसे प्रसिद्ध लेखकों के उपन्यासों में मुस्लिम जीवन के चित्र तो मिलते हैं, लेकिन इनमें मुस्लिम समाज की आंतरिक जातिगत विषमता और पसमांदा समाज की दुर्दशा पर बहुत कम चर्चा हुई है।

हिंदी उपन्यासों में पसमांदा समाज का चित्रण

प्रेमचंद के साहित्य में भारतीय समाज के शोषित वर्गों की पीड़ा को विशेष स्थान मिला है, लेकिन उनकी रचनाओं में मुस्लिम समुदाय, विशेषकर पसमांदा समाज, का उल्लेख बहुत सीमित है। गोदान और कफन जैसी कहानियों में ग्रामीण भारत के दलित और गरीब वर्गों का जीवन चित्रित हुआ है, लेकिन मुसलमानों, विशेष रूप से पसमांदा समाज की सामाजिक वास्तविकता को स्थान नहीं मिल पाया। गबन और रंगभूमि में कुछ मुस्लिम पात्र अवश्य मिलते हैं, लेकिन वे मुख्यत: व्यापारी या सामान्य मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि के हैं। इससे स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद की वर्गीय संवेदना हिंदू दलित और गरीब किसानों तक तो विस्तृत थी, लेकिन मुस्लिम समाज के बहुसंख्यक वंचित तबके को उन्होंने साहित्य में कोई खास जगह नहीं दी या यह कहें कि

पसमांदा समाज उस वक्त भी सामाजिक रूप से जाहिर नहीं हुआ था।

इस्मत चुगताई ने अपने उपन्यासों और कहानियों में मुस्लिम समाज के पितृसत्तात्मक स्वरूप को चुनौती दी। टेढ़ी लकीर और लिहाफ जैसी रचनाओं में उन्होंने मुस्लिम महिलाओं की स्थिति को केंद्र में रखा, लेकिन यहाँ भी पसमांदा समाज की उपस्थिति सीमित रही। ऐसा प्रतीत होता है कि चुगताई का फोकस मुख्यत: अशराफ मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों और उनकी दबी हुई आकांक्षाओं पर था, जबकि पसमांदा महिलाओं की दुर्दशा उनके साहित्य में अप्रत्यक्ष रूप से ही झलकती है। यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि जहाँ पसमांदा समाज न के बराबर था वहाँ महिलाओं की स्थिति की सोच भी नहीं सकते।

हिंदी साहित्य में यदि किसी उपन्यास ने पसमांदा समाज के जीवन को केंद्र में रखा है, तो वह है अब्दुल बिस्मिल्लाह का झीनी-झीनी बीनी चदरिया। यह उपन्यास वाराणसी के बुनकर समुदाय की सामाजिक-आर्थिक स्थिति और उनके जीवन संघर्ष को उभारता है। इसमें जुलाहा समुदाय (अंसारी) के माध्यम से पसमांदा समाज की समस्याओं को गहराई से चित्रित किया गया है। यह आजादी के बाद ऐसा उपन्यास है जो पसमांदा समाज को केंद्र में रख कर लिखा गया है।

राही मासूम रजा का टोपी शुक्ला भारतीय मुस्लिम समाज में जातिगत भेदभाव और सांप्रदायिक विभाजन को उजागर करता है, लेकिन यह मुख्यत: मुस्लिम सवर्ण और हिंदू-मुस्लिम संबंधों पर केंद्रित है। इसी तरह, अरशद अली का पासा और शम्सुल इस्लाम के अन्य लेखन में मुस्लिम समाज के भीतर पसमांदा समुदाय के हाशिए पर रहने की स्थिति को बारीकी से दर्शाया गया है। हालांकि, ऐसे लेखकों की संख्या सीमित है और मुख्यधारा के हिंदी साहित्य में इनकी रचनाओं को अपेक्षित स्थान नहीं मिला है।

हिंदी उपन्यासों में पसमांदा समाज की अनुपस्थिति यह दर्शाती है कि हिंदी साहित्य की मुख्यधारा ने मुस्लिम समाज को एकरूप मानते हुए उसमें मौजूद जातिगत विषमता को अनदेखा किया है। यह प्रवृत्ति केवल साहित्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक बौद्धिक संवेदनहीनता का भी द्योतक है, जहाँ मुस्लिम समाज को दलित बनाम सवर्ण के स्थान पर केवल धार्मिक पहचान के आधार पर देखा जाता रहा है। जिस कारण यह इतने बरसों से लुप्त प्रजाति की तरह जीवन व्यतीत करती आई है। और इन्हीं कारणों से आज इनकी दशा असहनीय हो गई है

आलोचना और भविष्य की संभावनाएँ

हिंदी उपन्यासों में पसमांदा समाज की अनुपस्थिति यह दर्शाती है कि हिंदी साहित्य की मुख्यधारा ने मुस्लिम समाज को एकरूप मानते हुए उसमें मौजूद जातिगत विषमता को अनदेखा किया है। यह प्रवृत्ति केवल साहित्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक बौद्धिक संवेदनहीनता का भी द्योतक है, जहाँ मुस्लिम समाज को दलित बनाम सवर्ण के स्थान पर केवल धार्मिक पहचान के आधार पर देखा जाता रहा है। जिस कारण यह इतने बरसों से लुप्त प्रजाति की तरह जीवन व्यतीत करती आई है। और इन्हीं कारणों से आज इनकी दशा असहनीय हो गई है।

यह विडंबना ही है कि हिंदी साहित्य में जिस तरह दलित और आदिवासी विमर्श को प्रमुखता से स्थान मिला है, उसी तरह पसमांदा विमर्श को अब तक साहित्यिक मान्यता नहीं मिली। अब्दुल बिस्मिल्लाह जैसे कुछ लेखकों ने इस विषय पर लिखा है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। पसमांदा समाज के जीवन, संघर्ष, चेतना और आंदोलन को हिंदी साहित्य में अधिक व्यापकता से प्रस्तुत किए जाने की आवश्यकता है, ताकि यह विमर्श मुख्यधारा का हिस्सा बन सके। इसके लिए न केवल पसमांदा समुदाय के लेखकों को आगे आना होगा, बल्कि मुख्यधारा के साहित्यकारों को भी इस विषय पर गंभीरता से विचार करना होगा।

निष्कर्ष

हिंदी उपन्यासों में पसमांदा समाज का चित्रण अभी भी सीमित और अधूरा है। यह साहित्यिक उपेक्षा इस बात का प्रमाण है कि भारतीय समाज में हाशिए के समुदायों को केवल उन्हीं विमर्शों में स्थान मिलता है, जो पहले से ही साहित्यिक परिदृश्य में स्थापित हो चुके हैं। जिस तरह दलित साहित्य ने अपने लिए जगह बनाई, उसी तरह पसमांदा साहित्य को भी अपनी जगह बनाने के लिए संघर्ष करना होगा। हिंदी साहित्य को समावेशी और अधिक संवेदनशील बनाने के लिए जरूरी है कि उसमें पसमांदा समाज के जीवन और संघर्ष को अधिक स्थान मिले और यह विमर्श साहित्य की मुख्यधारा का अभिन्न हिस्सा बने।

संदर्भ-

1. अिली अनवर अंसारी, मसावात की जंग, पेंगुइन बुक्स, 2001।
2. सच्चर कमेटी रिपोर्ट, भारत सरकार, 2006।
3. अब्दुल बिस्मिल्लाह, झीनी-झीनी बीनी चदरिया, राजकमल प्रकाशन, 1986।
4. राही मासूम रजा, टोपी शुक्ला, राजपाल एंड संस, 1969।
5. प्रेमचंद, गबन, हिंदी बुक सेंटर, 1931।
6. इस्मत चुगताई, टेढ़ी लकीर, किताब महल, 1947।
7. आरिफ मोहम्मद खान, पसमांदा और भारतीय समाज, 2015।
8. अरशद अली, पासा, वाणी प्रकाशन, 2020।
9. शम्सुल इस्लाम, मुस्लिम राजनीति और सामाजिक न्याय, साहित्य अकादमी, 2018।

डॉ. शारिद जमाल अंसारी

मौलाना आजाद का अशराफ़ चरित्र

वंशवाद और जातिवाद इस्लाम में कोई नई फितरत नहीं है। मौलाना आजाद के विचार और कर्म इसके जीवंत उदाहरण हैं

मौलाना आजाद को भारत के स्वतंत्रता संग्राम का महान स्वंतत्रता सेनानी होने का गौरव प्राप्त है। उन्होंने महात्मा गाँधी के कंधे से कंधा मिलाकर इस संग्राम में भाग लिया था। इस संग्राम में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध क्रांति करते हुए अंग्रेजों के दमन को सहते हुए और अपने जीवन के बहुमूल्य क्षणों को जेल की सलाखों के पीछे गुजारने को भी विवश हुए।

ये स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री थे और इन्होंने स्वतंत्र भारत की पहली शिक्षा प्रणाली की आधारशिला रखी। उन्होंने शिक्षा के स्तर में सुधार लाने और शीर्ष पर ले जाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया और उनके सबसे उल्लेखनीय योगदानों में से एक 1953 ई. में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) की स्थापना है जिसका उद्देश्य देश में उच्च शिक्षा के स्तर में सुधार लाना और उसे नियमित करना था।[1]

स्वतंत्र भारत में मौलाना आजाद को शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण विभाग का उत्तरदायित्त्व मिला था और समस्त भारत की जनता ने उनमें अपना विश्वास दिखाया था। चूँकि मौलाना आजाद एक महान स्वतंत्रता सेनानी होने के साथ-साथ एक महान नेता भी थे और अंग्रेज शासन में देश की सबसे बड़ी राजनैतिक पार्टी कांग्रेस के अध्यक्ष भी रह चुके थे। कांग्रेस में रहते हुए और गाँधीजी से निकटता के कारण इनको सेकुलर भी माना जाता था। सेकुलर थे या नहीं यह तो चर्चा का विषय है। अपनी इसी सेकुलर छवि को और बल देने के लिए इन्होंने संविधान सभा में मुस्लिम आरक्षण का विरोध भी किया। लेकिन वास्तव में देखा जाए तो मौलाना आजाद अवसरवादी थे। स्वतंत्रता संग्राम के शुरुआती समय में इन्होंने खिलाफत आंदोलन को भरपूर सहयोग दिया।

मौलाना आजाद ने महात्मा गाँधी को भी खिलाफत आंदोलन के लिए सहमत कर लिया। गाँधीजी ने खिलाफत आंदोलन को स्वीकार कर लिया और खिलाफत आंदोलन में भाग भी लिया और उसमानिया खिलाफत (ओटोमन खिलाफत) को बचाने के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध लोहा लेने को तैयार हो गए। गाँधीजी के खिलाफत आंदोलन में भाग लेने से मुसलमानों ने भी बहुत जल्दी गाँधीजी को अपना नेता स्वीकार कर लिया। इस प्रकार गाँधीजी मुसलमानों और मुस्लिम नेताओं के महान नेता और महात्मा बन गए।[2]

पहली बात तो यह कि मौलाना आजाद को लोकतंत्र का विचारक कहना गलत है, क्योंकि प्रारंभ में उन्होंने खिलाफत आंदोलन को अपना भरपूर सहयोग दिया और इसको इतना महत्त्व दिया कि स्वयं गाँधीजी भी खिलाफत आंदोलन के समर्थक हो गए। खिलाफत आंदोलन एक तरह से अंग्रेजों से लोहा लेने की क्रांति थी अगर खिलाफत आंदोलन सफल होते तो लोकतंत्र की स्थापना नहीं हो पाति बल्कि फिर वही मुगल साम्राज्य या खिलाफत का शासन होता। जहाँ 80 प्रतिशत जनता एक विशेष समुदाय के अधीन होती।

जब खिलाफत आंदोलन का कोई अस्तित्व नहीं रहा तब मौलाना आजाद ने खिलाफत की लड़ाई की क्रांति करते हुए स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया। क्योंकि बहुसंख्यक समाज के बिना किसी भी लड़ाई का अस्तित्व नहीं था। इसीलिए मौलाना खिलाफत आंदोलन के बाद लोकतंत्र की सराहना करने लगे और लोकतंत्र की माँग करने लगे। इसी क्रम में वे भारत छोड़ो आंदोलन में शामिल हुए।

मौलाना आजाद ने खिलाफत आंदोलन को आधार बना कर शरिया कानून को प्रमाणित किया। मौलाना आजाद का सपना आजाद भारत देखने का था ही नहीं। वे अंग्रेजों के बाद इस देश को मुस्लिम विदेशियों के हाथों में देखना चाहते थे। खिलाफत आंदोलन अगर सफल हो जाता तो मुस्लिम खलीफा ही भारत का शासक होता या अपने अधीन कोई बादशाह या राजा नियुक्त करता जो भारत प्रशासन की कमान संभालता। इसके तर्क में फैयाज अहमद फैजी अपने लेख पसमांदा विमर्श और मौलाना आजाद में इस संदर्भ में लिखते हैं:

"मौलाना आजाद ने खिलाफत आंदोलन के पक्ष में इसका जवाब देते हुए सवा दो सौ से अधिक पन्ने की 'मसला-ए-खिलाफत' नामक एक किताब लिख डाली। उस किताब में मौलाना आजाद ने तुर्की खिलाफत की इस्लामी कानूनी वैधता को सत्यापित करने के लिए उक्त हदीस की जाँच-पड़ताल की और विभिन्न प्रकार की हदीसों और इस्लामी उलेमा (विद्वानों) द्वारा लिखित किताबों के उद्धरणों से यह साबित करने का प्रयास किया कि कुरैश जनजाति के अतिरिक्त अन्य जाति के लोग भी यदि सक्षम हैं, तो मुसलमानों का नेतृत्व कर सकते हैं।"[3]

मौलाना आजाद ने ऐसे खलीफा के लिए तर्क दिए हैं जो सय्यद या अरबी वंश से न हो एक हदीस का वर्णन करते हैं:

"अगर एक हकीर (तुच्छ) सूरत हब्शी (काला अफ्रीकी) गुलाम (दास) भी तुम्हारा अमीर (सरदार) बना दिया जाए, तो चाहिए कि उसकी सुनो और इताअत (आज्ञापालन) करो।"[4]

खिलाफत आंदोलन के प्रति इस्लाम के मूल उद्देश्यों के आधार पर जिस प्रकार उन्होंने शोध कार्य किया और अपनी पुस्तक 'मसला-ए-खिलाफत' में उसको संदर्भों के माध्यम से उन्होंने उपरोक्त हदीस का वर्णन किया और खिलाफत के लिए नस्ल और जाति के आधार को ध्वस्त कर दिया। मौलाना आजाद अपनी पुस्तक में लिखते हैं:

"ब-वजा-ए-बका-ए-खिलाफत अब्बासिय मिस्र के उलमा-ए-इस्लाम (मुस्लिम विद्वान) की एक बड़ी जमाअत का खयाल यह रहा कि ब-मौजिब-ए-हदीस 'इन्ना हाजल अम्र फिल-कुरैश खलीफा को कुरैशी (अर्थात कुरैश वंश का) होना चाहिए। यानी अगर मुसलमान खलीफा मुकर्रर करें तो जहाँ और बहुत सी बातें उसमें होनी चाहिए वहाँ ये बात भी हो की खानदान-ए-कुरैश से हो।"[5]

मौलाना आजाद ने अपनी किताब मसला- ए-खिलाफत में यह तर्क देने का प्रयत्न किया है कि मुस्लिम साम्राज्य के लिए खलीफा का अहल-ए-बैत होना या अरब होना अनिवार्य नहीं है। बल्कि अजम का व्यक्ति भी खलीफा पद की गरिमा बढ़ा सकता है। और उन्होंने खिलाफत आंदोलन में सहयोग इसीलिए दिया था क्योंकि वे स्वयं को इसके जरिये मुस्लिम साम्राज्य का खलीफा देखना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने गांधी जी तक को अपने पक्ष में कर लिया था। बहादुर शाह जफर की मृत्यु के साथ ही मुगल वंश का अंत हो गया था। अत: मुगल वंश से कोई दावेदार नहीं बचा था जो खिलाफत या सल्तनत का दावा करता। अब खिलाफत आंदोलन के माध्यम से हिंदुस्तान को दोबारा मुस्लिम साम्राज्य के अधीन लाने या खिलाफत को भारत से संचालित करने की मंशा थी अर्थात मौलाना आजाद स्वतंत्रता संग्राम नहीं बल्कि 'गजवा-हिंद' चाहते थे:

"मौलाना ने एक जमाअत (संगठन) 'हिज्बुल्लाह' भी बनाई थी। मौलाना की मंशा ये थी कि मजहब के रास्ते मुसलमानों को सियासत में लाया जाए - जमाअत-ए-हिज्बुल्लाह ने सिर्फ इब्तिदाई मंजिलें तय की थीं।"[6]

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जो परिस्थिति थी उसमें हिंदुस्तान ने खिलाफत आंदोलन के प्रभाव में आकर ब्रिटानिया का साथ दिया था और ब्रिटिश प्रशासन से ये वचन लिया कि जर्मनी की पराजय के बाद ब्रिटानिया तुर्की की खिलाफत के विरुद्ध कोई भी कार्रवाई नहीं करेगा और मुस्लिम खिलाफत को संरक्षण देगा। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। इसकी प्रतिक्रिया में फरवरी 1920 को बंगाल की राज्य खिलाफत इकाई कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष के रूप में मौलाना आजाद ने खिलाफत आंदोलन की धार्मिक संरचना पर बहस करते हुए कहा था:

"इस्लाम का कानून-ए-शरई यह है कि हर जमाने में मुसलमानों का एक खलीफा व इमाम होना चाहिए -

सदियों से इस्लामी खिलाफत का मनसब सलातीन-ए-उस्मानिया को हासिल है और

इस वक्त अज-रू-ए-शरअ (धर्मशास्त्र के अनुसार) तमाम मुसलमानान-ए-आलम (विश्व के मुसलमानों) के खलीफा व इमाम वही हैं - जो उनकी इताअत (आज्ञा) से बाहर हुआ, उसने इस्लाम का हलका (फंदा) अपनी गर्दन से निकाल दिया और इस्लाम की जगह जाहिलियत मोल ली। जिसने उनके मुकाबले में लड़ाई की या उनके दुश्मनों का साथ दिया, उसने खुदा और उसके रसूल से लड़ाई की। इस्लाम का शरई (धर्मशास्त्र) का हुक्म है कि जजीरतुल-अरब को गैर-मुस्लिम असर से महफूज (सुरक्षित) रखा जाए। उसमें इराक का एक हिस्सा और बगदाद भी दाखिल है। अगर कोई गैर-मुस्लिम असर हुकूमत उस पर काबिज (अधिकार) होना चाहे या उसको खलीफा-ए-इस्लाम की हुकूमत से निकाल कर अपने जेर-ए-असर (आधिपत्य) में लाना चाए तो यह सिर्फ एक इस्लामी मुल्क के निकल जाने का मसला न होगा, बल्कि उससे भी बढ़ कर एक मख्सूस संगीत हालत पैदा हो जाएगी यानी इस्लाम की मरकजी सरजमीन पर कुफ्र का असर छा जाएगा। इस हालत में तमाम मुसलमानान-ए-आलम का अव्वली फर्ज (प्रथम कर्तव्य) होगा कि वे उस कब्जे को ववन से हटाने के लिए उठ खड़े हों।[7]

गाँधीजी को मुसलमानों ने अपना नेता स्वीकार कर लिया और उन्हें 'बापू' की उपाधि से सम्मानित किया गया। केवल स्वीकार ही नहीं किया बल्कि मौलाना मोहम्मद अली जौहर और मौलाना शौकत अली सरीखे धर्मात्मा लोग तो गांधीजी को पैगंबर मोहम्मद के बाद सबसे बड़ा व्यक्तित्व मानते थे और कहते थे कि हमारे लिए रसूल (पैगंबर मोहम्मद) के बाद गाँधीजी का आदेश लागू होता है।[8]

मौलाना आजाद जब जेल से रिहा हुए तो सबसे पहले गांधीजी के आश्रम गए तो उन्होंने गांधीजी का अनुसरण करते हुए एक ऐसा वस्त्र धारण किया था जो केवल घुटने और कुहनी तक बंद था, जैसा गांधीजी पहनते थे। मौलाना आजाद कथनी और करनी में गांधीजी के साथ थे।[9]

मौलाना आजाद को मुस्लिम समाज में सम्मान और आदर की दृष्टि से देखा जाता था। मुस्लिम समाज में इन्हें धर्मगुरु की पदवी भी मिली हुई थी जबकि वास्तव में ऐसा नहीं था। मौलाना आजाद ने प्रमाणित रूप से धर्मगुरु नहीं थे। मुस्लिम समाज में उनको वो आदर और सम्मान मिला कि धार्मिक गुरु न होने के बावजूद समुदाय में वे एक महान धर्मगुरु के रूप में स्थापित हो गए थे। अब यह सम्मान कांग्रेस में होने या महात्मा गांधी से निकटता के कारण था या कोई और वजह थी इसके बारे में कोई दृढ़ता साथ नहीं कह सकता।

मौलाना आजाद का संबंध एक उच्च मुस्लिम वंश से था और इनके मन में भी वही विचार व्याप्त था जिसमें पसमांदा मुसलमानों के लिए कोई स्थान नहीं था। महान नेता और मुस्लिम समाज में धार्मिक मान्यता होने के बावजूद इन्होंने मुस्लिम समुदाय के उस उपेक्षित समुदाय के लिए कोई कार्य नहीं किया। उस समुदाय के शोषण और अन्याय के विरुद्ध कोई आवाज तक नहीं उठाई, जबकि उस समय मौलाना का राजनैतिक स्तर अपने शीर्ष पर था। वो चाहते तो संविधान सभा में पसमांदा मुस्लिम समुदाय के लिए आरक्षण और विशेष अनुदान की माँग रख सकते थे। ऐसा नहीं था मौलाना इस समुदाय की दयनीय स्थिति से अनभिज्ञ थे क्योंकि जब मौलाना का राजनैतिक जीवन शीर्ष पर था तो उसी समय पसमांदा आंदोलन भी अपने शीर्ष पर था

मौलाना आजाद का संबंध एक उच्च मुस्लिम वंश से था और इनके मन में भी वही विचार व्याप्त था जिसमें पसमांदा मुसलमानों के लिए कोई स्थान नहीं था। महान नेता और मुस्लिम समाज में धार्मिक मान्यता होने के बावजूद इन्होंने मुस्लिम समुदाय के उस उपेक्षित समुदाय के लिए कोई कार्य नहीं किया। उस समुदाय के शोषण और अन्याय के विरुद्ध कोई आवाज तक नहीं उठाई, जबकि उस समय मौलाना का राजनैतिक स्तर अपने शीर्ष पर था। वो चाहते तो संविधान सभा में पसमांदा मुस्लिम समुदाय के लिए आरक्षण और विशेष अनुदान की माँग रख सकते थे। ऐसा नहीं था मौलाना इस समुदाय की दयनीय स्थिति से अनभिज्ञ थे क्योंकि जब मौलाना का राजनैतिक जीवन शीर्ष पर था तो उसी समय पसमांदा आंदोलन भी अपने शीर्ष पर था। अब्दुल-कय्यूम अंसारी, आसिम बिहारी जैसे महान पसमांदा नेताओं ने पसमांदा मुस्लिम समाज के लिए अपने स्वर ऊँचा कर चुके थे।[10]

आजाद खिलाफत की दावेदारी के लिए तो बराबरी का समर्थन और वंशवाद का विरोध करते नजर आते हैं और उसके लिए हदीस एवं दूसरे तार्किक संदर्भों का सहारा लेते हैं। वहीं, हिंदुस्तानी मुस्लिम समाज में व्याप्त अन्याय और वंशवाद के विरोध में वे एक अक्षर भी नहीं बोलते और न ही इस समुदाय के पक्ष में कोई किताब लिखते हैं, जैसा कि उन्होंने खिलाफत के लिए 'मस्ला-ए-खिलाफत' लिखी थी। इसके उलट अशराफवाद का बचाव करते हैं और समय आने पर पूरे मुस्लिम समाज को एक समुदाय की श्रेणी के रूप में देखते हैं। जानबूझकर वे मुस्लिम समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था और सामाजिक भेदभाव से आँख फेर लेते हैं।

स्वतंत्रता संग्राम के मध्य ही मोमिन कॉन्फ्रेंस की स्थापना हुई थी और मुस्लिम पसमांदा समाज अपने अधिकार की आवाज के लिए एकजुट होने लगा था। इसी देशज समाज ने मुस्लिम कट्टरवाद का डट कर सामना किया था। मुस्लिम बहुल क्षेत्र में भी मुस्लिम लीग को हार का सामना करना पड़ा था। मुस्लिम देशज समाज ने सिरे से हिंदू-मुस्लिम राजनीति को नकार दिया था और देशहित में मुस्लिम लीग का विरोध किया। संविधान सभा में सभी मुस्लिम नेताओं ने मुस्लमानों के आरक्षण का केवल इसीलिए विरोध किया था की अगर हम मुस्लिम समाज के लिए आरक्षण की माँग करेंगे तो यह धर्म के आधार पर माँगा गया

आरक्षण होगा और अंत में इस आरक्षण को पसमांदा मुस्लिम समाज के लिए कर दिया जाएगा। क्या आजाद या तजम्मुल हुसैन जैसे अशराफ मुस्लिम नेता को यह बात हजम हो सकती थी कि एक ऐसा समाज जो शोषित वर्ग और दलित समुदाय के समकक्ष हो और उसका जीवन स्तर भी उसी समाज के समान हो, उनके साथ सरकारी विभागों में भागीदार बने।

वह मुस्लिम समुदाय वास्तविक रूप से देशज समाज था। इसका संबंध किसी दूसरे देश से नहीं बल्कि मूल रूप से भारतीय समाज से था, जिन्होंने किसी कारणवश सनातन धर्म छोड़ इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। उनमें अधिकतर भारत का कामगार समाज था और ये सामाजिक रूप से अशिक्षित, दबा-कुचला, पिछड़ा समुदाय था और इस्लाम धर्म स्वीकार करने के पश्चात भी उसके सामाजिक स्तर में कोई सुधार नहीं हुआ। बल्कि मुस्लिम अशराफ समुदाय ने उसे केवल संख्या एवं गणना के लिए इस समुदाय को मुस्लिम श्रेणी में रखा है जबकि सर सैय्यद सरीखे मुस्लिम विद्वान इनको म्लेच्छ, कमीन और बदजात आदि उपाधि से संबोधित करते थे।

स्वतंत्रता के समय में मुस्लिम लीग ने ठीक उसी प्रकार का काम किया था जैसे आज के समय में असदुद्दीन ओवैसी की आल इंडिया इत्तिहादुल मुस्लिमीन कर रही है। चुनाव के लिए मुस्लिम लीग ने भी मुस्लिम बहुल क्षेत्र को चुना था और समाज को बाँट कर अपना एजेंडा साधा था। देशज समाज ने मुस्लिम लीग को नकार दिया था। मुमिन कांफ्रेंस ने भी मुस्लिम लीग का विरोध किया था।

वास्तव में मौलाना आजाद ने जामा मस्जिद के मैदान में जो भाषण दिया उसमें उन्होंने देश बचाने की बात नहीं कही है बल्कि मुस्लिम विरासत बचाने का आह्वान किया है। उपरोक्त तथ्य के आधार पर हम कह सकते हैं कि मौलाना आजाद का उद्देश्य 'गज्वा-ए-हिंद' था। उतनी बड़ी संख्या को संबोधन में वे मुसलमनों से मस्जिद, मदरसा, दरगाह आदि जो भारत में रह गए हैं, उसे बचाने की बात करते हैं। पसमांदा समाज को पूर्ण रूप से वहाँ भी उन्होंने नजरअंदाज कर दिया।

पसमांदा समाज के प्रति मौलाना की कोई हमदर्दी नहीं थी। अगर हमदर्दी रही होती तो संविधान सभा में जब दलित और जनजातीय समाज के लिए आरक्षण की व्यवस्था की जा रही थी तब वे भी उसी सभा में मुस्लिम समाज में व्याप्त अन्याय, शोषण, छुआछूत आदि जैसे विषयों को आधार बनाकर 'दलित मुस्लिम' के लिए आरक्षण की माँग कर सकते थे। पसमांदा विचारक फैयाज अहमद फैजी अपने लेख में दावा करते हैं कि बाबासाहेब भीम राव अंबेडकर ने मौलाना आजाद को संविधान सभा में दलित और पिछड़े मुसलमानों के लिए आरक्षण की माँग रखने को कहा था, जिसे सरदार वल्लभ भाई पटेल ने पेश किया था। परंतु मौलाना आजाद के साथ जो तीन अन्य मुस्लिम सदस्य थे उन सभी लोगों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि दलित और पिछड़े मुसलमानों को आरक्षण की आवश्यकता नहीं है। उन लोगों ने इनके लिए किसी भी सरकारी सहायता या अनुदान का विरोध किया और ये तर्क दिया कि मुसलमानों में कोई जाति व्यवस्था नहीं है। जबकि ऊपर वर्णित अंश, जो मौलाना आजाद की किताब 'मस्ला-ए-खिलाफत' से उद्धृत है, में एक हदीस के संदर्भ में वे लिखते हैं कि "खलीफा का कुरैशी होना अनिवार्य है" इसका तात्पर्य है कि मुस्लिम समाज में वंशवाद या जातिवाद आदि जैसी कुरीतियाँ मौजूद हैं। यह अलग बात है कि मौलाना ने इस हदीस को उसके विरोध के तर्क में पेश किया है जिसमें आदि खलीफा के लिए किसी विशेष वंश से होना अनिवार्य नहीं है। संविधान सभा में मौलाना आजाद, तजम्मुल हुसैन, मौलाना शौकत आदि ने उस प्रस्तावाना का विरोध किया था। फैयाज अहमद फैजी 'आवाज द वॉयस' में अपने लेख 'पसमांदा विमर्श और मौलाना आजाद' में लिखते हैं:

"कांस्टीट्यूएंट ड्राफ्ट असेंबली के दौरान मूलभूत अधिकार, अल्पसंख्यक, जनजातीय एवं बहिष्कृत क्षेत्र पर आधारित एडवाइजरी कमेटी की समस्याओं के शीघ्र और तार्किक हल के लिए डॉ. अंबेडकर ने सरदार पटेल के नेतृत्व में एक सब कमेटी के गठन का प्रस्ताव रखा, जिसे मान लिया गया।

इसी संदर्भ में अंबेडकर अपने भाषण में कहते हैं कि जब संविधान बन रहा था, तब मैं कांग्रेस की कठपुतली मौलाना आजाद से मिला था, जो कांग्रेस के हाथ की कठपुतली के सिवा कुछ भी नही है। अल्पसंख्यकों के राजनैतिक भविष्य की चर्चा के लिए तय मीटिंग से मात्र एक दिन पहले मैंने उनको मुस्लिमों से संबंधित मामलों के सभी मुद्दे और संभावनाओं के बारे में संक्षिप्त विवरण दिया।

लेकिन यह मौलाना अगले दिन बैठक में उपस्थित ही नहीं हुआ। परिणामस्वरूप

पसमांदा समाज के प्रति मौलाना की कोई हमदर्दी नहीं थी। अगर हमदर्दी रही होती तो संविधान सभा में जब दलित और जनजातीय समाज के लिए आरक्षण की व्यवस्था की जा रही थी तब वे भी उसी सभा में मुस्लिम समाज में व्याप्त अन्याय, शोषण, छुआछूत आदि जैसे विषयों को आधार बनाकर 'दलित मुस्लिम' के लिए आरक्षण की माँग कर सकते थे। पसमांदा विचारक फैयाज अहमद फैजी अपने लेख में दावा करते हैं कि बाबासाहेब भीम राव अंबेडकर ने मौलाना आजाद को संविधान सभा में दलित और पिछड़े मुसलमानों के लिए आरक्षण की माँग रखने को कहा था, जिसे सरदार वल्लभ भाई पटेल ने पेश किया था। परंतु मौलाना आजाद के साथ जो तीन अन्य मुस्लिम सदस्य थे उन सभी लोगों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि दलित और पिछड़े मुसलमानों को आरक्षण की आवश्यकता नहीं है

वहाँ मेरे सिवा कोई दूसरा व्यक्ति नहीं था जो प्रबलता से मुस्लिमों के अधिकारों की रक्षा करता। चूँकि मैं मुस्लिमों के निर्वाचन-क्षेत्र के आरक्षण के समर्थन में अकेला था। कांग्रेस की ओर से पंडित नेहरू ने मेरे प्रस्ताव का विरोध किया और फलस्वरूप ऐ मेरे मुस्लिम भाइयों आप लोग निर्वाचन-क्षेत्र के आरक्षण रूपी बलशाली राजनैतिक अधिकार से वंचित कर दिए गए।"

भारतीय मुसलमानों में भेदभाव और ऊँच-नीच का स्तर इतना भयावह है कि उसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। उर्दू के प्रख्यात कवि मीर तकी मीर अपनी किताब 'जिक्र-ए-मीर' में अपने परिवार के सभी लोगों का नाम लिखते हैं और उनको उन पर गर्व भी है, लेकिन अपनी माँ का नाम कहीं नहीं लिखते। इसका कारण यह था कि उनकी माँ का संबंध पसमांदा समाज के एक परिवार से से था। वे अपनी माँ के परिवार की जानकारी इसलिए नहीं देते क्योंकि समाज में उनकी एक गरिमा है और उनकी माँ तथाकथित नीच जाति के परिवार से ताल्लुक रखती हैं। मीर तकी मीर ने अपने सय्यद होने का दावा किया है लेकिन काजी अब्दुल वदूद के शोध से मीर तकी मीर शेख थे। सय्यद शाह वलिउर्रहमान अपने लेख 'मीर की दास्तान' में लिखते हैं:

"... मीर ने सयादत (सय्यद होने) का दावा किया है, लेकिन हिंदुस्तान के मशहूर मुहक्किक (शोधकर्ता) काजी अब्दुल वदूद ---- से साबित किया है कि मीर शेख थे, उनका यह भी खयाल है कि उनकी वालिदा (माँ) गैर-कुफू (सामाजिक रूप से वंश, धन, श्रेणी आदि में बराबर न हो) की औरत थीं और यही वजह थी कि खान आरजू और उनके हकीकी भांजे हाफिज मोहम्मद हसन उनसे नफरत करते थे। मीर ने इस किताब में अपनी माँ का जिक्र (वर्णन) तक न किया कि वो किस खानदान से थीं। काजी का खयाल है कि खामूशी की वजह सिर्फ यह थी कि वो मजहूल-उन-नस्ल (जिसका वंश और मूल संदेह में हो) थीं।[11]

अगर मौलाना और तजम्मुल हुसैन यह दावा कर रहे हैं कि मुसलमानों में कोई जाति, या ऊँच-नीच नहीं था तो उपरोक्त कथन जो सय्यद वलिउर्रहमान ने किया वह तो पूर्ण रूप से साक्ष्य ही दे रहा है कि मुस्लिम समाज में जातीय व्यवस्था पहले से ही व्याप्त है। इसी प्रकार जौन एलिया अपनी किताब "शायद" में पसमांदा मुसलमानों की वकालत की है और लिखा है कि अशराफ मुस्लिम समाज ने पाकिस्तान की माँग इसलिए की थी कि वो जमींदारी और सरकारी सहायता और उच्च पद पर बने रहने के लिए ऐसा किया था

अगर मौलाना और तजम्मुल हुसैन यह दावा कर रहे हैं कि मुसलमानों में कोई जाति, या ऊँच-नीच नहीं था तो उपरोक्त कथन जो सय्यद वलिउर्रहमान ने किया वह तो पूर्ण रूप से साक्ष्य ही दे रहा है कि मुस्लिम समाज में जातीय व्यवस्था पहले से ही व्याप्त है। इसी प्रकार जौन एलिया अपनी किताब "शायद" में पसमांदा मुसलमानों की वकालत की है और लिखा है कि अशराफ मुस्लिम समाज ने पाकिस्तान की माँग इसलिए की थी कि वो जमींदारी और सरकारी सहायता और उच्च पद पर बने रहने के लिए ऐसा किया था।

"बात यह है कि मुस्लिम लीग, खास तौर पर अलीगढ़ के तलबा (जिन्हें तालीम के बाद मुलाजमें दरकार थीं) जमीनदारों, जागीरदारों, छोटे ताजिरों, छोटे सरमायादारों (निवेशकों) --- वो मुआशारा "तब्काए-अशराफ यानी शेखों, सय्यदों, मुगलों और पठानों का मुआशरा था यह अशराफ अपने महरूम पसमांदा और पेशावर मुसलमान भाइयों को बड़ी हिकारत के साथ "अज्लाफ" कहते थे"

यह सदियों के मजलूम 'अज्लाफ' अशराफ की रईयत कहलाते थे।

तब्का-ए-अशराफिया चूँकि सदियों से मुराआत-याफ्ता (विशेषाधिकार प्राप्त) रहा था। इसलिए ज्यादा तालीम-याफ्ता, मुहज्जब था।"[12]

उपरोक्त लेख से ये पता चलता है कि मौलाना आजाद और उनके दूसरे सहयोगी जिनको संविधान सभा में स्थान दिया गया था पूर्ण रूप से जातिवादी थे और वो भारतीय मुसलमान का अशराफ अर्थात अग्रणी समाज का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

संदर्भ-

1. मौलाना अब्दुल दलाम आजाद'स कंट्रीब्यूशंस टु द इंडियन एजूकेशन सिस्टम: अ क्रिटिकल एनलिसिस इन द कंटेक्स्ट ऑफ द नेशनल एजूकेशन पॉलिसी 2020 बाई शहाबुद्दीन अहमद, रिसर्चगेट, वॉल्यूम 10, इशू 2, 2024, IJARIIE-ISSN (O) -2395-4396
2. तहरीक-ए-खिलाफत, काजी मोहम्मद अदील अब्बासी, तरक्की उर्दू ब्युरो, नई दिल्ली, 1978, पृ. 79
3. www.hindi.awazthevoice.in/opinion-news/pasmanda-discussion-and-maulana-azad-51176.html
4. मसला-ए-खिलाफत- मौलाना अबुल-कलाम आजाद, 54, मक्तबा-ए-जमाल, लाहौर, 2006)
5. वही
6. तहरीक-ए-खिलाफत, काजी मोहम्मद अदील अब्बासी, तरक्की उर्दू ब्युरो, नई दिल्ली, 1978, पृ. 74
7. वही, पृ. 15
8. वही, पृ. 80
9. वही, पृ. 74
10. इंडियन फ्रीडम फाइटर: प्रॉमिनेंट इंडियन मुस्लिम फ्रीडम फाइटर https://mpmma.com/indian-freedom-fighter
11. सय्यद शाह वलिउर्रहमान, मीर की दास्तान, मारिफ 1958, नम्बर-5, जिल्द 81, (दारुल-मुसन्नेफीन, आजमगढ़)
12. जौन-एलिया, शायद, किताबी दुनिया, नई दिल्ली, 1992, पृ. 20-21

पसमांदा मुसलमान और पटेल

डॉ. प्रदीप कुमार

डॉ. शिखा सिंह

देसी रियासतों का एकीकरण करने वाले सरदार पटेल की राय पसमांदा मुसलमानों के बारे में बिलकुल भिन्न थी। एक वस्तुगत अध्ययन

सरदार पटेल की गणना जवाहरलाल नेहरू और महात्मा गाँधी के साथ की जाती है, पर इनमें से प्रत्येक अलग ही साँचे में ढला हुआ था। कई मुद्दों पर उनका दृष्टिकोण और उसकी पृष्ठभूमि भी अलग थी। इसके बावजूद भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने की आकांक्षा ने तीनों को एक साथ जोड़े रखा। महात्मा गाँधी को बाकी दोनों ने बिना किसी हिचकिचाहट अपना नेता स्वीकार किया। कहीं-कहीं सैद्धांतिक मतभेदों के बावजूद व्यापक हितों के परिप्रेक्ष्य में इन दोनों ने महात्मा के विचारों के सामने सिर झुकाया। हिंदू-मुस्लिम एकता को महात्मा गाँधी ने देश के करोड़ों लोगों के लिए स्वराज्य लाने का एक अहम मुद्दा बनाया और पूरे स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान वे लगातार इसकी महत्ता को रेखांकित करते रहे। लेकिन हिंदू-मुसलमान संबंधों के प्रश्न पर गाँधी और नेहरू से अलग पटेल का मानना था कि जब तक अंग्रेजों का शासन रहेगा, यह एकता संभव नहीं है। प्रारंभ से ही पटेल ने अपनी सारी ताकत ब्रिटिश राज के खिलाफ लड़ने में लगाई, सांप्रदायिक एकता का स्थान उनके लिए बाद में था। सांप्रदायिक समन्वय के लिए भी वे लगातार प्रयत्नशील रहे, वे इसके विरुद्ध नहीं थे। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान किसी ने उन पर सांप्रदायिक पक्षधरता का आरोप नहीं लगाया। वे हिंदुओं और मुसलमानों के साथ हमेशा,एक सा व्यवहार करते रहे। हाँ, सरदार हिंदुओं में अधिक सहज अनुभव करते थे। वर्ष 1937 में जब मुस्लिम लीग का नेतृत्व जिन्ना के हाथ में आया तो पटेल के विचारों में भी परिवर्तन आया। उन्हें मुसलमानों की निष्ठा पर संदेह होने लगा। देश विभाजन एवं उसके परिणामों ने इसे और पुख्ता बना दिया। उनके सहयोगी, मौलाना आजाद और जय प्रकाश नारायण ही उन्हें खुले आम सांप्रदायिक कहने लगे।

पटेल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का गहन अध्ययन करने से पता चलता है कि भिन्नता में भी एकता पैदा की जा सकती है। उनके सार्वजनिक जीवन के प्रारंभिक वर्षों की बात करें तो ध्यान आता है कि सरदार गुजरात के सर्वमान्य नेता थे, उन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया। खिलाफत के सवाल पर जब महात्मा गाँधी ने अली बंधुओं के साथ सहयोग करने का निर्णय किया तो सहजवृत्ति से महात्मा गाँधी का अनुगमन करने वाले पहले व्यक्ति सरदार पटेल ही थे बाद में वे इस आंदोलन के अगुआ बन गए। अधिकांश कांग्रेसी नेताओं के विरोध के बावजूद पटेल को इस आंदोलन की प्रासंगिकता पर जरा भी संदेह नहीं था। उनकी दृष्टि स्पष्ट और सकारात्मक थी। उन्होंने अहमदाबाद में गुजरात राजनीतिक सम्मेलन का आयोजन किया। उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश अब्बास तैयब जी की अध्यक्षता में हुए इस सम्मेलन में पटेल ने आंदोलन के समर्थन में सर्वसम्मत से प्रस्ताव पास कराया। अपने भाषण में पटेल ने समझाया कि हिंदुओं को खिलाफत का समर्थन क्यों करना चाहिए। उन्होंने जन समर्थन जुटाने के लिए पूरे गुजरात का दौरा किया। मुसलमानों के सवाल पर अन्य कांग्रेसी नेता डगमगाते रहे परंतु पटेल गाँधी के साथ चट्टान की तरह खड़े रहे। पटेल ने 565 देशी रियासतों का एकीकरण करके देश को एक सूत्र में बाँधा और हिंदू मुस्लिम एकता को भी बढ़ावा दिया। वे इस बात को जान चुके थे कि भारत में रहने वाले मुसलमानों में विभेद स्पष्ट हैं। उन्होंने देशी भारतीय मुसलमान और स्वघोषित उच्चवर्गीय

विदेशी अशराफ मुसलमान के चाल-चरित्र, आचरण और विचार प्रवृत्ति के आधार पर एक दूसरे से भिन्न पाया। धर्मांतरित देशज पसमांदा मुसलमानों के लिए उन्होंने साधारण मुसलमान, निष्ठावान मुसलमान, गाँव के मुसलमान, खेतिहर मुसलमान आदि शब्दों का प्रयोग किया। सरदार पटेल अशराफ और पसमांदा मुसलमानों के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक भिन्नता से स्पष्ट रूप में अवगत थे। देशज मुसलमानों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि जहाँ तक सामान्य मुसलमानों का प्रश्न है उनकी जड़ें, पवित्र स्थान और उनके केंद्र यहीं है। सरदार को समझ थी कि द्विराष्ट्र सिद्धांत और पाकिस्तान निर्माण पर सामान्य मुसलमान जानबूझकर क्यों धोखा खा रहे हैं। विभाजन के समय जब देश में चारों तरफ सांप्रदायिक आग लगी तो सरदार पटेल ने पसमांदा रक्षक के रूप में प्रकट होकर हिंदू समाज से आह्वान करते हुए कहा कि हिंदू बीती को बिसार दें, जो हुआ वह सब शहरों में रहने वाले मुट्ठी भर लोगों की शरारत थी। गाँव के लाखों मुसलमान इस बारे में कुछ जानते तक नहीं, उन्होंने पाकिस्तान के बारे में सोचा ही नहीं। उन्होंने ऐसा क्या अपराध किया है कि उनके साथ भिन्न व्यवहार किया जाए?

इस संदर्भ में सरदार पटेल और नेहरू के दृष्टिकोण का देशज पसमांदा मुसलमानों के संबंध में अध्ययन और विश्लेषण और भी अधिक आवश्यक हो जाता है। भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू अपने राष्ट्र निर्माण के लिए जाने जाते हैं, लेकिन मुस्लिम समाज में सामाजिक सुधार और न्याय के प्रश्नों पर वह निष्क्रिय रहे। उनकी सरकार ने मुस्लिम पर्सनल लॉ में सुधार की दिशा में कोई कदम उठाना उचित नहीं समझा। अपने पिता की तरह प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी भी मुस्लिम समुदाय को एक सजातीय ईकाई मानने की गलती करती रही। मुसलमानों के मामले में वह अपने पिता की तरह अशराफ मौलवियों पर निर्भर रही। अशराफ मुसलमानों को खुश करने के लिए इंदिरा जी 1981 में एक कानून लाई और सुप्रीम कोर्ट के 1967 के फैसले को पलट कर अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का अल्पसंख्यक दर्जा बहाल कर दिया। यह सर्वविदित है कि एएमयू के अल्पसंख्यक दर्जे के कारण शैक्षणिक, गैर शैक्षणिक स्टाफ और छात्र के रूप में मुस्लिम आबादी का 80 प्रतिशत हिस्सा रखने वाले पसमांदा मुसलमानों का प्रवेश लगभग कठिन हो गया। राजीव गांधी अपनी माँ की मृत्यु की सहानुभूति में वोट पाकर ऐतिहासिक जीत के साथ भारत के प्रधानमंत्री बने। उनकी साफ सुथरी बेदाग, ईमानदार और धर्म निरपेक्ष छवि के कारण पसमांदा समुदाय को भी उम्मीद जगी। लेकिन अपनी मां और नाना की तरह उन्होंने भी मुस्लिम समाज को एक सजातीय ईकाई माना और अशराफ नेताओं, मौलानाओं और बुद्धिजीवियों की सलाह पर काम करते रहे। पसमांदा समुदाय के संबंध में राहुल गांधी और प्रियंका गांधी का रवैया भी बहुत स्पष्ट नहीं है। उनकी मूल समस्याओं को लेकर अब तक उनके क्रियाकलापों में भी कोई स्पष्टता नहीं झलक रही है। सच्चर समिति की रिपोर्ट के चैप्टर 10 के अनुसार पसमांदा मुसलमानों की हालत समाज में बहुत अच्छी नहीं है। वे आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक क्षेत्र में अन्य से पिछड़े और दबे हैं। पसमांदाओं को सामाजिक न्याय दिलाने का आंदोलन, आजादी से पहले ही शुरू हो चुका था। उस समय जुलाहा (बुनकर) समुदाय से आने वाले अब्दुल कय्यूम अंसारी और मौलाना अली हुसैन असीम बिहारी इसके अग्रणी नेता थे और इन्होंने मुस्लिम लीग की सांप्रदायिक राजनीति का विरोध किया था। इसकी शुरुआत स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जिन्ना के 'द्विराष्ट्र सिद्धांत' का विरोध करने के लिए मोमिन कांफ्रेंस बनाकर की गई। स्वतंत्रता के बाद 1980 के दशक में, महाराष्ट्र के अखिल भारतीय मुस्लिम ओबीसी संगठन ने इस समुदाय के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी और महाराष्ट्र में पसमांदा मुस्लिमों को ओबीसी सूची में शामिल किया गया। 90 के दशक में डॉक्टर एजाज अली (आल इंडिया बैकवर्ड मुस्लिम मोर्चा), अली अनवर (आल इंडिया पसमांदा मुस्लिम समाज), और शब्बीर अंसारी ने अपने-अपने संगठनों के माध्यम से इस आंदोलन को बल दिया। पसमांदा समाज के लोग देश के लगभग 18 राज्यों में हैं। उ प्र, बिहार, राजस्थान, तेलगांना, कर्नाटक, मध्य प्रदेश में इनकी संख्या अधिक है। सबसे ज्यादा संख्या उत्तर प्रदेश में है और हर विधानसभा सीट पर इनकी उपस्थिति अच्छी खासी है, जिनमें करीब 44 जातियाँ जैसे राइनी, इदरीसी, नाई, मिरासी, मुकेरी, बारी, घोसी शामिल हैं। जनसंख्या के आधार पर देखें तो असम और बंगाल में मुस्लिम जनसंख्या 25-30 प्रतिशत, बिहार में करीब 17 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में करीब 20 प्रतिशत, दिल्ली में 10-12 प्रतिशत, महाराष्ट्र में करीब 12 प्रतिशत और केरल में 30 प्रतिशत है।

यह सर्वविदित है कि देशज पसमांदा समाज भारत का सबसे उपेक्षित और वंचित समाज है। वह अशराफ की सांप्रदायिकता और नस्लीय, जातीय उत्पीड़न को सहता

चला आ रहा है। जब भी मुस्लिम समाज में अशराफ सांप्रदायिकता, पाकिस्तान निर्माण, लीग का चरित्र और भारत में रह गए मुसलमानों की चर्चा होती है तो सेकुलर लिबरल बुद्धिजीवियों द्वारा सरदार पटेल की नकारात्मक छवि ही प्रस्तुत की जाती रही है। जबकि सरदार पटेल का व्यक्तित्व, सकारात्मक सोच, कर्म और सद्भाव वाला था। वे त्वरित, कड़े, बुद्धिमत्तापूर्ण और न्यायप्रिय फैसले लेने के अभ्यस्त थे। यह उनकी कार्यशैली की एक विलक्षण विशेषता थी कि वे बिना अशिष्ट हुए अपने फैसलों पर दृढ़ और अडिग रहे। अशराफ ही भारत की सांप्रदायिकता का मूल कारण रहे हैं। हिंदू सांप्रदायिकता शब्द अशराफ द्वारा जनित मुस्लिम सांप्रदायिकता के प्रतिक्रियास्वरूप ही अस्तित्व में आया। इससे निपटने में सरदार पटेल किसी भी पक्ष पर नरमी नहीं बरतते थे। अनेक घटनाओं से साबित है कि पटेल ने हिंदू और सिख अपराधियों को नहीं बख्शा और उनसे मुसलमानों की रक्षा की। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबंध भी इसी का एक उदाहरण है। सरदार पटेल सांप्रदायिकता से भलीभांति परिचित थे, उससे निपटना भी जानते थे और निपटा भी। विडंबना यह है कि सरदार पटेल को मुस्लिम विरोधी साबित करने के लिए अशराफ वर्ग, तथाकथित सेक्युलर लिबरल लोगों ने युद्ध स्तर पर उनके खिलाफ नैरेटिव चलाया। मौलाना आजाद ने उन्हें खुले रूप से सांप्रदायिक कहा था। सरदार द्वारा संप्रदायिकता से निपटने के लिए देशहित में उठाए गए कदमों को मौलाना हिंदू समर्थक कहते थे। सत्य यह है कि मौलाना आजाद कांग्रेस में अशराफ वर्ग के हितों के सबसे बड़े पैरोकार थे और सरदार पटेल किसी भी धर्म, संप्रदाय के प्रति पक्षपात की भावना, संकीर्णता और दुराग्रह नहीं रखते थे। महात्मा गांधी ने तो यहाँ तक कहा है कि सरदार को मुसलमान विरोधी कहना सच्चाई का उपहास उड़ाना है। सरदार पटेल मौलाना आजाद, मौलाना हिफ्जुर रहमान, डॉ. सैयद महमूद, मियां इफ्तिखारउद्दीन चौधरी, खलीकुज्जमा, कासिम रिजवी, जोश मलीहाबादी आदि के क्रियाकलापों, ढुलमुल रवैये, मुस्लिम सांप्रदायिकता और मुस्लिम लीग के प्रति नरम रुख, दोहरी बातें और धोखा देने की प्रवृत्ति को अच्छी तरह जान और समझ चुके थे। आजादी के बाद सत्ता हस्तांतरण के समय नवाबों के व्यवहार ने भी अशराफ तबके की निष्ठा के बारे में सरदार के मन में संदेह बढ़ाने का कार्य किया। अशराफ नेताओं में विशेष रूप से डॉ. सैयद महमूद (कांग्रेसी) और मौलाना हिफ्जुर रहमान (जमात ए उलेमा ए हिंद) को डाँटते और लताड़ते हुए पटेल ने कहा था कि आप लोगों की इस नाजुक घड़ी में भारतीय संघ के प्रति निष्ठा की घोषणा मात्र ही पर्याप्त नहीं है, आपको इसे प्रमाणित करना होगा। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि जब पाकिस्तान ने सीमांत कबायलियों की मदद से भारतीय क्षेत्र पर हमला किया तो आप लोगों ने इसकी खुली निंदा क्यों नहीं की? क्या भारत के विरुद्ध हुए हर हमले की भर्त्सना करना आपका कर्तव्य नहीं है? सरदार साहब ने बड़े कड़े शब्दों में उन्हें पृथकतावादी मानसिकता छोड़कर हिंदुओं तथा अन्य के साथ एक ही नाव में रहना एवं साथ-साथ डूबना या तैरना सीखने का आह्वान किया। उन्होंने कहा था, "मैं आप लोगों से स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि आप दो घोड़ों की सवारी नहीं कर सकते, जो आपको पसंद हो, वह आप चुन लें। अशराफ का चरित्र सदैव दोहरे रवैये वाला रहा है। जहाँ तक पसमांदा मुसलमान की बात है तो बकरोल के नौकर मुसलमान, कर्मसाद के किराएदार मुसलमान, साबरमती आश्रम के मुसलमान, गाँव के मुसलमान आदि पिछड़े मुसलमान में भिन्न प्रवृत्ति, विचार, व्यवहार और आचरण भी मिला है।

सरदार पटेल इस बात को जान, समझ, परख चुके थे कि भारत में रहने वाले मुसलमानों में विभेद स्पष्ट है. वह देसी भारतीय मुसलमान और उच्चवर्गीय स्वघोषित विदेशी अशराफ मुसलमान के चाल, चरित्र, आचरण, विचार और प्रवृत्ति के आधार पर उन्हें एक दूसरे से बहुत भिन्न पाते थे। धर्मांतरित देशज पसमांदा मुसलमानों के लिए कहीं वह साधारण मुसलमान, सामान्य मुसलमान, निष्ठावान मुसलमान, गाँव के मुसलमान, खेतीहर मुसलमान जैसे शब्द प्रयोग में लाते थे। अतः यह तो स्पष्ट है कि वह अशराफ और पसमांदा के विभेद से भलीभांति परिचित थे और वह उनके सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक भिन्नता से भी अवगत थे। वह खेतिहर हिंदू और खेतिहर मुसलमानों में भेद नहीं करते थे। उनकी मेहनत और पीड़ाओं को एक समझते थे और कहा करते थे कि प्रकृति, धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करती। उन्होंने अपने धर्मबंधुओं से अपील की थी कि वह मुसलमानों पर अविश्वास करना छोड़ दें। अगर आप समझते हैं कि उनके मुसलमान होने के कारण आप निष्ठावान मुसलमानों को लगातार परेशान करते रहेंगे, तो हमारी स्वतंत्रता सार्थक नहीं होगी।

सरदार पटेल को देशज पसमांदा मानस की समझ थी और वह इस बात से बेहद परेशान रहे कि द्विराष्ट्र सिद्धांत और पाकिस्तान निर्माण पर सामान्य मुसलमान

सरदार पटेल इस बात को जान, समझ, परख चुके थे कि भारत में रहने वाले मुसलमानों में विभेद स्पष्ट है. वह देसी भारतीय मुसलमान और उच्चवर्गीय स्वघोषित विदेशी अशराफ मुसलमान के चाल, चरित्र, आचरण, विचार और प्रवृत्ति के आधार पर उन्हें एक दूसरे से बहुत भिन्न पाते थे। धर्मांतरित देशज पसमांदा मुसलमानों के लिए कहीं वह साधारण मुसलमान, सामान्य मुसलमान, निष्ठावान मुसलमान, गाँव के मुसलमान, खेतीहर मुसलमान जैसे शब्द प्रयोग में लाते थे। अतः यह तो स्पष्ट है कि वह अशराफ और पसमांदा के विभेद से भलीभांति परिचित थे और वह उनके सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक भिन्नता से भी अवगत थे। वह खेतिहर हिंदू और खेतिहर मुसलमानों में भेद नहीं करते थे

जानबूझकर क्यों धोखा खा रहे हैं। ऐसे नेता की अंधभक्ति क्यों कर रहे हैं जो उन्हें गलत रास्ते पर ले जा रहा है। मुस्लिम लीग की बढ़ती लोकप्रियता का मुकाबला करने के लिए पटेल ने कांग्रेस को सुझाव दिया कि मुस्लिम लीग के संभ्रांत मुसलमानों (अशराफ) नेताओं के बजाय कांग्रेस को सामान्य मुसलमानों (पसमांदा) से बात करनी चाहिए। सरदार पटेल अपनी सोच, विचार, आचरण, व्यवहार से पूर्णरूपेण पसमांदा हितैषी थे। यह बात तब और स्पष्ट रूप से परिलक्षित होकर देश के सामने आती है जब कांग्रेस की अशराफ लॉबी के सर्वोच्च नेता मौलाना आजाद के प्रबल विरोध के बावजूद, उन्होंने बिहार राज्य में प्रथम पसमांदा आंदोलन के गैर कांग्रेसी नूर मोहम्मद और अब्दुल कयूम अंसारी, जिन्होंने चुनाव में मुस्लिम लीग को हराया था, को बिना कांग्रेस पार्टी की सदस्यता दिलवाए, मंत्रिमंडल में जगह दिलवाई। यह अपने आपमें एक विडंबना ही थी कि पिछड़े मुस्लिम प्रतिनिधित्व को मौलाना आजाद नकार रहे थे और पटेल दृढ़ता, न्यायप्रियता के साथ उन्हें अधिकार दिलवा रहे थे। इस प्रकरण में देशज पसमांदा मुसलमानों के प्रति अशरफ मुसलमानों की विकृत मानसिकता और हिंदू समाज की सद्भावना स्पष्ट रूप से प्रकट होती है।

भारत के इतिहास में यह दूसरा अवसर था, जब मोहम्मद बिन तुगलक के बाद किसी ने धर्मांतरित देशज पसमांदा को हक अधिकार और सरकार में जगह दिलाने का प्रयास किया। वर्तमान सरकार को चाहिए कि सरदार पटेल की विशाल प्रतिमा के प्रांगण में उनके द्वारा देशज पसमांदा समाज के लिए किए गए कार्य को शिलालेख पर लिखवाकर स्थापित करे ताकि दुनिया में यह सनद रहे कि जिसने भारत की कुल मुस्लिम आबादी के लगभग 90 फीसद भाग वाले मुसलमानों की राजनैतिक भागेदारी को सुनिश्चित किया, वो मुस्लिम विरोधी कैसे हो सकता है। आजादी के तुरंत बाद सरदार पटेल की मृत्यु से पसमांदा समाज का एक शुभचिंतक, उनका हितैषी उनसे बहुत ही विपरीत परिस्थितियों में जुदा हो गया, जिसका खामियाजा पसमांदा समाज

स्वतंत्रता सेनानी और प्रथम पसमांदा आंदोलन के सशक्त सिपाही अब्दुल कय्यूम अंसारी ने भी इन मुद्दों पर नेहरू को कई पत्र लिखे थे। जे.बी. कृपलानी ने हिंदू विवाह अधिनियम के समय कहा था कि नेहरू सरकार को मुसलमानों के लिए भी एक पत्नी विवाह की व्यवस्था करनी चाहिए और मुस्लिम समाज इसके लिए तैयार है। अगर कोई कमी हो तो उस पर भी विचार किया जाना चाहिए। शायद उनका इशारा असीम बिहारी के सामाजिक आंदोलन की ओर था। असीम बिहारी ने मुस्लिम समुदाय के भीतर सामाजिक न्याय, महिला शिक्षा और वयस्क शिक्षा की वकालत करने वाले एक विशिष्ट अभियान के माध्यम से पसमांदा मुस्लिम समुदाय के अंदर महत्त्वपूर्ण जागरूकता पैदा की थी

आज तक भुगत रहा है। आज भी अगर सरकार को सांप्रदायिकता से भलीभाँति निपटना है, तो उसे इस मामले में सरदार पटेल के दिशा-निर्देशों एवं उनके मॉडल का अनुसरण करना चाहिए।

स्वतंत्रता सेनानी और प्रथम पसमांदा आंदोलन के सशक्त सिपाही अब्दुल कय्यूम अंसारी ने भी इन मुद्दों पर नेहरू को कई पत्र लिखे थे। जे.बी. कृपलानी ने हिंदू विवाह अधिनियम के समय कहा था कि नेहरू सरकार को मुसलमानों के लिए भी एक पत्नी विवाह की व्यवस्था करनी चाहिए और मुस्लिम समाज इसके लिए तैयार है। अगर कोई कमी हो तो उस पर भी विचार किया जाना चाहिए। शायद उनका इशारा असीम बिहारी के सामाजिक आंदोलन की ओर था। असीम बिहारी ने मुस्लिम समुदाय के भीतर सामाजिक न्याय, महिला शिक्षा और वयस्क शिक्षा की वकालत करने वाले एक विशिष्ट अभियान के माध्यम से पसमांदा मुस्लिम समुदाय के अंदर महत्त्वपूर्ण जागरूकता पैदा की थी। इस संबंध में डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने कहा था कि सुधार की बात केवल हिंदुओं में ही क्यों होती है? क्या मुसलमान इस देश के नागरिक नहीं हैं, क्या उनमें वंचित लोग और महिलाएं नहीं हैं, क्या उनके समाज में सुधार की कोई जरूरत नहीं है? डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कहा था कि नेहरू सरकार में मुस्लिम समाज में व्याप्त भेदभाव के विरुद्ध सामाजिक सुधार का साहस नहीं है। कांग्रेस के नेताओं और जमीयत उलेमा-ए-हिंद के अति रूढ़िवादी अशराफ मौलानाओं ने मुस्लिम समाज में सुधार और सामाजिक न्याय के आरक्षण का कड़ा विरोध करते हुए कहा था कि मुस्लिम समाज शरिया कानून द्वारा शासित होता है और इस्लाम में कोई जातिवाद नहीं है। इनमें प्रमुख थे मौलाना आजाद, जाकिर हुसैन, रफी अहमद किदवई, सैयद महमूद, तजामुल हुसैन, मौलाना हिफ्जुर रहमान और पूर्व मुस्लिम लीगर बेगम कुदसिया इजाज रसूल आदि। बेगम एजाज रसूल ने शरिया कानून की तारीफ में कहा था कि मुसलमानों को इस बात पर गर्व है कि शरिया कानून महिलाओं को बड़े अधिकार देता है। सरदार पटेल, डॉ. अंबेडकर, कृपलानी, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी, राजेंद्र प्रसाद और सी. राजगोपालाचारी जैसे अन्य नेता मुस्लिम समाज में सामाजिक सुधार की आवश्यकता पर जोर दे रहे थे। इस बीच, अशराफ मुस्लिम सांसदों ने हिंदू समाज में सुधार करने और मुस्लिम समाज में सुधार नहीं करने के लिए नेहरू की प्रशंसा की। यह एक विडंबना है कि जब आधुनिक विश्व सुधारों की सराहना कर रहा था, अशराफ नेता और बुद्धिजीवी सुधार न करने को सराहनीय कार्य बता रहे थे और नेहरू सरकार इस पूरे प्रकरण पर मूक दर्शक बनी रही। हिंदू समाज के व्यक्तिगत कानून में सुधार पर बहस के दौरान, कांग्रेस द्वारा मुसलमानों को एक अलग श्रेणी के रूप में मानने से केवल मुस्लिम सांप्रदायिकता को बढ़ावा मिला और समाज की प्रगति में बाधा उत्पन्न हुई। नेहरू इस मुद्दे पर धर्मनिरपेक्षता

की अपनी अवधारणा के साथ न्याय नहीं कर सके परंतु जीवन के अंत में उनके विचार बदल गए। मई 1964 में दिए गए अपने अंतिम साक्षात्कार में, उन्होंने विदेशी पहचान वाले अशराफ और स्वदेशी पसमांदा का अनुमोदन करते हुए कहा कि भारत में रहने वाले अधिकांश मुसलमान हिंदू से परिवर्तित मूल निवासी हैं। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी और पसमांदा समाज को इसका परिणाम भुगत चुका था। इंटरव्यू के कुछ ही दिन बाद नेहरू की मृत्यु हो गई।

नेहरू को एक राष्ट्र निर्माता के रूप में हमेशा याद किया जाएगा, लेकिन एक धर्मनिरपेक्ष देश के धर्मनिरपेक्ष प्रधानमंत्री के रूप में, मुस्लिम समाज के प्रति उनकी नीतियों ने मुस्लिम समाज की कुरीतियों को सुधारने, मुस्लिम समाज में सामाजिक न्याय और मुस्लिम सांप्रदायिकता को रोकने में बाधाएँ पैदा कीं और इन तरीकों से उन्होंने मुस्लिम तुष्टीकरण की नींव रखी। ऐसा लगता है कि इस सब के लिए उस समय के अशराफ नेता और जमीयत उलेमा-ए-हिंद के मौलाना जिम्मेदार थे, जिनके प्रभाव में आकर नेहरू ने मुस्लिम समाज में सुधारों से अपने कदम पीछे खींच लिए। अपने पिता की तरह प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी भी मुस्लिम समुदाय को एक सजातीय इकाई मानने की गलती करती रहीं। मुसलमानों के मामले में वह अपने पिता की तरह अशरफ नेताओं और मौलवियों पर निर्भर रहीं। मुस्लिम तुष्टीकरण के परिणामस्वरूप ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड का जन्म हुआ। उस समय इंदिरा सरकार बच्चों को गोद लेने के कानून में संशोधन ला रही थी लेकिन अशराफ नेताओं, बुद्धिजीवियों और मौलवियों ने इसका कड़ा विरोध किया। वे एक साथ आए और मुसलमानों के निजी कानून की रक्षा की आड़ में मध्ययुगीन सामंती मानसिकता, महिला और पसमांदा मुस्लिम विरोधी नस्लीय और जातीय पदानुक्रम को इस्लामी मानने वाले एक कट्टर धार्मिक संगठन का जन्म विडंबना ही कहा जाएगा। इंदिरा ने इस मुद्दे पर मूलनिवासी पसमांदा मुस्लिम समुदाय का रुख जानने की तनिक भी कोशिश नहीं की अन्यथा स्थिति कुछ हद तक सकारात्मक हो सकती थी। उस समय बिहार राज्य में कांग्रेस सरकार के मंत्री नूर मुहम्मद और मंत्री अब्दुल कय्यूम अंसारी के रूप में मूल पसमांदा समुदाय की प्रमुख और मुखर आवाजें मौजूद थीं। कमजोर, वंचित, स्वदेशी पसमांदा मुसलमानों को मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड की दया पर छोड़ दिया, जो एक मध्ययुगीन सामंती और धार्मिक कट्टरपंथी मानसिकता वाले अशराफ नेतृत्व का संगठन था। मुसलमानों में सामाजिक सुधार की अहम जिम्मेदारी से इंदिरा ने खुद को हमेशा दूर रखा। एक धर्मनिरपेक्ष देश के प्रधानमंत्री के लिए यह उचित नहीं था। इसका मुख्य कारण इंदिरा की अशरफ नेताओं पर अत्यधिक निर्भरता प्रतीत होती है। नजमा हेपतुल्ला और आबिदा अहमद महिला होने के बावजूद इस मामले में अशराफ मानसिकता का पालन करते हुए इंदिरा को गुमराह करती रहीं। राजीव गांधी ने मुस्लिम समाज को एक सजातीय इकाई माना। इससे देश और पसमांदा दोनों को भारी नुकसान उठाना पड़ा और राजीव की धर्मनिरपेक्ष छवि भी धूमिल हुई। जिस तरह से उन्होंने शाहबानो मामले में अशराफ मुसलमानों को खुश किया और ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के महिला विरोधी चरित्र को आत्मसात करते हुए संसद में कानून लाकर सुप्रीम कोर्ट के फैसले को पलट दिया। पसमांदा मुस्लिम महिलाओं को इससे गहरा आघात पहुँचा। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अशराफ मुसलमानों के बीच तलाक और बहुविवाह कोई बड़ा मुद्दा नहीं है। इसके विपरीत, भारतीय सभ्यता में गहरी जड़ें जमा चुके पसमांदा मुसलमानों में तलाक और बहुविवाह अशोभनीय और असामाजिक कृत्य माने जाते हैं। बाबरी मस्जिद और राम जन्मभूमि मामले में भी राजीव का पूरा झुकाव ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड और मौलवी अली मियाँ नदवी की ओर था। बाबरी मस्जिद का ताला खोलने, पसमांदा मुस्लिम और विवाद के मुख्य वादी हाशिम अंसारी को किनारे कर राजीव गांधी ने इस मुद्दे को और अधिक जटिल बना दिया। यहाँ यह याद रखना दिलचस्प होगा कि देश के मशहूर पसमांदा एक्टिविस्ट और मशहूर सर्जन डॉ. इजाज अली ने कहा था कि हमें बाबरी नहीं बराबरी चाहिए। तत्कालीन मीडिया रिपोर्ट्स के अध्ययन से साफ पता चलता है कि बाबरी मस्जिद का ताला खोलने और राम मंदिर का शिलान्यास करने का समझौता ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ के तत्कालीन अध्यक्ष अली मियां नदवी की सहमति और मिलीभगत का नतीजा था। राजीव गांधी का एक अन्य कार्य, उर्दू को उत्तर प्रदेश की दूसरी राज्य भाषा बनाना भी अशराफ मुस्लिम तुष्टीकरण का ही परिणाम था। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि उर्दू अशराफ मुसलमानों की भाषा है जिसे उन्होंने सांप्रदायिक उपकरण के रूप में विकसित किया। उत्तर प्रदेश में पसमांदा मुसलमानों की मूल भाषा हिंदी रही है और वे हिंदी भाषा की क्षेत्रीय बोलियाँ जैसे अवधी, ब्रज, भोजपुरी, बुंदेली आदि का पढ़ने-लिखने में भरपूर प्रयोग करते हैं। राजीव गांधी देश में कंप्यूटर क्रांति लाने के लिए जाने जाते हैं लेकिन मुस्लिम समाज में सामाजिक सुधार और सामाजिक न्याय के प्रति उनका नकारात्मक रवैया मूलनिवासी पसमांदा मुसलमानों के उत्थान में एक बड़ी बाधा बना। मुस्लिम मामलों पर सोनिया गांधी का रवैया उनके पति और सास जैसा ही रहा। अभी हाल ही में लोकसभा चुनाव से पूर्व राहुल गांधी की भारत जोड़ो यात्रा और भारत जोड़ो न्याय यात्रा में पसमांदा मुसलमानों को उचित हिस्सेदारी न देना यह दर्शाता है कि राहुल गांधी का मुस्लिम मामलों पर नजरिया वही रहेगा जो उनके पूर्वजों का था, जो न तो मुस्लिम समाज के हित में है और न ही देशहित में।

संदर्भ-

1. गांधी, एम के.; कम्यूनल यूनिटी पृ. 88
2. पारीख, नरहरि डी; सरदार वल्लभ भाई पटेल, भाग-1 पृ. 112-113
3. चोपड़ा, पी. एन.; सरदार वल्लभ भाई पटेल इन्डियाज आयरन मैन, पृ. 458
4. बक्षी, एस.आर.; सरदार पटेल: हिज

पॉलिटिकल आइडियोलॉजी, पृ. 79
5. गांधी, राजा मोहन; पटेल-ए-लाइफ, पृ. 346
6. शंकरदास, रानी धवन; वल्लभ भाई पटेल: पावर एंड ऑर्गनाइजेशन इन इंडियन पॉलिटिक्स, पृ. 213-214
7. दि हिंदस्तान टाइम्स, 22 अक्टूबर, 1990 अहमदाबाद में एक आमसभा में पटेल, 21 नवंबर, 1938, बाम्बे क्रॉनिकल, 22 नवंबर पृ. 2, 71
8. दास, दुर्गा (सं.); सरदार पटेल शेषाद्रि एच. वी. ट्रेजिक स्टोरी ऑफ पार्टीशन, पृ. 181
9. मेमन, बी.पी.; दि स्टोरी ऑफ इंटिग्रेशन ऑफ दि इंडियन स्टेट्स, पृ. 278
10. सरोन, एल.एन.; सरदार पटेल, नई दिल्ली, 1972
11. सीरवई, एन. एम; पार्टीशन ऑफ इंडिया: लीजेंड एंड रीएल्टी, मुंबई, 1989
12. शेषाद्रि, एच.वी.; दि ट्रेजिक स्टोरी ऑफ पार्टीशन, बंगलुर, 1982
13. शंकर, वी.; माई रेमिनिसेंस ऑफ सरदार पटेल, भाग 1 व 2, दिल्ली, 1974 व 1975
14. शंकर, वी; सरदार पटेल : सेलेक्ट कंपिटिंग 1945-1950 भाग 1 व 2', अहमदाबाद, 106
15. शंकरदास, रानी धवन: वल्लभभाई पटेल : पावर एंड ऑर्गनाइजेशन ऑफ इंडियन पॉलिटिक्स, हैदराबाद, 1988
16. सिंह, मुबारक; सरदार वल्लभभाई पटेल: दि मैन ऑफ फ्यू वर्ड्स एंड मेनी ट्राइम्स, लाहौर, 1945
17. सीतारमैया, बी. पट्टाभि, दि हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस, भाग 1 व 2, मुंबई, 1935-47
18. तेंडुलकर, डी.जी.; महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचंद गांधी, भाग 1-8, मुंबई, 1951
19. तेंडुलकर, विजय; दि लास्ट डेज ऑफ सरदार पटेल, मुंबई, 1993
20. थॉमसन, एडवर्ड; एनलिस्ट इंडिया फॉर फ्रीडम, लंदन, 1940
21. वोल्पर्ट, स्टेनली; जिन्ना ऑफ पाकिस्तान, न्यूयार्क, 1984
22. जकरिया, रफीक: राइज ऑफ मुस्लिम्स इन इंडियन पॉलिटिक्स, मुंबई, 1970
23. जकरिया, रफीक; इकबाल: दि पोयट एंड दि पॉलिटिशियन, नई दिल्ली, 1993
24. जकरिया, रफीक; दि वाइडनिंग डिवाइड, नई दिल्ली, 1995
25. पांडे, बी.एन. (सं.); 'दि इंडियन नेशनल मूवमेंट-1885-1947, सेलेक्ट डाक्यूमेंट्स' लंदन, 1979
26. पारिख, नरहरि डॉ.; सरदार वल्लभभाई पटेल, भाग 1 व 2. अहमदाबाद 1953
27. पटेल, पी.वी.; सरदार पटेल इंडियाज मैन ऑफ डेस्टिनी, मुंबई, 1964
28. पटेल, वल्लभ भाई; फॉर ए यूनाइटेड इंडिया: स्पीचेस ऑफ सरदार पटेल, 1947-50
29. प्रसाद, डॉ. राजेन्द्र; इंडिया डिवाइडेड, मुंबई, 1947
30. पंजाबी, के. एल.; दि इनडोमिटेबल सरदार, मुंबई, 1962
31. रवींद्रनाथ, पी.के. (सं.); सरदार पटेल, ए न्यू पर्सपेक्टिव, मुंबई, 1978
32. सागी, पी.डी. (सं.); 'ए नेशंस होमेज: लाइफ एंड वर्क ऑफ सरदार वल्लभभाई पटेल', मुंबई, 1951
33. सैयद, एम.एच.; मोहम्मद अली जिन्ना-ए पॉलिटिकल स्टडी, लाहौर, 1962
34. नेशनल एंड कम्युनल पॉलिटिक्स इन इंडिया, नई दिल्ली, 1995
35. सरदार वलभभाई पटेल इंडियाज आयरनमैन, नई दिल्ली, 1995
36. दास, दुर्गा; सरदार पटेल दि पॉलिटिशियन एंड दि स्टेट्समैन, विद्यानगर, 1972
37. दास, दुर्गा (सं.); सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेंस 1945-50, भाग 1 से 10, अहमदाबाद,
38. दास, दुर्गा; इंडिया फ्राम कर्जन टु नेहरू एंड आफ्टर, लंदन 1969
39. दास मनमथनाथ, पार्टीशन एंड इंडिपेंडेंस ऑफ इंडिया', नई दिल्ली, 1972
40. फारुकी, जिया-उल-हसन; दि देवबंद स्कूल एंड दि डिमांड फॉर पाकिस्तान, मुंबई, 1963
41. गांधी, एम. के; लेटर्स टु सरदार वल्लभभाई पटेल, अहमदाबाद, 1949
42. गांधी एम. के; कम्यूनल यूनिटी अहमदाबाद, 1965 गांधी एम.के., दि हिंदू-मुस्लिम यूनिटी, मुंबई 1965
43. गांधी, एम. के; यंग इंडिया, 1919-1922, मद्रास, 1922
44. गांधी, राजमोहन; ऐट लाइव्ज: ए स्टडी ऑफ हिंदू-मुस्लिम एनकाउंटर, नई दिल्ली, 1986
45. गांधी, राजमोहन; पटेल ए लाइफ, अहमदाबाद, 1973
46. गांधी, राजमोहन; दि गुड बोटमैन-ए पोर्ट्रेट ऑफ गांधी, नई दिल्ली, 1995
47. घोष, एस.के.; मुसलमान पॉलिटिक्स इन इंडिया, नई दिल्ली, 1984
48. घोष, सुधीर; गांधीज एमिसरी, मुंबई, 1967
49. गौस मुहम्मद, 'सेक्यूलरिज्म, सोसाइटी एंड लॉ इन इंडिया', दिल्ली, 1973
50. ग्लेंडन जोन, 'दि वायसराय ऐट वे' लंदन, 1971
51. अफजल इकबाल (सं.), राइटिंग्स एंड स्पीचेस ऑफ मौलाना मुहम्मद अली, भाग 7 व 2. लाहौर 1063
52. अहलूवालिया, बी. के.; फेसेट्स ऑफ सरदार पटेल, लुधियाना, 1974
53. अहमद, जमीलुद्दीन (सं.); स्पीचेस एंड राइटिंग्स ऑफ मि. जिन्ना, भाग 1 व 2. लाहौर 106064
54. अली, सी.एम.; दि इमरजेंस ऑफ पाकिस्तान, न्यूयार्क, 1967
55. अंबेडकर, बी. आर.; पाकिस्तान ऐंड द पार्टीशन ऑफ इंडिया, मुंबई, 1946
56. अशरफ, मुहम्मद; कैबिनेट मिशन एंड आफ्टर, लाहौर, 1947
57. एटली, सी. आर.; ऐज इट हेपंड, लंदन, 1954
58. आजाद, अबुल कलाम; इंडिया विन्स फ्रीडम, कलकत्ता, 1988
59. अजीज, के. के.; दि मेकिंग ऑफ पाकिस्तान, ए स्टडी इन नेशनलिज्म, लंदन, 1967
60. बहादुरलाल, जोहरी जे.सी. (सं.); स्टडी फॉर पाकिस्तान: ट्रेजिडी ऑफ दि ट्राइम्स ऑफ मुसलमान कम्युनिलिज्म इन इंडिया, नई दिल्ली, 1988
61. चंद तारा, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, भाग 1 से 4, नई दिल्ली, 1972
62. चोपड़ा, पी.एन.: दि सरदार ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 1995
63. चोपड़ा, पी.एन.: रोल ऑफ इंडियन मुसलमान इन दि स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, नई दिल्ली, 1979

रामानन्द शर्मा

पसमांदा : पहचान की यात्रा

पसमांदा के सशक्तीकरण की लड़ाई मुस्लिम समाज के भीतर मौजूद जाति-आधारित विभाजन के जवाब में विकसित हुई है। एक समाज वैज्ञानिक विश्लेषण

भारतीय मुसलमानों को अकसर एक बड़े और एकसमान समूह के रूप में देखा जाता है। लेकिन सच यह है कि इस समुदाय में सामाजिक विभाजन और पदानुक्रम मौजूद हैं। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि ये अंतर भारतीय उपमहाद्वीप की सामाजिक संरचना से प्रभावित हैं, जहाँ लंबे समय से स्पष्ट सामाजिक स्तर रहे हैं। दूसरी ओर, कुछ लोगों का मानना है कि भारतीय मुसलमानों के बीच ये सूक्ष्म भेद उनके खास सामाजिक, आर्थिक और ऐतिहासिक कारणों से समय के साथ बने हैं।

इस सामाजिक पदानुक्रम में पसमांदा मुसलमानों को सबसे निचले स्तर पर रखा जाता है। 'पसमांदा' शब्द फारसी भाषा से आया है, जिसका अर्थ है 'पीछे छूटे हुए'। यह शब्द उनकी ऐतिहासिक सामाजिक-आर्थिक स्थिति को दर्शाता है[1]। इस समूह में दलित, अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) और बहुत गरीब व हाशिए पर स्थित मुसलमान शामिल हैं। इनके साथ परंपरागत रूप से भेदभाव और बहिष्कार होता रहा है। हालांकि पसमांदा मुसलमान भारत के मुसलमानों का लगभग 80-85% हिस्सा हैं, फिर भी वे देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में बहुत कम प्रतिनिधित्व रखते हैं[2]। उनकी शिक्षा, रोजगार और राजनैतिक अवसरों तक पहुँच बहुत सीमित है, जिसके कारण उनके विकास में कई मुश्किलें आती हैं।

हालांकि भारत के विभिन्न हिस्सों में सामाजिक विभाजन देखा जा सकता है, लेकिन गरीब राज्यों में, खासकर बिहार जैसे क्षेत्रों में, यह आंतरिक सामाजिक स्तरीकरण बहुत अधिक स्पष्ट है। 2001 की जनगणना के अनुसार, बिहार में मुसलमानों की कुल आबादी 137.2 लाख थी, जो राज्य की कुल जनसंख्या का 16.5% और देश के कुल मुस्लिम समुदाय का 9.9% हिस्सा है[3]। इस समुदाय में पसमांदा मुसलमान, जैसे अंसारी और धुनिया शिक्षा, रोजगार और राजनैतिक भागीदारी जैसे क्षेत्रों में लगातार कठिनाइयों का सामना करते हैं।

समय के साथ, उनके सशक्तीकरण की लड़ाई ने एक मजबूत रूप लिया है, जो न केवल प्रणालीगत भेदभाव के खिलाफ है, बल्कि मुस्लिम समाज के भीतर मौजूद जाति-आधारित विभाजन के जवाब में भी विकसित हुई है। विभिन्न सरकारी आयोगों, जैसे काका कालेलकर आयोग, मंडल आयोग और रंगनाथ मिश्रा आयोग ने इस बात को स्वीकार किया है कि मुस्लिम समाज में भी जातिगत भेदभाव और विभाजन मौजूद है।

पसमांदा मुसलमानों का आंदोलन इस समुदाय की चुनौतियों से निपटने के लिए अधिक राजनैतिक प्रतिनिधित्व और सामाजिक-आर्थिक सुधारों की माँग करता है। यह आंदोलन इसलिए भी महत्त्वपूर्ण और जायज है, क्योंकि यह बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे गरीब राज्यों में सकारात्मक नीतियों की जरूरत को रेखांकित करता है, ताकि इन समुदायों के हालात में सुधार हो सके।

पसमांदा मुसलमानों का सामाजिक ढांचा और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था के कारण लोगों को तीन मुख्य समूहों में बांटा जाता है-अशरफ, अजलाफ और अरजाल। इसके अलावा कई छोटी बिरादरियाँ या उप-जातियाँ भी हैं[4]। अशराफ सबसे ऊँचे स्तर पर हैं। इनमें सैयद बिरादरी को सबसे सम्मानित माना जाता है, जो हिंदू धर्म के ब्राह्मणों

की तरह है। इस तरह की श्रेणी, जिसे "सैयदवाद" कहते हैं, ने समाज में असमानता को बढ़ाया है।

वहीं, अजलाफ (पिछड़े मुसलमान) और अरजाल (दलित मुसलमान) इस असमानता के खिलाफ आवाज उठाते रहे हैं। ये पिछड़े मुसलमान पहले निचली जाति के हिंदू थे, जो इस्लाम में आए। लेकिन इस्लाम अपनाने के बाद भी उनकी जिंदगी में खास बदलाव नहीं आया। वे इस्लाम के निचले स्तर पर रहे, जिसे वे जातिविहीन मानते थे। कारीगर, बुनकर (जुलाहे), सफाई कर्मचारी और अन्य मेहनतकश मुसलमानों को अक्सर गैर-अरब समझा जाता है और उन्हें 'अरजाल' यानी 'अपमानित' कहा जाता है। इनमें से कई लोग भारतीय आदिवासी और दलित समुदायों से धर्मांतरित हुए हैं। इन्हें भारी भेदभाव झेलना पड़ता है।

बिहार में यह भेदभाव इतना गहरा है कि ऊँची जाति के मुसलमान पिछड़े मुसलमानों को एक ही कब्रिस्तान में दफनाने से मना करते हैं[5] ये निचले स्तर के मुसलमान संख्या में बहुत हैं, लेकिन उनकी राजनैतिक ताकत बेहद कम है। इस कम प्रतिनिधित्व से सवाल उठता है कि भारत में उनके हितों की आवाज कौन उठाता है। 20वीं सदी की शुरुआत में अब्दुल कय्यूम अंसारी जैसे नेताओं ने ऊँची जाति के मुसलमानों के दबाव का विरोध किया। बाद में ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस जैसे संगठनों ने मुस्लिम लीग के सभी मुसलमानों पर नेतृत्व के दावे को चुनौती दी। ये विरोध दिखाते हैं कि यह संघर्ष पुराना है और निचले तबके के मुसलमान हमेशा से दबाव में रहे हैं।

उपेक्षित अजलाफ और अरजाल मुसलमानों ने पसमांदा आंदोलन के तहत सामाजिक और राजनैतिक न्याय के लिए संघर्ष शुरू किया। इसका नारा "दलित-पिछड़ा एक समान, हिंदू हो या मुसलमान" धर्म से परे एकता पर जोर देता है[6]। यह आंदोलन अशराफ अभिजात वर्ग के वर्चस्व का विरोध करता है। साथ ही, यह उस राजनैतिक सोच को चुनौती देता है जो सभी मुसलमानों को एक समान मानती है और उनके आंतरिक मतभेदों को नजरअंदाज करती है। 2006 की सच्चर समिति की रिपोर्ट हिंदुओं और मुसलमानों के बीच शिक्षा और आर्थिक स्थिति में अंतर को उजागर करती है। लेकिन यह मुस्लिम समुदाय के भीतर जाति आधारित भेदभाव पर भी प्रकाश डालती है[7]। रिपोर्ट में गैर-उच्च जाति के मुसलमानों को ओबीसी मुस्लिम श्रेणी में रखा गया है। यह दिखाती है कि ओबीसी मुसलमान शिक्षा, रोजगार और आर्थिक स्थिति में सामान्य मुसलमानों (अशराफ) और हिंदू ओबीसी से पीछे हैं।

इस विभाजन को समझने के लिए इतिहास को देखना जरूरी है। भारत के विभाजन से पहले केवल 19% मुसलमान उच्च जाति के थे, बाकी निम्न जातियों से थे। इस गहरे विभाजन ने मुस्लिम सामाजिक और राजनैतिक परिदृश्य को प्रभावित किया, खासकर बिहार में। बिहार में 17% मुस्लिम आबादी जाति के गहरे अंतर को दर्शाती है। राज्य में ओबीसी और ईबीसी मिलकर 63% आबादी बनाते हैं। वहीं, उच्च जातियाँ, जिनमें लगभग 5% उच्च-जाति मुसलमान शामिल हैं, केवल 15.52% हैं। मुसलमानों में शेख जैसे विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग को अधिक अवसर मिलते हैं। लेकिन अंसारी और धुनिया जैसे पसमांदा वर्ग सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन से जूझते हैं। अपनी बड़ी संख्या के बावजूद, पसमांदा मुसलमान नौकरियों, राजनीति और नेतृत्व पदों में कम प्रतिनिधित्व रखते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर वे भारत की 11.3% आबादी हैं, पर लोकसभा में उनकी हिस्सेदारी सिर्फ 0.8% है। यह अंतर समान प्रतिनिधित्व और समावेशन के संघर्ष को रेखांकित करता है।

पसमांदा मुस्लिमों की एक रैली

विभाजन से पहले की परिस्थितियाँ

20वीं सदी के पहले भाग में पसमांदा मुसलमानों में राजनैतिक और सामाजिक जागृति आई। उनके नेता अपनी उपेक्षा के खिलाफ संघर्ष कर रहे थे। इस आंदोलन की शुरुआत 1910 के दशक में हुई, जब जमीत-उल अंसार जैसे समूह उभरे। यह आंदोलन आगे बढ़ा और मोमिन कॉन्फ्रेंस में शामिल हो गया। इसकी अगुआई अब्दुल कय्यूम अंसारी जैसे प्रभावशाली नेताओं ने की। इस संगठन ने निम्न जाति के मुसलमानों की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को हल करने में बड़ी भूमिका निभाई, खासकर कोलकाता जैसे शहरों में। साथ ही, इसने राजनैतिक चेतना और एकजुटता को बढ़ाया। भेदभाव से बचने के लिए 1911 की जनगणना में जुलाहों ने 'अंसार' और 'मोमिन' जैसे नाम अपनाए। ये नाम उनकी नई पहचान को दिखाते हैं[8]।

मुस्लिम लीग के विभाजन के प्रस्ताव के समय पसमांदा मुसलमानों ने मोमिन कॉन्फ्रेंस

के तहत इसका कड़ा विरोध किया। ए.क्यू. अंसारी जैसे नेताओं ने लीग के "इस्लाम खतरे में" नारे को खारिज किया। उनका मानना था कि यह नारा उनकी आवाज दबाने की साजिश है। अंसारी ने कहा कि लीग सिर्फ कुलीन वर्ग के हितों की पक्षधर है। यह रईन, मंसूर, इदरीसी और कुरैश जैसे हाशिए पर पड़े समुदायों को नजरअंदाज करती है।

मोमिन सम्मेलन ने 80 मिलियन से अधिक पिछड़े मुसलमानों के लिए सामाजिक-राजनैतिक मुक्ति की माँग की। इसने अशराफ-प्रभुत्व वाले विमर्श को चुनौती दी और पसमांदा मुसलमानों के लिए एक व्यापक, समावेशी पहचान का दावा किया। 1920 के दशक के अंत तक, आंदोलन ने महत्त्वपूर्ण गति प्राप्त कर ली थी। इससे अखिल भारतीय मोमिन सम्मेलन का गठन हुआ[9]। इस मंच ने अशराफ-प्रभुत्व वाले अभिजात वर्गों के लिए तत्काल खतरा पैदा किया। साथ ही, वंचित मुस्लिम समूहों के लिए अधिक राजनैतिक प्रतिनिधित्व और सामाजिक स्वीकृति की लड़ाई लड़ी।

सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण 1931 की जनगणना के दौरान आया। जब उत्तर भारतीय मुसलमानों के सबसे बड़े व्यवसाय-आधारित समूहों में शुमार जुलाहा समुदाय (बुनकर) की जनसांख्यिकीय प्रासंगिकता उजागर हुई। बिहार के पसमांदा मुसलमानों, विशेषकर अंसारी/मोमिन समुदाय, ने भारत के विभाजन और 1940 के मुस्लिम लीग के लाहौर प्रस्ताव का स्पष्ट विरोध किया। अप्रैल 1940 में, 40,000 से अधिक अंसारी दिल्ली और पटना में एकत्र हुए और पाकिस्तान की मांग को खारिज करते हुए कहा कि यह प्रस्ताव उनकी आवाज नहीं है। उनका तर्क था कि मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों में भी मोमिन जैसे निचली जाति के मुसलमानों को सामाजिक-राजनैतिक असमानता का शिकार बनाया जाता रहा, इसलिए पाकिस्तान का विचार एक अव्यावहारिक 'राजनैतिक समाधान' था। पसमांदा नेताओं ने पाकिस्तान की अवधारणा को 'इस्लाम-विरोधी' करार दिया। उन्होंने अभिजात वर्ग के नेतृत्व वाली लीग के खिलाफ प्रतिरोध का आह्वान किया। मोमिन सम्मेलन ने अन्य उत्पीड़ित मुस्लिम समुदायों को भी एकजुट करने की कोशिश की। यह लीग की सांप्रदायिक राजनीति के खिलाफ एक संयुक्त मोर्चा बनाने के लिए था।

पसमांदा मुसलमान, खासकर वे भारतीय मुसलमान जो जाति के आधार पर भेदभाव झेलते हैं, यह एक अहम लेकिन कम चर्चित समस्या है। फिर भी, भारतीय राजनैतिक नेताओं ने इतिहास में उनके पक्ष में आवाज उठाई है। डॉ. बी.आर. आंबेडकर ने सबसे पहले मुस्लिम समाज में जाति के अंतर को पहचाना। अपनी 1946 की किताब पाकिस्तान या भारत का विभाजन में, उन्होंने 1901 की बंगाल जनगणना का हवाला दिया। इसमें मुसलमानों को तीन हिस्सों में बांटा गया था: अशराफ, अजलाफ, और अरजाल। उन्होंने बताया कि अरजाल मुसलमान भी हिंदू जाति व्यवस्था की तरह भेदभाव का शिकार होते हैं। उन्हें अक्सर मस्जिदों और कब्रिस्तानों से बाहर रखा जाता है

1940 के दशक में, ये समूह अपने विरोध को संगठित और मुखर रूप से व्यक्त करने लगे। इसका प्रमाण 'द सर्चलाइट' जैसे समाचारपत्रों में देखा जा सकता है। इस तरह, बिहार के पसमांदा मुस्लिमों ने विभाजन का कड़ा विरोध किया। उन्होंने एकता और सामाजिक न्याय की मांग उठाई। राजनैतिक मान्यता, अलग निर्वाचन व्यवस्था और विशेष नीतियों की उनकी मांग अशरफों के स्थापित वर्चस्व को सीधी चुनौती देती थी। लेकिन मान्यता और न्याय का रास्ता जटिल रहा। शेखरा समुदाय इसका एक उदाहरण है, जो परंपरा से हड्डी बीनने का काम करता है। यह समुदाय कई पसमांदा समूहों की चुनौतियों को दर्शाता है। शुरू में इसे केंद्रीय ओबीसी और ईबीसी श्रेणियों में रखा गया था। ये लोग आरक्षण और न्याय के लिए लड़े। मगर समूह के भीतर पहचान की असंगतियों ने उनकी लड़ाई को कमजोर कर दिया। खास तौर पर, उन्होंने खुद को शेख बिरादरी का हिस्सा माना, जो परंपरागत रूप से अशराफ वर्ग में गिना जाता है।

भारतीय मुसलमानों में जाति-आधारित भेदभाव पर भारतीय राजनैतिक नेताओं के विचार

पसमांदा मुसलमान, खासकर वे भारतीय मुसलमान जो जाति के आधार पर भेदभाव झेलते हैं, यह एक अहम लेकिन कम चर्चित समस्या है। फिर भी, भारतीय राजनैतिक नेताओं ने इतिहास में उनके पक्ष में आवाज उठाई है। डॉ. बी.आर. आंबेडकर ने सबसे पहले मुस्लिम समाज में जाति के अंतर को पहचाना। अपनी 1946 की किताब पाकिस्तान या भारत का विभाजन में, उन्होंने 1901 की बंगाल जनगणना का हवाला दिया। इसमें मुसलमानों को तीन हिस्सों में बांटा गया था: अशराफ (उच्च वर्ग या विदेशी मूल के), अजलाफ (निचले दर्जे के धर्मांतरित), और अरजाल (सबसे पिछड़े)। उन्होंने बताया कि अरजाल मुसलमान भी हिंदू जाति व्यवस्था की तरह भेदभाव का शिकार होते हैं। उन्हें अक्सर मस्जिदों और कब्रिस्तानों से बाहर रखा जाता है। आंबेडकर ने मुस्लिम समाज पर इन अन्यायों को नजरअंदाज करने और सामाजिक सुधार का विरोध करने का आरोप लगाया। उन्होंने लिखा कि मुसलमान इन समस्याओं से अनजान हैं और इन्हें खत्म करने में रुचि नहीं लेते। बल्कि, वे अपने सामाजिक तौर-तरीकों में बदलाव के हर प्रयास का विरोध करते हैं। आंबेडकर ने मुसलमानों में जातिवाद की भी आलोचना की। उनका कहना था कि इस्लाम समानता सिखाता है, लेकिन फिर भी जाति का बंटवारा मौजूद है। दलित मुसलमानों को आमतौर पर मस्जिदों और कब्रिस्तानों में जगह नहीं मिलती थी।

कांशी राम ने निचली जातियों और पिछड़े समुदायों के लिए काम किया। उन्होंने इस आंदोलन में मुस्लिम नेताओं को जोड़ने की कोशिश की। उन्होंने देखा कि उच्च जाति के सैयद, शेख, मुगल और पठान मुस्लिम नेतृत्व पर हावी हैं। ये लोग निचली जाति के

मुसलमानों जैसे अंसारी, धुनिया और कुरैशी का दमन करते हैं। कांशी राम ने पसमांदा मुसलमानों को सशक्त बनाने पर जोर दिया। ये लोग हिंदू अनुसूचित जातियों से धर्म बदलकर मुसलमान बने हैं। उनका लक्ष्य था कि ये लोग नेतृत्व के पदों तक पहुँचे। हिंदू सुधार प्रयासों के उलट, मुसलमानों ने इन मुद्दों को सुलझाने की कोशिश बहुत कम की। आंबेडकर का मानना था कि ज्यादातर मुसलमान जाति को समस्या नहीं मानते और बदलाव का विरोध करते हैं। इसी तरह, राम मनोहर लोहिया ने भारतीय राजनेताओं की निंदा की। उनका कहना था कि ये लोग हिंदुओं और मुसलमानों में पिछड़ी जातियों जैसे दबे-कुचले समूहों की उपेक्षा करते हैं। आंबेडकर, लोहिया और कांशी राम के अनुयायी उनके विचारों से प्रभावित हैं। फिर भी, उन्होंने पसमांदा मुसलमानों के लिए बहुत कम किया। राजनीति में पसमांदा मुसलमानों के साथ भेदभाव होता है। जब वे चुनाव लड़ते हैं, तो उच्च जाति के अशराफ मुसलमान उनकी जाति का मजाक उड़ाते हैं। वे उन्हें हराने की पूरी कोशिश करते हैं। अशराफ उम्मीदवारों को वोट देना धार्मिक कर्तव्य के रूप में पेश किया जाता है। यह व्यवस्थित बहिष्कार पसमांदा आंदोलन को और मजबूती देता है।

विभाजन के बाद की परिस्थितियाँ

पसमांदा मुसलमान, जो मुख्य रूप से शिल्पकार, मजदूर, बुनकर, नाई, कसाई और अन्य कामगार वर्गों से थे, भारत के स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से शामिल रहे। विशेष रूप से व्यापार और लघु उद्योगों से जुड़े पसमांदा मुसलमानों ने खिलाफत आंदोलन और असहयोग आंदोलन में महात्मा गांधी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का साथ दिया। इनमें से ज्यादातर लोगों को पुलिस की बर्बरता और आर्थिक नुकसान झेलना पड़ा। बिहार और बंगाल के पसमांदा मुसलमानों ने ब्रिटिश नीतियों का विरोध किया और राष्ट्रवादी आंदोलनों में भाग लिया। जहाँ अधिकांश अभिजात मुसलमान दो-राष्ट्र सिद्धांत के पक्ष में थे, वहीं बड़ी संख्या में पसमांदा मुसलमान विभाजन के खिलाफ थे। उन्हें पता था कि यह ऊँची जाति के मुस्लिम अभिजात वर्गों को फायदा पहुँचाएगा, जबकि वे और अधिक वंचित हो जाएँगे।

विभाजन के बाद पसमांदा मुसलमान आर्थिक रूप से बर्बाद हो गए। बुनाई, चमड़े का काम और हस्तशिल्प जैसे पारंपरिक उद्योग राज्य के संरक्षण के अभाव में नष्ट हो गए। नए स्वतंत्र देश में उद्यम लड़खड़ा गए, जिससे उनकी आजीविका छिन गई। राजनैतिक रूप से भी वे हाशिए पर चले गए। अशराफ मुसलमान धार्मिक संस्थानों, राजनैतिक दलों और नेतृत्व की भूमिकाओं पर हावी रहे। मुस्लिम समुदाय में जाति आधारित भेदभाव जारी रहा। संख्यात्मक ताकत के बावजूद पसमांदा मुसलमानों को निम्न सामाजिक दर्जा दिया गया। शुरू में उन्हें सकारात्मक कार्रवाई का लाभ नहीं मिला। बाद में उन्हें अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) श्रेणी में शामिल किया गया, लेकिन यह उनके ऐतिहासिक नुकसान की भरपाई नहीं कर सका।

पसमांदा मुसलमान, जो मुख्य रूप से शिल्पकार, मजदूर, बुनकर, नाई, कसाई और अन्य कामगार वर्गों से थे, भारत के स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से शामिल रहे। विशेष रूप से व्यापार और लघु उद्योगों से जुड़े पसमांदा मुसलमानों ने खिलाफत आंदोलन और असहयोग आंदोलन में महात्मा गांधी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का साथ दिया। इनमें से ज्यादातर लोगों को पुलिस की बर्बरता और आर्थिक नुकसान झेलना पड़ा। बिहार और बंगाल के पसमांदा मुसलमानों ने ब्रिटिश नीतियों का विरोध किया और राष्ट्रवादी आंदोलनों में भाग लिया। जहाँ अधिकांश अभिजात मुसलमान दो-राष्ट्र सिद्धांत के पक्ष में थे, वहीं बड़ी संख्या में पसमांदा मुसलमान विभाजन के खिलाफ थे

पसमांदा मुस्लिम महाज (पीएमएम)

पसमांदा मुस्लिम महाज (पीएमएम) की स्थापना 1998 में बिहार के पत्रकार से राजनेता बने अली अनवर अंसारी ने की थी। इसका मकसद भारत में पसमांदा मुसलमानों के सामाजिक-आर्थिक और राजनैतिक हाशिए पर पड़े मुद्दों को उठाना और हल करना था। पसमांदा मुसलमान भारत की मुस्लिम आबादी का लगभग 85% हिस्सा हैं, पर उन्हें राजनीति में जगह नहीं मिली। उनकी आवाज को दबाया गया है।

अशराफ मुसलमानों का नेतृत्व हमेशा धार्मिक पहचान की राजनीति में उलझा रहा है। वे त्रिपल तलाक, बाबरी मस्जिद और नागरिकता संशोधन कानून जैसे मुद्दों पर जोर देते हैं। जबकि पसमांदा मुसलमानों की असली समस्याएं जैसे गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी और आर्थिक शोषण को नजरअंदाज करते हैं। पीएमएम का मानना है कि ज्यादातर मुसलमानों की चिंता धार्मिक प्रतीकों से नहीं, बल्कि इन बुनियादी मुद्दों से है। आंदोलन ने यह भी दिखाया कि सांप्रदायिक हिंसा, पुलिस की ज्यादती और आर्थिक परेशानियों का शिकार होने वाले ज्यादातर मुसलमान पसमांदा हैं। फिर भी, राजनैतिक दलों और संगठनों में नेतृत्व अशराफ मुसलमानों के हाथ में है। इसीलिए पीएमएम पसमांदा मुसलमानों के लिए आरक्षण और सकारात्मक नीतियों की माँग करता है।

कई पिछड़ी मुस्लिम जातियाँ अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) सूची में शामिल हैं। लेकिन आरक्षण का फायदा अक्सर ओबीसी में शामिल ऊँची मुस्लिम जातियों को मिल जाता है। पीएमएम चाहता है कि ओबीसी आरक्षण में उप-श्रेणीकरण हो, ताकि पसमांदा मुसलमानों को उनका हक मिले। साथ ही, यह माँग करता है कि दलित मुसलमानों को अनुसूचित जाति का दर्जा मिले। ये वे लोग हैं जो सफाई या चमड़ा जैसे काम करते हैं। इन्हें वही सुरक्षा और लाभ मिलने चाहिए जो दलित हिंदुओं, सिखों और बौद्धों को मिलते हैं।

आंदोलन ने पसमांदा मुसलमानों के पारंपरिक पेशों जैसे बुनाई, चमड़ा काम और छोटे उद्योगों के लिए सरकारी मदद की माँग की है। ये पेशे आर्थिक उदारीकरण और

सहायता की कमी से प्रभावित हुए हैं। बिहार और उत्तर प्रदेश में पीएमएम का राजनैतिक असर दिखता है। इसने पसमांदा मुसलमानों को संगठित किया है ताकि वे क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दलों में अपनी हिस्सेदारी माँग सकें। आंदोलन ने चुनावों में पसमांदा उम्मीदवारों को आगे बढ़ाया है। साथ ही, अशराफ नेताओं को जाति के मुद्दों की अनदेखी के लिए जवाबदेह ठहराया है।

बिहार में नीतीश कुमार की सरकार ने पसमांदा मुसलमानों की माँगों को गंभीरता से लिया और ओबीसी श्रेणी में उप-कोटा लागू किया। इससे पसमांदा समुदाय के लिए शिक्षा और रोजगार के अवसर बढ़े। यह कदम सामाजिक न्याय और आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में एक ठोस राजनैतिक पहल था।

उत्तर प्रदेश में पसमांदा मुद्दों के प्रति जागरूकता बढ़ने से राजनैतिक परिदृश्य बदला। समाजवादी पार्टी, बसपा, कांग्रेस और भाजपा जैसी पार्टियों को मजबूरन अशराफ मुस्लिम नेतृत्व की बजाय पसमांदा समुदाय की जरूरतों पर ध्यान देना पड़ा। खासकर भाजपा ने पसमांदा मतदाताओं को लुभाने के लिए लक्षित कल्याण योजनाएँ शुरू कीं और धार्मिक पहचान से ऊपर आर्थिक विकास को प्राथमिकता दी। यह रणनीति सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को हल करने की कोशिश को दर्शाती है।

राजनीति से इतर, पसमांदा मुस्लिम महाज (पीएमएम) ने शैक्षिक और नीतिगत क्षेत्रों में भी असर डाला। इस आंदोलन ने सरकार और शोधकर्ताओं को पसमांदा मुसलमानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। नतीजतन, सच्चर समिति रिपोर्ट (2006) और रंगनाथ मिश्रा आयोग रिपोर्ट (2007) सामने आई। इन रिपोर्टों ने साबित किया कि पसमांदा मुसलमान दलितों और आदिवासियों जितने ही पिछड़े हैं। इससे मुस्लिम पिछड़ेपन के अशराफ-केंद्रित पारंपरिक दृष्टिकोण को चुनौती मिली। पीएमएम का मानना है कि भारत में मुसलमानों के हाशिए पर होने का कारण धर्म नहीं, बल्कि जाति है। यह विचार सामाजिक संरचना की गहरी समझ को उजागर करता है।

हालांकि, पीएमएम को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। जमीअत उलेमा-ए-हिंद और ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड जैसे प्रभावशाली मुस्लिम संगठनों ने जाति-आधारित भेदभाव को स्वीकार करने से इनकार किया। उन्हें लगता है कि इससे मुस्लिम समुदाय की राजनैतिक एकता कमजोर हो सकती है। इसके अलावा, भारतीय राजनीति में ऊँची जाति के हिंदू और अशराफ मुस्लिम अभिजात वर्ग का दबदबा है। इससे पसमांदा आवाजों को राष्ट्रीय स्तर पर जगह मिलना मुश्किल हो जाता है।

फिर भी, बढ़ती राजनैतिक चेतना और जमीनी स्तर पर सक्रियता के साथ पीएमएम अपनी लड़ाई जारी रखे हुए हैं। यह आंदोलन सार्वजनिक विमर्श में अपनी मौजूदगी बढ़ा रहा है। इसका लक्ष्य एक ऐसा समान और न्यायपूर्ण सामाजिक-राजनैतिक ढांचा तैयार करना है, जिसमें पसमांदा बहुमत की समस्याओं को भारत की नीतियों में अनदेखा न किया जाए। यह प्रयास सामाजिक समावेशन और विकास की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

पसमांदा मुस्लिम समुदाय के कार्यकर्ताओं ने अब तक कई महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की हैं। उन्होंने रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़े सामाजिक मुद्दों को उठाकर एक नई और मजबूत आवाज बनाई है। यह आवाज बहुसंख्यक ताकतों के प्रभाव वाले प्रमुख राजनैतिक विचारों को चुनौती देती है। गरीबी और भेदभाव जैसे मुद्दों को सामने लाकर वे न सिर्फ सामाजिक असमानता से लड़ रहे हैं, बल्कि अपने समुदाय में एकता और सशक्तिकरण की भावना भी पैदा कर रहे हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में भी बड़ी प्रगति हुई है। 2004 में बना राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान आयोग (एनसीएमईआई) अधिनियम छह धार्मिक समुदायों-मुसलमान, ईसाई, सिख, बौद्ध, पारसी और जैन-द्वारा स्थापित शिक्षण संस्थानों को अल्पसंख्यक का दर्जा देता है। इस कानून ने पसमांदा मुसलमानों को अपने स्कूल खोलने का मौका दिया, जिससे शिक्षा तक पहुँच आसान हुई और सामाजिक-आर्थिक तरक्की के रास्ते खुले। संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 भी अल्पसंख्यक समूहों को अपनी शिक्षा व्यवस्था को सुरक्षित रखने और बढ़ाने का अधिकार देते हैं।

आरक्षण की माँग पसमांदा मुसलमानों के लिए लंबे समय से एक बड़ा मुद्दा रहा है। 1990 के दशक में यह आंदोलन तेज हुआ। 1994 में एसोसिएशन फॉर प्रमोटिंग एजुकेशन एंड एम्प्लॉयमेंट ऑफ मुस्लिम्स (एपीईईएम) नाम का संगठन बना, जिसने मुसलमानों के लिए अलग कोटा की वकालत की[10]। हालांकि यह आंदोलन अब कुछ कमजोर पड़ गया है, फिर भी ऑल इंडिया मुस्लिम पसमांदा महाज जैसे संगठन इसे राजनैतिक और शैक्षणिक मंचों पर जिंदा रखे हुए हैं। हाल ही में दिल्ली विश्वविद्यालय के रामजस कॉलेज जैसे संस्थानों में आरक्षण नीतियों पर बहस ने युवा शोधकर्ताओं का ध्यान इस ओर खींचा है।

राजनीति में भी पसमांदा मुस्लिम समुदाय की भागीदारी बढ़ी है। जुलाई 2022 में न्यूज18 की एक रिपोर्ट के मुताबिक, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भाजपा सदस्यों से पसमांदा मुसलमानों तक पहुँचने को कहा। हैदराबाद में पार्टी की बैठक में उन्होंने चुनावी गणित से ऊपर सोचने पर जोर दिया[11]। इसके बाद 2022 के दिल्ली नगर निगम चुनाव में भाजपा ने चार पसमांदा उम्मीदवारों को उतारा। मई 2022 में उत्तर प्रदेश के स्थानीय निकाय चुनावों में योगी आदित्यनाथ सरकार ने 395 मुस्लिम उम्मीदवार खड़े किए, जिनमें 90% पसमांदा थे[12]। इससे 61 मुस्लिम प्रतिनिधि चुने गए, जो पहले की तुलना में बहुत ज्यादा है। कई पसमांदा सदस्यों का मानना है कि बहुजन समाज पार्टी (बसपा) और समाजवादी पार्टी (सपा) ने उनकी अनदेखी की। जुलाई 2024 में भाजपा ने पसमांदा स्नेह संवाद यात्रा शुरू की, जो 15 अक्टूबर को खत्म हुई। यह तारीख एपीजे अब्दुल कलाम के जन्मदिन की है, जिन्हें पसमांदा समुदाय बहुत सम्मान देता है[13]। यह कदम 2024 के लोकसभा चुनाव से पहले पार्टी के आउटरीच का हिस्सा था। इन सबके बावजूद, समुदाय के असली विकास के लिए जमीनी स्तर पर ठोस परिणामों की जरूरत है।

चुनौतियाँ और आगे की राह

पसमांदा मुस्लिम समुदाय की वास्तविक प्रगति के लिए अनवर ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे पसमांदा मुस्लिम महाज के संस्थापक थे और 2006 से 2017 तक जनता दल

(यूनाइटेड) की ओर से राज्य सभा में रहे। बाद में उन्हें जनता दल (यूनाइटेड) से निष्कासित कर दिया गया था। यह फैसला तब हुआ जब उन्होंने पार्टी की उस नीति की खुली आलोचना की, जिसमें आरजेडी से संबंध तोड़कर भाजपा के साथ गठबंधन किया गया था[14]। 2022 में, अनवर ने दो खुले पत्र लिखे-एक प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को और दूसरा विपक्षी दलों के नेताओं को। इन पत्रों में, उन्होंने भाजपा द्वारा पसमांदा समुदाय के साथ किए जा रहे 'संवाद प्रयासों' के वास्तविक उद्देश्य और ईमानदारी पर सवाल उठाए। अनवर का मानना है कि पसमांदा आंदोलन, दलित-बहुजन आंदोलन का ही एक हिस्सा है, और यह तब तक अधूरा रहेगा, जब तक इसमें समाज के सबसे वंचित वर्ग 'पसमांदा-तरीन' (अर्जल) को सामाजिक न्याय और समावेश नहीं मिलता।

अंवर का मानना है कि भारतीय जनता पार्टी (बीजेपी) पसमांदा मुसलमानों के लिए एक सुरक्षित राजनैतिक मंच प्रदान नहीं करती। वे इस पार्टी पर सांप्रदायिक राजनीति करने का आरोप लगाते हैं। हालांकि, चुनाव परिणाम एक अलग तस्वीर पेश करते हैं। रामपुर और आजमगढ़ लोकसभा उपचुनावों में बीजेपी की जीत, जो समाजवादी पार्टी के गढ़ माने जाते हैं, यह दर्शाती है कि पसमांदा मुसलमानों का एक बड़ा हिस्सा बीजेपी का समर्थन कर रहा है[15]। फिर भी, समुदाय के भीतर आंतरिक गुटबाजी उनकी सामूहिक सौदेबाजी की क्षमता को कमजोर करती है, जिसके कारण संरचनात्मक परिवर्तन अभी भी दूर की कौड़ी बने हुए हैं। हाल के राजनैतिक जुड़ाव के प्रयासों से उनकी मांगों को कुछ हद तक उजागर करने में मदद मिली है। बावजूद इसके, सामाजिक और आर्थिक बदलाव को स्थायी रूप देने के लिए नीति-निर्माताओं का निरंतर ध्यान, अधिक प्रतिनिधित्व, और उनकी मांगों को बढ़ावा देने वाला एक एकीकृत आंदोलन आवश्यक है।

इस तरह, पसमांदा मुस्लिम समुदाय के सामने चुनौतियाँ तो हैं, लेकिन भविष्य की राह भी खुल रही है। अनवर जैसे नेताओं की सोच और भाजपा की चुनावी सफलता से यह साफ है कि समुदाय में बदलाव की चाहत है। पर असली प्रगति के लिए नीतिगत स्तर पर काम, सामुदायिक एकता और राजनैतिक प्रतिनिधित्व बढ़ाना होगा। तभी स्थायी बदलाव संभव हो सकेगा।

निष्कर्ष

पसमांदा मुसलमानों का संघर्ष सिर्फ सामाजिक न्याय की माँग नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक गलतियों को सुधारने का आह्वान है। सदियों की उपेक्षा के बाद भी उनकी मजबूती सामाजिक ढांचे को चुनौती दे रही है। वे शिक्षा, रोजगार और राजनीति में हक चाहते हैं। सच्ची तरक्की उनकी बात सुनने और वंचितों को ऊपर उठाने वाली नीतियों में है। आगे का रास्ता सामूहिक कोशिशों से बनेगा, जहाँ भेदभाव की जगह समानता ले और हर मुसलमान भारत के लोकतंत्र में बराबर का हिस्सेदार बने।

संदर्भ-

1. अनवर, अलि. 2005. मसावत की जंग, अनु. एम.आई. अली एवं जेड जौहर, नई दिल्ली: इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट
2. अहमद, ए. (2003). सोशल मोबिलिटी ऐंड पोलिटिसाइजेशन ऑफ कास्ट एमंग द राइंस ऑफ उत्तर प्रदेश. कंटेंपरेरी साउथ एशिया, 31(3), 442-457
3. योगिंदर सिकंद, मुस्लिम्स इन बिहार: फाइंडिंग्स ऑफ अ सर्वे. स्रोत: इंडो-एशियन न्यूज सर्विस, अक्टूबर 25, 2004
4. अहमद, आई. (2009). कैन देअर बी अ कैटेगरी कॉल्ड दलित मुस्लिम्स. स्टडीज इन इनेक्वैलिटी ऐंड सोशल जस्टिस, 64-81
5. आलम, एस. (2022). रिविजिटिंग द पसमांदा पोलिटिकल डिस्कोर्स: फीजिबिलिटी, फेल्योर ऐंड द वे फॉरवर्ड. सोशल चेंज, 52(1), 76-92.
6. अली, एम. (2010) पॉलिटिक्स ऑफ पस्मांदा मुस्लिम्स: अ केस स्टडी ऑफ बिहार. हिस्ट्री ऐंड सोशियोलॉजी ऑफ साउथ एशिया, 4(2), 129-144
7. राय, एस.के. (2018). सोशल हिस्ट्रीज ऑफ एक्सक्लूजन ऐंड मोमेंट्स ऑफ रेसिस्टेंस: द केस ऑफ मुस्लिम जुलाहा वीवर्स इन कोलोनियल यूनाइटेड प्रोविंसेज. द इंडियन इकोनॉमिक ऐंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, 55(4), 549-574
8. अंसारी, के.ए. (2009). रीथिंकिंग द पसमांदा मूवमेंट. एकोनॉमिक ऐंड पोलिटिकल वीकली, 8-10
9. सज्जाद, एम. (2014). मुस्लिम पॉलिटिक्स इन बिहार: चेंजिंग कॉन्टूर्स. राउटलेज इंडिया
10. कासमी, ए.यू, एंड रॉब, एम.ई. (सं.) (2017). मुस्लिम्स अगेंस्ट द मुस्लिम लीग. कैंब्रिज प्रेस
11. आजम, एस. (2023). द पोलिटिकल लाइफ ऑफ मुस्लिम कास्ट: आर्टिकुलेशंस ऐंड फ्रिक्शंस विदिन अ पसमांदा आइडेंटिटी. कंटेंपरेरी साउथ एशिया, 31(3). 426-441
12. आलम, एम.एस. (2014). एफर्मेटिव ऐक्शन फॉर मुस्लिम्स? आर्गुमेंट्स, कंटेंशंस ऐंड आल्टरनेटिव्ज. स्टडीज इन इंडियन पॉलिटिक्स, 2(2), 215-229
13. कौशिक, पी. (2024). लेटेस्ट न्यूज: लेटेस्ट हेडलाइंस तुडे, लेटेस्ट करेंट अफेयर्स न्यूज - न्यूज 18 https://www.news18.com/news/politics/after-azamgarh-win-pm-modi-asks-up-bjp-to-explore-newsocial-equations-focus-on-pasmanda-muslims-5483179.html
14. शर्मा, एस. (2023, मई 14). यूपी नगर निकाय चुनाव. 2023: बीजेपी फील्डेड 395 मुस्लिम कैंडिडेट्स इन लोकल बॉडी पोल्स। हाउ मेंई ऑफ देम वॉन? इंडियाटीवीन्यूज, कॉम; इंडिया टीवी न्यूज https://www.indiatvnews.com/uttar-pradesh/up-nagar-nikay-chunav-2023-bjp-fielded-395-muslim-candidates-in-local-body-polls-how-many-of-them-won-minority-cell-latest-updates-yogi-adityanath-2023-05-14-870610
15. पीटीआई. (2023, जुलाई 13). बीजेपी माइनॉरिटी मोर्चा टु लांच पसमांदा आउटरीच यात्रा फ्रॉम एक्स-प्रेसिडेंट कलाम'स डेथ एनिवर्सरी. द प्रिंट https://theprint.in/india/ bjp-minority-morcha-to-launch-pasmanda-outreach-yatra-from-ex-president-kalams-death-anniversary/1668470/

मुख्य धारा का नारीवाद एवं पसमांदा स्त्री एक विश्लेषण

अलीशा बानो

अमित कुमार

नारीवाद की एक मुख्य धारा है, लेकिन पसमांदा स्त्री इस विमर्श से बाहर है। क्यों और क्या हैं उसके मूलभूत प्रश्न, एक रूपरेखा

पहचान की लड़ाई एक ऐसा सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलन है जिसमें एक समुदाय उत्पीड़क के खिलाफ अपने समुदाय के अधिकारों और हितों को मुखर आवाज देता है लेकिन इसके दूसरे पक्ष को देखा जाए तो पहचान की राजनीति की सबसे प्रमुख समस्या ये है कि यह राजनीति अपने ही समुदाय के अंत:विभाजन को दरकिनार करती है जिसकी वजह से समूह के पहले से ही सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक रूप से सशक्त पुरुष और महिला वर्ग उस राजनीति में वर्चस्व स्थापित कर लेते हैं और वंचित वर्ग वंचित ही रह जाते हैं। पसमांदा मुस्लिम राजनीति में पसमांदा महिला की स्थिति इसका एक अभूतपूर्व उदाहरण है। पसमांदा शब्द फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है जो पीछे छूट गए। इस प्रकार से यह शब्द मुस्लिम समाज के उस वर्ग के लिए प्रयुक्त किया जाता है जो आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक रूप से समाज की मुख्यधारा से पीछे रह गए हैं। इस उपेक्षा की श्रृंखला में जो सबसे अंतिम पायदान पर है वो पसमांदा महिलाएँ हैं जो पसमांदा आबादी का आधा हिस्से का प्रतिनिधित्व करती है तथा मुस्लिम समाज की पिछड़ी, आदिवासी और दलित जातियों से संबंध रखती हैं और समाज की मुख्यधारा से दूर, बहुआयामी बहिष्कार और भेदभाव का शिकार है । पसमांदा महिलाएँ जो एक तरफ बाहरी शोषण जिसमें दलित और पिछड़ी जाति होने के नाते शोषण का शिकार होती हैं, वहीं दूसरी ओर आंतरिक शोषण जिसमें महिला होने के नाते पसमांदा पुरुषों की पितृसत्ता का शिकार होती हैं। ये लेख पसमांदा महिलाओं के सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनैतिक मुद्दों को केंद्र में रखकर उनके वैचारिक पक्ष के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालता है।

पसमांदा आंदोलन और पसमांदा स्त्री

वैचारिक एवं सैद्धांतिक रूप से इस्लाम में जाति पदानुक्रम का कोई उल्लेख नहीं है, लेकिन व्याहारिक तौर पर भारतीय इस्लाम में यह तत्त्व मौजूद है। मुस्लिम जाति व्यवस्था कई मायनों में हिंदू जाति व्यवस्था से मिलती जुलती है, जैसे अंतर्विवाह को अपनाना, सहभोजिता में दूरी बनाए रखना, पदानुक्रम की धारणा बनाना और जन्म के आधार पर जाति की सदस्यता अपनाना। इस संदर्भ में गौस अंसारी(1960), इंतियाज अहमद (1975), अली अनवर (2001), मसूद आलम फलाही(2007) आदि लेखकों ने ध्यान दिलाया है। गौस अंसारी ने भी अपने अवलोकन में पाया कि जब इस्लाम भारत में आया तो वह समानतावादी नहीं था।

वर्तमान में भारत का मुस्लिम समाज दो भागों में बंटा हुआ है। अशराफ और गैर-अशराफ। अशराफ को चार भागों में पहचाना जाता है सैयद, शेख, मुगल और पठान। जिनमें आपस में अंतर्जातीय विवाह हो सकते हैं। सैय्यद अपने को विदेशी मूल का मानते हैं और विदेशी शब्द की विशेषता के भाव को दर्शाते हैं जो ज्यादातर प्रशासनिक और धार्मिक शक्ति रखते हैं और खुद को पैगंबर या उनके परिवार से जोड़ते हैं। शेख स्वयं को पैगंबर के कबीले, कुरैश से जोड़ते हैं वहीं मुगल बाबर और पठान पाकिस्तान -अफगानिस्तान के पख्तून से खुद को जोड़ते हैं। गैर-अशरफ मुसलमान स्थानीय और मूल निवासी माने जाते हैं। जिनके पूर्वज हिंदू धर्म से आते हैं। गैर अशराफ के अंतर्गत अजलाफ और

अरजाल वर्ग आते हैं जिनको संयुक्त रुप से पसमांदा कहा जाता है। इसमें जोलाहा, मनिहार, मंसूरी, नाई, हज्जाम, धोबी आदि जातियाँ शामिल है। (जरीना अहमद, 1962)

पसमांदा आंदोलन, जो भारत में निचली जाति के मुसलमानों के अधिकारों के लिए लड़ता है, ने ज्यादातर दो चीजों पर ध्यान केंद्रित किया है: निचली जाति के मुसलमानों के लिए विशेष लाभ प्राप्त करना और चुनावों में भाग लेना। (आलम, 2022)। लेकिन इस आंदोलन ने अपने ही समूह के कई पहलुओं जैसे सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मुद्दों को अपने आंदोलन का हिस्सा नहीं बनायास इन मुद्दों में प्रमुख रूप से इस्लाम की पुनर्व्याख्या, दूसरा अपने समुदाय में अंतर्जातीय विवाह को बढ़ावा न देना तथा तीसरा मुस्लिम कामगार वर्ग की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ न करना शामिल हैं (अंसारी, 2009)।

इस आंदोलन में प्रभुत्व पसमांदा पुरुषों के होने के नाते उन्होंने पसमांदा मुस्लिम महिलाओं के मुद्दों को अपने ही मुद्दों में सम्मिलित समझा तथा उनके मुद्दों से जो पसमांदा पुरुषों से अलग थी जैसे पर्दा प्रथा, तीन तलाक, शिक्षा और सार्वजनिक क्षेत्रों में भागीदारी जैसे मुद्दों की अवहेलना की, जो पसमांदा पुरुषों की महिलाओं की पितृसत्तात्मक सोच को दर्शाता है। हालांकि आसिम बिहारी ने अपने संगठन में मुस्लिम महिलाओं के लिए अलग से संगठन बनाया लेकिन इसका कोई दूरगामी परिणाम नहीं निकला। पसमांदा आंदोलन के द्वारा इरादतन जरूर अंतर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित किया जाता है जहाँ पर 'जाति से जमात की ओर' का नारा दिया जाता है परंतु व्यावहारिक रूप में यह प्रयास सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाओं, राजनैतिक प्राथमिकताओं, और जातिगत पदानुक्रम के गहरे प्रभाव के कारण सीमित सफलता ही प्राप्त कर सका है। (अंसारी 2023)

जाति व्यवस्था के पुनर्निमाण में अंतर्जातीय विवाह और लैंगिक आधार पर भेदभाव एक महत्वपूर्ण भूमिका बनता है (आंबेडकर, 1936) स एक समग्र रूप से देखा जाए तो पसमांदा आंदोलन का पसमांदा महिलाओं के मुद्दों के प्रति उदासीनता के मुख्य तीन कारण हो सकते हैं -

- पसमांदा आंदोलन में पुरुष वर्ग का वर्चस्व होना
- पसमांदा पुरुषों और पसमांदा महिलाओं के हितों के बीच अंतर को मान्यता न देना
- लैंगिकता के आधार पर शोषण को सामाजिकता के प्रचलन का हिस्सा मानना

मुख्य धारा का नारीवाद और पसमांदा नारीवादी दृष्टिकोण

नारीवाद का इतिहास एक अवधारणा और आंदोलन के रूप में विकासात्मक प्रकृति का रहा है जिसने समय के साथ महिलाओं के अधिकारों से संबंधित विभिन्न आयामों को संबोधित करने के लिए अपने क्षेत्र और प्रकृति में बदलाव किया है। इसके विकासात्मक और असामुदायिक मुद्दों के संबोधन के प्रकृति के कारण नारीवाद को परिभाषित करना जटिल होता है इसकी जटिलता जिस आधारभूत ढांचे पर खड़ी है उसमें नारीवाद लैंगिक समानता और स्त्री पुरुष के बीच समान आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अधिकार हैं। आधुनिक रूप में नारीवाद के विकास की शुरुआत मुख्यतया यूरोप से मानी जाती है जिसके विकास की प्रारंभिक चेतना का उदगम धार्मिक और दार्शनिक डिस्कोर्स से शुरू होकर आज के राजनैतिक आंदोलन और समकालीन सक्रियता तक पहुँचा है। नारीवाद के विकास का धार्मिक और दार्शनिक डिस्कोर्स यूरोप में मध्यकाल और पुनर्जागरण के दौरान नारीवाद के विकास को दर्शाता है तथा दूसरी ओर राजनैतिक आंदोलन और समकालीन सक्रियता के विकासक्रम में नारीवाद की विभिन्न लहरों को दर्शाता है (वाल्टर्स, 2005)।

धार्मिक और दार्शनिक डिस्कोर्स के अंतर्गत यूरोप में मध्य युग के दौरान नारीवाद के विकास में हिल्डे गार्ड और क्रिस्टीना डी पीजन जैसे लेखकों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से महिलाओं के बौद्धिक विकास और नैतिक समानता पर जोर दिया। मध्ययुग में समाज के सभी आयामों में सीमित अवसर होने के नाते नारीवाद के विकास में कोई मूलभूत परिवर्तन तो नहीं देखा गया लेकिन इस समय में महिलाओं के समर्थन में लिखी गई रचनाओं के माध्यम से नारीवाद की चेतना की नींव पड़ी। वहीं पुनर्जागरण के दौरान मैरी वालेस्टनक्राफ्ट, मैरी एस्टेल जैसी लेखिकाओं ने महिलाओं के अधिकारों का पुरजोर समर्थन किया। मैरी वालेस्टनक्राफ्ट ने अपनी किताब 'अ विंडिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ विमेन, 1792' में उस दौर में चली आ रही इस धारणा का खंडन किया कि स्त्रियाँ जन्म से कमजोर होती हैं और उनका सरोकार केवल घरेलू कामकाज से है। उन्होंने यह तर्क दिया कि स्त्रियों के कमजोर होने का कारण उनका स्त्री होना नहीं, बल्कि उनके पास शिक्षा और अवसर में समानता न होने के कारण है। मैरी वालेस्टनक्राफ्ट ने रूसो की किताब एमिल में लिखित उस तर्क का

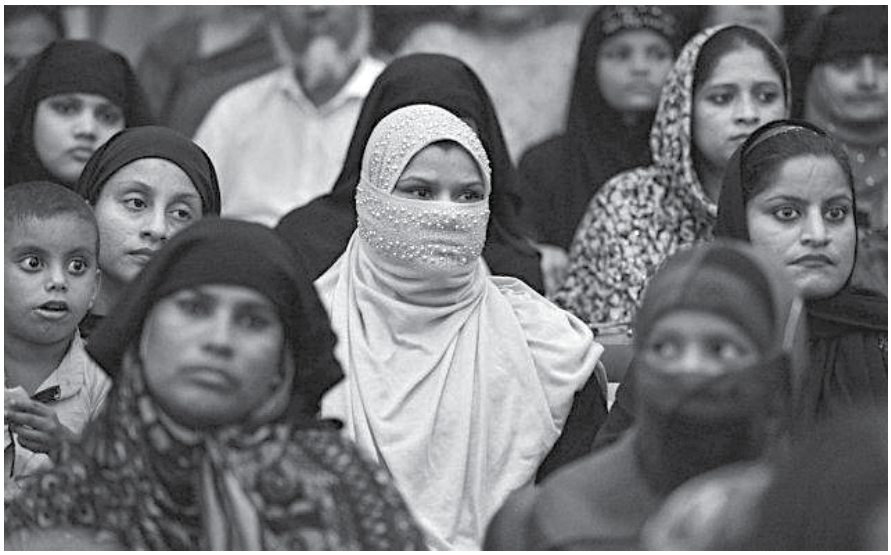

खंडन किया जिसमें रूसो ये कहता है कि महिलाएँ स्वभाव से कोमल, विनम्र, और उनका उद्देश्य पुरुषों की जरूरतों का पूरा करना है मैरी ने पुरुषों की भाँति स्त्रियों को भी बौद्धिक विकास और सामाजिक योगदान के लिए अपने लेखन से प्रेरित किया।

दूसरी ओर नारीवाद को एक राजनैतिक आंदोलन और समकालीन सक्रियता के रूप में स्थापित करने के प्रकरण में नारीवाद के विभिन्न लहरों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है नारीवाद की पहली लहर की शुरुआत औद्योगिक क्रांति और मताधिकार आंदोलन से होती है। औद्योगिक क्रांति ने परंपरागत मूल्यों के समक्ष एक चुनौती रखी और इसके साथ ही लोगों की आर्थिक स्थिति में बदलाव किया जिससे महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में भागीदारी सुनिश्चित करने का मौका मिला। इस दौर की लेखिकाओं में वर्जिनिया वुल्फ, एलिजाबेथ और लूसी ऑस्टिन जैसी महिला विचारकों का नाम आता है जिन्होंने मुख्य रूप से महिलाओं का मतदान में अधिकार, संपत्ति का कानूनी अधिकार की माँग और लैंगिक समानता का समर्थन किया जिसका इंग्लैंड और स्वीडन जैसे देशों पर काफी हद तक सकारात्मक प्रभाव पड़ा। वर्जिनिया वुल्फ ने अपनी किताब 'अ रूम ऑफ वन्स ओन, 1929' में महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता पर बल देते हुए ये कहा कि एक महिला को स्वतंत्र रूप से सोचने और लिखने के लिए अपने स्वयं के पैसे और एक कमरा भी होना चाहिए।

नारीवाद के दूसरे लहर में प्रजनन का अधिकार, गर्भपात का अधिकार, कार्यस्थल पर भुगतान में समानता, शिक्षा में समानता और व्यक्तिगत और सामाजिक समानता पर बल दिया गया। इस लहर में प्रमुख विचारकों में बेटी फ्रीडमैन, सिमोन द बोउआर, कार्ल हनीश जैसी लेखिकाओं का नाम आता है सिमोन द बोउआर ने अपनी किताब 'द सेकंड सेक्स, 1949' में ये तर्क दिया कि महिलाएँ पैदा नहीं होती बल्कि समाज उन्हें विभिन्न परंपराओं और रीति रिवाजों द्वारा बनाते हैं ताकि उनका मनचाहे रूप में शोषण किया जा सके। कार्ल हनीश ने व्यक्तिगत को ही राजनैतिक करने का समर्थन किया ताकि कानूनों के माध्यम व्यक्तिगत समझे जाने वाले शोषणकारी कृत्यों पर लगाम लगाया जा सके।

नारीवाद की तीसरी लहर ने मुखबिंदु अश्वेत महिलाओं, एलजीबीटीक्यू तथा हाशिए पर रहने वाली महिलाओं के अधिकार पर बल दिया; इसके साथ ही थर्ड वर्ल्ड कंट्री में महिलाओं की समस्याओं को समझने का प्रयास किया गया, जिसमें तकनीक और सोशल मीडिया को एक साधन के रूप में देखा गया। इस लहर के मुख्य विचारकों में रिबेका वॉकर, जूडिथ बटलर, बेल हुक्स जैसे विचारकों का नाम आता है जूडिथ बटलर ने अपनी पुस्तक 'जेंडर ट्रबल' में लैंगिकता, पहचान और परफॉर्मेटविटी में संबंध स्थापित करते हुए ये तर्क दिया कि किसी मनुष्य की लैंगिकता की पहचान प्राकृतिक नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक होती है जो एक खास तरह के पैटर्न को बार बार करने पर निर्मित होती है।

तृतीय लहर जो द्वितीय लहर की आलोचना करते हुए नारीवाद के दृष्टिकोण में वर्ग, धर्म जाति और क्षेत्रीय असामनता जैसे नए आयाम की ओर रेखांकित करता है जिसकी वजह से अश्वेत नारीवाद, दलित नारीवाद और पसमांदा नारी दृष्टिकोण के वैचारिक उद्भव में बल मिला। अकादमिक क्षेत्र में देखा जाए तो पसमांदा नारीवादी दृष्टिकोण पर अश्वेत नारीवाद और दलित नारीवाद की तुलना में बहुत ही कम ध्यान दिया गया है बौद्धिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर देखा जाए तो पसमांदा नारीवादी दृष्टिकोण अपने आप को दलित नारीवाद और अश्वेत नारीवाद से अलग करता है तथा इसके साथ ही ये मुख्यधारा के नारीवाद के बहुत सी मान्यताओं का खंडन करता है जो कि निम्नलिखित बिंदुओं में लिखे जा सकते है :-

- भारत में मुख्य धारा का नारीवाद महिला को एकल चेतना या समरूप विचार के रूप में ग्रहण करता है और उसके साथ ही यह मुख्य धारा का नारीवाद मुख्य रूप से उच्च जाति की महिला, माध्यमवर्गीय महिला और क्षेत्रीय कुलीन वर्ग द्वारा अधोरोपित है जो भारत के महिलाओं के आंदोलन और नारीवादी आंदोलन को एकांगी या एक रूप में ढालने की कोशिश करता है (हैकर,1951) जबकि दूसरी ओर पसमांदा महिला दृष्टिकोण से देखा जाए तो भारतीय समाज में नारीवाद कोई एकल चेतना नहीं है क्योंकि भारतीय समाज में महिला जाति, वर्ग, धर्म के आधार पर बंटी हुई है जिसके कारण उनके हितों और समस्याओं में भी भिन्नता है। यह समाजिक पदानुक्रम महिला के शोषण के घटक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जाति, धर्म और वर्ग लैंगिकता पर आधारित शोषण को और बद से बदतर बना देता है।

- मुख्य धारा का नारीवाद का केंद्रबिंदु में कार्यस्थल पर उत्पीड़न, वैधानिक

नारीवाद की दूसरी लहर में प्रजनन का अधिकार, गर्भपात का अधिकार, कार्यस्थल पर भुगतान में समानता, शिक्षा में समानता और व्यक्तिगत और सामाजिक समानता पर बल दिया गया। इस लहर में प्रमुख विचारकों में बेटी फ्रीडमैन, सिमोन द बोउआर, कार्ल हनीश जैसी लेखिकाओं का नाम आता है सिमोन द बोउआर ने अपनी किताब 'द सेकंड सेक्स, 1949' में ये तर्क दिया कि महिलाएँ पैदा नहीं होती बल्कि समाज उन्हें विभिन्न परंपराओं और रीति रिवाजों द्वारा बनाते हैं ताकि उनका मनचाहे रूप में शोषण किया जा सके। कार्ल हनीश ने व्यक्तिगत को ही राजनैतिक करने का समर्थन किया ताकि कानूनों के माध्यम व्यक्तिगत समझे जाने वाले शोषणकारी कृत्यों पर लगाम लगाया जा सके

समानता, कार्य के प्रति एक समान भुगतान और शहरी समस्याओं पर केंद्रित होता है (दलित महिला समिति, 2008) जबकि अन्य मुद्दे जैसे जाति आधारित शोषण, मैनुअल स्कीवेंजिंग, गरीबी आधारित घरेलू और सार्वजानिक, जातीय और धार्मिक कलंक जैसे मुद्दों को नजर अंदाज करते है जो कि पसमांदा महिलाओं के जीवन और उत्पीड़न के प्रमुख घटकों में से एक है।

- मुख्य धारा का नारीवाद मुख्य रूप से हिंदू धर्म और इस्लाम धर्म के उच्च जाति से भरा हुआ है जो पसमांदा महिलाओं के प्रति संभावित खतरे को नजरअंदाज करता है।

  मुख्य धारा का नारीवाद यूरोपियन समाज आधारित मूल्यों के सार्वभौमीकरण पर बल देता है। जिसके फलस्वरूप यह नारीवाद हिजाब पहनने की परंपरा को मुस्लिम महिलाओं के प्रति शोषण के उपकरण के रूप में देखता है, जबकि मुस्लिम महिलाएँ इसे अपने सांस्कृतिक और धार्मिक परंपरा के एक अंग के रूप में देखती हैं और इसे अपनी अस्मिता के साथ जोड़ती हैं।

- मुख्यधारा का नारीवाद प्रतिनिधित्व के नाम पर केवल अपने ही वर्ग के खास हितों की पूर्ति करता है जबकि हाशिए पर खड़ी महिलाओं के हितों को ठंडे बस्ते में रखता है। उदाहरण के तौर पर हाल ही में भारतीय संसद द्वारा पारित 'नारी शक्ति वंदन अधिनियम 2023' जिसमें लोकसभा, राज्यों की विधानसभा तथा दिल्ली और पांडिचेरी की विधायिका में एक तिहाई आरक्षण का प्रावधान है जबकि दलित और आदिवासी महिलाओं के क्षैतिज आरक्षण को छोड़कर कोई पसमांदा और पिछड़ी जाति की महिलाओं के लिए कोई उप कोटा नहीं है। चूँकि समाज के हाशिए पर खड़ी महिलाओं की आधारभूत आवश्यकता के लिए यह उपेक्षित है। नारी सशक्तीकरण के विभिन्न पायदानों पर उच्च वर्ग और जाति की महिलाओं का प्रभुत्व है जिसकी वजह से ये महिलाएँ अपने अधिकार को प्रत्यक्ष रूप से रखने में असमर्थ रहती हैं।

मुख्यधारा का नारीवाद प्रतिनिधित्व के नाम पर केवल अपने ही वर्ग के खास हितों की पूर्ति करता है जबकि हाशिए पर खड़ी महिलाओं के हितों को ठंडे बस्ते में रखता है। उदाहरण के तौर पर हाल ही में भारतीय संसद द्वारा पारित 'नारी शक्ति वंदन अधिनियम 2023' जिसमें लोकसभा, राज्यों की विधानसभा तथा दिल्ली और पांडिचेरी की विधायिका में एक तिहाई आरक्षण का प्रावधान है जबकि दलित और आदिवासी महिलाओं के क्षैतिज आरक्षण को छोड़कर कोई पसमांदा और पिछड़ी जाति की महिलाओं के लिए कोई उप कोटा नहीं है। चूँकि समाज के हाशिए पर खड़ी महिलाओं की आधारभूत आवश्यकता के लिए यह उपेक्षित है

दलित नारीवाद और पसमांदा नारीवाद में अंतर

मुख्य धारा का नारीवाद जो सिस्टरहुड की बात करते हुए पितृसत्ता के खिलाफ सामूहिक प्रतिरोध तो उत्पन्न करता है लेकिन इसके साथ ही ये महिलाओं के एक खास समूह का सशक्तीकरण करता है और अन्य महिला समूहों की उपेक्षा भी करता है (लार्ड, 2005) दलित नारीवाद और पसमांदा नारीवाद का जागरण इसके उपेक्षित अंश के रूप में माना जा सकता है ये दोनों ही समूह अपनी आनुभविक सच्चाई और हस्तक्षेपित विधि के माध्यम से मुख्य धारा के नारीवाद के समक्ष चुनौतियाँ प्रदान करते हैं। हालांकि दोनों ही विचारों में कई तरह की समानता है जिसके कारण ये एकमुश्त होकर मुख्य धारा के नारीवाद के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि रखते हैं। इसके बावजूद इन दोनों विचारधाराओं के आधारभूत मुद्दों को लेकर अंतर है जो इन्हें मौलिकता और अंतर प्रदान करता है -

- दलित नारीवादी दृष्टिकोण के डिस्कोर्स की शुरुआत लैंगिकता, जाति और धर्म के प्रतिच्छेदन बिंदु पर होती है (पन, 2020) वहीं दूसरी ओर देखा जाए तो पसमांदा नारीवाद डिस्कोर्स की शुरुआत लैंगिकता, जाति, धर्म, और अल्पसंखयक के प्रतिच्छेदन बिंदु से प्रारंभ होती है।

- दलित महिलाओं का मुख्य रूप से संबंधन हिंदू धर्म से हैस हिंदू धर्म का समाज शुद्धता और अशुद्धता के सिद्धांत को आधार मानकर विभाजित है (चक्रवर्ती, 1993)। जिसमें दलित का पायदान सबसे निकृष्ट श्रेणी का समझा जाता है जिनके कारण इनको छुआछूत, लैंगिक हिंसा, जाति उत्पीड़न, मंदिर में प्रवेश पर रोक जैसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है वहीं दूसरी ओर पसमांदा महिलाओं का संबंध इस्लाम धर्म से है इस्लाम धर्म वैचारिक रूप से समानता की बात करता है (अफसरुद्दीन, 2023)। लेकिन धरातल पर इसमें जाति आधारित शोषणकारी प्रवृत्ति विद्यमान है जो उन्हें सांस्कृतिक और धार्मिक के शोषण से सामना करवाती है पर्दा प्रथा, तीन तलाक, मस्जिदों में प्रवेश जैसे मुद्दे शामिल है। जाति आधारित उत्पीड़न के मामले में मुस्लिम समाज के तथाकथित उच्च वर्ग के माने जाने वाले अशराफ वर्ग के मुस्लिम मुख्य भूमिका में होते हैं।

- ज्ञान की राजनीति के दृष्टिकोण से देखा जाए तो दलित नारीवाद अकादमिक जगत में मुख्य धारा के नारीवाद के सामने एक मजबूत, सशक्त और प्रगतिशील विचारधारा प्रतिरोध के रूप में प्रस्तुत करता है और नारीवाद जाति के प्रति निष्क्रियता की भरसक आलोचना करता है, वहीं दूसरी ओर राजनैतिक प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए राजनैतिक एकत्रीकरण की

ओर अपने आपको अध्यारोपित किया हुआ है। उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी को एकं प्रमुख उदाहरण के रूप में देखा जा सकता हैस इसके विपरीत पसमांदा महिलाओं की ज्ञान की राजनीति के दृष्टिकोण से कोई मजबूत विचारधारा नहीं जो उच्च जाति के मुस्लिम के प्रति प्रतिरोध खड़ा कर सके और न ही कोई राजनैतिक प्रतिनिधित्व जिसको माध्यम से अपने हितों को नीति निर्माण में शमिल करा सके।

- दलित नारीवाद हिंदू धर्म में समाज के वर्गीकरण को आर्थिक और सामाजिक संसाधनों पर प्रभुत्व का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण मानता है जबकि पसमांदा नारीवाद में इस तरह के दृष्टिकोण इस्लाम के प्रति दिखाई नहीं देतेस

निष्कर्ष

मुख्य धारा के नारीवाद ने, चाहे वह पश्चिम का हो या भारत का, अपने ज्ञान से इतर तरह तरह अनुभवों पर आधारित ज्ञान को अपनी धारा में मान्यता देने और सम्मिलित करने में कोई कठोर प्रयास नहीं किया है। मानविकी मुद्दों पर ज्ञान अर्जन करने की विधि में अनुभव एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है और यही कारण है जो पसमांदा स्त्री का दृष्टिकोण समाज के प्रति अपनी जाति, धर्म, अल्पसंख्यता के आधार पर अपने अलग अनुभव होने के नाते एक नए दृष्टिकोण को जन्म देता है जो मुख्य धारा की महिलाओं के अनुभवों से काफी हद तक भिन्न है मिशेल फूको अपने लेख 'टू लेक्चर्स' में दो तरह के ज्ञान 'टोटलेटेरियन फॉर्म ऑफ नालेज/ थ्योरी और 'सब्जुगेटेड फॉर्म ऑफ नॉलेज/ सिद्धांत की बात करते हैं, जिसमें वे बताते है कि टोटलेटेरियन फॉर्म ऑफ नालेज/थ्योरी एकांगी होने के साथ-साथ कभी वह अपने समानांतर एक विरोध के ज्ञान को उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करती है जिसे वह सब्जुगेटेड फॉर्म ऑफ नॉलेज/ सिद्धांत का नाम देते हैं और यह ज्ञान या सिद्धांत केंद्रीकृत न होकर विकेंद्रित होता है तथा यह सिद्धांत टोटलीरियन फॉर्म ऑफ नालेज/थ्योरी को चुनौती प्रदान करता है। इसके साथ ही अपने सिद्धांतों की वैधता सुनिश्चित करने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र होता है। मिशेल फूको के इस बहुत ही महत्त्वपूर्ण विवरण को पसमांदा महिलाओं के परिप्रेक्ष्य में जोड़ कर देखा जा सकता है जिसमें पसमांदा नारीवादी दृष्टिकोण एक सब्जुगेटेड फॉर्म ऑफ नॉलेज/ सिद्धांत के रूप में मुख्य धारा के नारीवाद के समानांतर अपने अनुभवों के आधार पर एक विकेंद्रित सिद्धांतों या ज्ञान की धारा का निर्माण करता है जो एक तरह से देखा जाए तो मुख्य धारा के नारीवाद के अस्तित्व में आने से ही हो पाया है। पसमांदा नारीवाद अपने रोजमर्रा के अनुभवों, मुद्दों, जाति अल्पसंख्यता और धर्म के आधार पर मुख्यधारा के नारीवाद को चुनौती प्रदान करता है तथा दूसरी ओर यह अवसर भी प्रदान करता है कि वह पसमांदा महिलाओं के मुद्दों को अपने अंदर सम्मिलित करके अपने आपको और समावेशी बना सके।

संदर्भ-

1. फूको, एम. (1980), दो व्याख्यान, सी. गॉर्डन (संपा.), पावर/नॉलेज: चयनित साक्षात्कार और अन्य लेखन, 1972ख1977 में, पेंथियन बुक्स
2. अंसारी, गौस (1960), उत्तर प्रदेश में मुसलमान जातियाँ: संस्कृति संपर्क का अध्ययन, लखनऊ: नृवंशविज्ञान और लोक संस्कृति सोसायटी
3. अहमद, इम्तियाज (1973), भारत में मुसलमानों में जाति और सामाजिक स्तरीकरण, नई दिल्ली: मनोहर पब्लिकेशन
4. फालाही, मसूद आलम (2007), हिंदुस्तान में जात पात और मुसलमान, नई दिल्ली: अलकाजी पब्लिशर
5. अहमद, जरीना (1962, फरवरी), उत्तर प्रदेश में मुसलमान जातियाँ, आर्थिक और राजनैतिक साप्ताहिक
6. आलम, शमशेर (2022, मार्च 1), पसमंदा राजनैतिक विमर्श: संभावनाएँ, विफलताएँ और आगे का रास्ता, सोशल चेंज, 52(1), 1-19। डीओआई: 10.1177/00490857211068552
7. अंसारी, खालिद अनीस (2009, मार्च 28-अप्रैल 3), रीथिंकिंग ऑफ पसमांदा मूवमेंट, आर्थिक और राजनैतिक साप्ताहिक, 44(13), 8-10
8. अनवर, अली (2001), मसावत की जंग, वाणी प्रकाशन
9. फैजी, फैयाज अहमद (2021, जून 3), पसमांदा आंदोलन का संक्षिप्त इतिहास, हिंदी सबरंग इंडिया
10. अंबेडकर, बी. आर. (2019), जाति का विनाश (मूल कार्य 1936 में प्रकाशित), रूपा
11. वाल्टर्स, एम. (2005), नारीवाद: एक बहुत ही संक्षिप्त परिचय, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
12. वॉलस्टोनक्राफ्ट, एम. (1792), ए विंडिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ मेन, ए विंडिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमेन, एन हिस्टोरिकल एंड मोरल व्यु ऑफ द फ्रेंच रेवोल्यूशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।?, (मूल कार्य 1792 में प्रकाशित)
13. वुल्फ, वी. (1929), ए रूम ऑफ ओनेस् आवन, होगार्थ प्रेस
14. हैकर, एच. एम. (1951), वोमेनस् एज् ए मिनोरिटी ग्रुप। सोशल फोर्सेज, 30(1), 60-69
15. डी एम एस. (2008). द दलित वोमेनस् मूवमेंट इन इंडिया(p. 11). AWID.
16. लॉर्डे, ए. (2005), एज, रेस, क्लास एंड सेक्स:वुमेन रीडिफाइनिंग डिफ्फरेंस, इन सिस्टर आउटसाइडरर्स क्रॉसिंग प्रेस.
17. दे बोवॉयर, एस. (1949), द सेकंड सेक्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
18. पन, ए. (2020), मैप्पिंग दलित फेमिनिज्म, सेज पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड
19. अफसरुद्दीन, ए. (2022), इस्लामिक विचार और प्रैक्सिस में समानतावाद।एम. वैन डेर लिंडन (संपादक), सोशलिज्म का कैम्ब्रिज इतिहास (पृष्ठ 56-78)। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस
20. चक्रवर्ती, यू.(1993), प्रारंभिक भारत में ब्राह्मणवादी पितृसत्ता की अवधारणा: लिंग, जाति, वर्ग और राज्य, इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 28(14), 579-585.

भारतीय संविधान पर महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

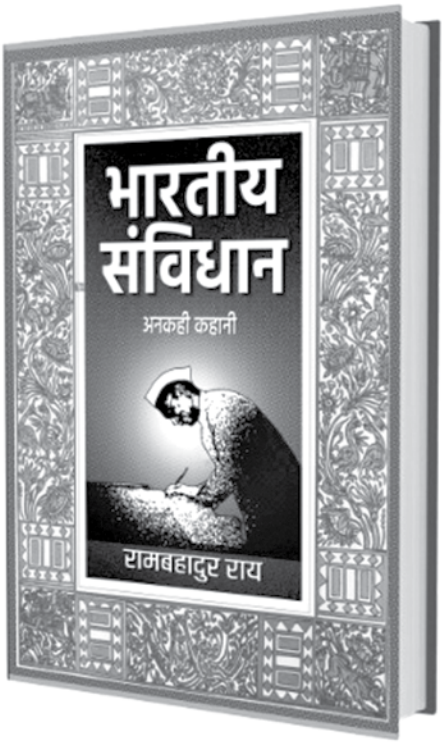

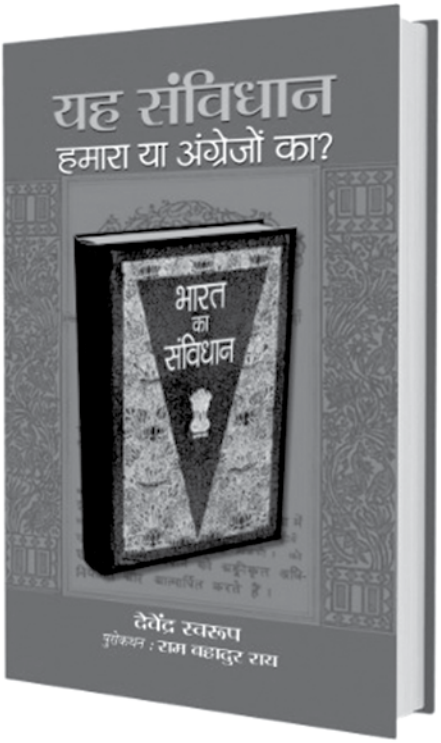

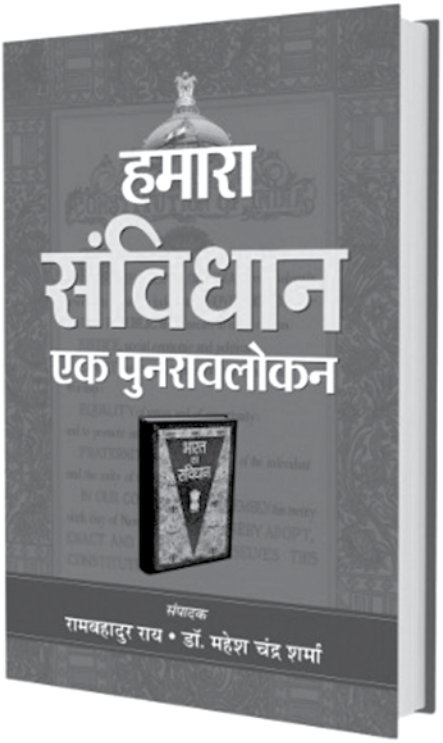

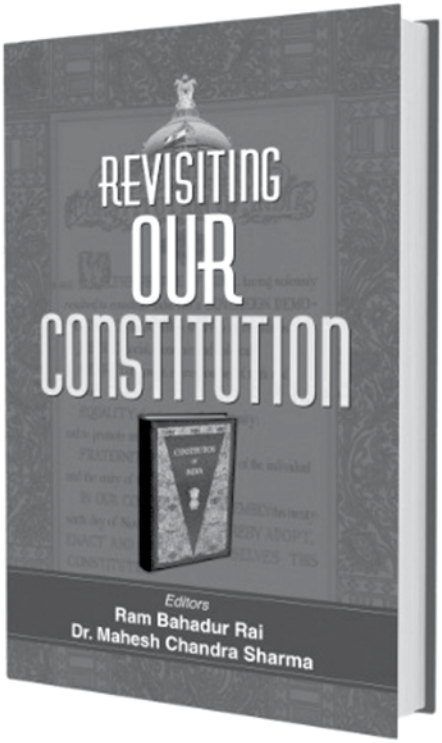

7000 से अधिक पुस्तकों का विस्तृत सूची-पत्र निशुल्क पाने के लिए लिखें—

पोस्टेज फ्री

हेल्पलाइन नं. 7827007777

प्रभात प्रकाशन

ISO 9001 : 2015 प्रकाशक

4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002

☎ 011-23289777

E-mail : prabhatbooks@gmail.com ✣ Website : www.prabhatbooks.com ✣ www.facebook.com/prabhatprakashan

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

'मंथन' की सदस्यता लें

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से प्रकाशित शोध त्रैमासिक पत्रिका 'मंथन' की सदस्यता लें। भारत–विचार–दर्शन पर केंद्रित इस पत्रिका की सदस्यता के लिए व्यक्ति/संस्थान कृपया निम्न पते पर सूचित करें और शुल्क एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के नाम से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, एकाउंट नं. 10080533188, आईएफएससी–एसबीआईएन0006199 में जमा करें।

सदस्यता विवरण

नामः .....

पताः .....

..... राज्यः ..... पिनकोड : .....

लैंड लाइनः ..... मोबाइलः (1)..... (2).....

ई मेलः .....

जन–मार्च 2019 से पुनर्निधारित मूल्य

	भारत में	विदेश में
एक प्रति	₹ 200	US$ 9
वार्षिक	₹ 800	US$ 36
त्रिवार्षिक	₹ 2000	US$ 100
आजीवन	₹ 25,000	

प्रंबध संपादक

'मंथन' त्रैमासिक पत्रिका

एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

दूरभाष : +91-9868550000, 011-23210074

ई–मेल: info@manthandigital.com

"विश्व पटल पर देवभूमि उत्तराखंड की बन रही अलग पहचान"

"हमारा लक्ष्य उत्तराखंड को एक विकसित और आत्मनिर्भर राज्य बनाना है। इसके लिए हम जो भी कदम उठा रहे हैं वह इसी लक्ष्य के अनुरूप है। हम सेवा सुशासन और विकास के नए आयाम स्थापित करके हर क्षेत्र में प्रगति सुनिश्चित करने का प्रयास कर रहे हैं। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के मार्गदर्शन में हम एक मजबूत समृद्ध और सक्षम उत्तराखंड के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध हैं।"

पुष्कर सिंह धामी
मुख्यमंत्री, उत्तराखंड

हिमालय की गोद में बसा, गंगा-यमुना जैसी पवित्र नदियों का उद्गम स्थल, और अनगिनत ऋषि-मुनियों की तपोस्थली-उत्तराखंड, जिसे देवभूमि कहा जाता है, सदियों से अपनी आध्यात्मिक आभा, प्राकृतिक सौंदर्य और शांत वातावरण के लिए विश्वविख्यात रहा है। यह वह भूमि है जहाँ प्रकृति अपने सबसे मनोरम रूप में प्रकट होती है, जहाँ ऊँचे-ऊँचे हिमाच्छादित पर्वत शिखर आकाश को चूमते हैं, घने जंगल रहस्यमयी कहानियाँ सुनाते हैं, और कल-कल करती नदियाँ जीवन का संगीत गाती हैं। लेकिन आज, यह देवभूमि केवल अपनी पारंपरिक पहचान तक सीमित नहीं है। एक नए, सशक्त और प्रगतिशील उत्तराखंड का उदय हो रहा है, जो अपनी जड़ों से जुड़े रहते हुए भी विकास की नई ऊँचाइयों को छू रहा है और विश्व पटल पर अपनी एक विशिष्ट एवं बहुआयामी पहचान गढ़ रहा है।

"21 वीं सदी के विकसित भारत के निर्माण के दो प्रमुख स्तंभ हैं। पहला, अपनी विरासत पर गर्व और दूसरा, विकास के लिए हर संभव प्रयास। आज उत्तराखंड, इन दोनों की स्तंभों को मजबूत कर रहा है। यह दशक उत्तराखंड का दशक होगा।"

नरेन्द्र मोदी
प्रधानमंत्री

निवेश का नया गंतव्य : विकास की ओर बढ़ते कदम

उत्तराखंड अब केवल पर्यटन और आध्यात्म तक सीमित नहीं है, बल्कि यह निवेश के एक आकर्षक केंद्र के रूप में भी उभर रहा है। मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी के नेतृत्व में राज्य सरकार 'ईज ऑफ डूइंग बिजनेस' पर विशेष जोर दे रही है।

उत्तराखंड ग्लोबल इन्वेस्टर्स समिट :
हाल ही में आयोजित सफल इन्वेस्टर्स समिट ने दुनिया भर के निवेशकों का ध्यान आकर्षित किया। लाखों करोड़ के निवेश प्रस्ताव प्राप्त हुए, जो राज्य की औद्योगिक क्षमता और भविष्य की संभावनाओं को दर्शाते हैं।

सिंगल विंडो क्लीयरेंस:
निवेशकों को सुगमता प्रदान करने के लिए प्रक्रियाओं को सरल बनाया गया है।

सेक्टर-स्पेसिफिक नीतियां:
पर्यटन, वेलनेस, आयुष, सूचना प्रौद्योगिकी, खाद्य प्रसंस्करण, फार्मास्यूटिकल्स, ऑटोमोबाइल और नवीकरणीय ऊर्जा जैसे क्षेत्रों में निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष नीतियां बनाई गई हैं।

कनेक्टिविटी में सुधार :
सड़क, रेल और हवाई संपर्क को बेहतर बनाने पर लगातार काम हो रहा है।

जौलीग्रांट हवाई अड्डे का विस्तार और पंतनगर हवाई अड्डे का विकास इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

ये प्रयास उत्तराखंड को आत्मनिर्भर बनाने और युवाओं के लिए रोजगार के नए अवसर सृजित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। राज्य सरकार का लक्ष्य है कि उत्तराखंड न केवल भारत में बल्कि विश्व स्तर पर एक पसंदीदा निवेश गंतव्य बने।

आध्यात्म और पर्यटन का अद्वितीय संगम: एक वैश्विक आकर्षण

उत्तराखंड की आत्मा उसके आध्यात्म में बसती है। चारधाम-यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ और बद्रीनाथ - करोड़ों हिंदुओं की आस्था के केंद्र हैं। हेमकुंड साहिब सिख समुदाय के लिए परम पूजनीय स्थल है। इन तीर्थस्थलों के अतिरिक्त, ऋषिकेश को "योग नगरी" के रूप में मान्यता प्राप्त है, जहाँ शांति और आत्म-खोज के लिए दुनिया भर से साधक आते हैं। राज्य सरकार ने **इन** आध्यात्मिक धरोहरों को और अधिक सुलभ, सुरक्षित और सुविधापूर्ण बनाने के लिए अभूतपूर्व कदम उठाए हैं।

सांस्कृतिक धरोहर और फिल्म शूटिंग का केंद्र

उत्तराखंड की लोक कलाएं, संगीत, नृत्य और पारंपरिक व्यंजन इसकी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के परिचायक हैं। राज्य सरकार इन परंपराओं को सहेजने और उन्हें वैश्विक मंच प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है।

- **स्थानीय त्योहारों का आयोजन:** कौथिग, घी संक्राति, फूलदेई जैसे पारंपरिक त्योहारों को बड़े पैमाने पर आयोजित किया जाता है ताकि नई पीढ़ी अपनी जड़ों से जुड़ी रहे।
- **हस्तशिल्प और हथकरघा को प्रोत्साहन:** ऐपण कला, रिंगाल क्राफ्ट, ऊनी वस्त्रों को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाएं चलाई जा रही हैं।
- **फिल्म शूटिंग डेस्टिनेशन:** उत्तराखंड अपनी नैसर्गिक सुंदरता के कारण फिल्म निर्माताओं की पसंदीदा जगह बनता जा रहा है। राज्य सरकार फिल्म नीति के माध्यम से फिल्म शूटिंग को सुगम बना रही है, जिससे न केवल पर्यटन को बढ़ावा मिलता है बल्कि स्थानीय कलाकारों और तकनीशियनों को भी रोजगार मिलता है। कई बॉलीवुड और अंतरराष्ट्रीय फिल्मों की शूटिंग ने उत्तराखंड को वैश्विक पहचान दिलाई है।

डिजिटल उत्तराखंड
भविष्य की ओर एक छलांग

डिजिटल इंडिया के विजन के अनुरूप, उत्तराखंड तेजी से डिजिटलीकरण की ओर बढ़ रहा है। सरकारी सेवाओं को ऑनलाइन किया जा रहा है, जिससे पारदर्शिता और दक्षता बढ़ी है। युवाओं को डिजिटल कौशल में प्रशिक्षित किया जा रहा है ताकि वे भविष्य की चुनौतियों का सामना कर सकें। ऑप्टिकल फाइबर नेटवर्क का विस्तार कर दूरस्थ गांवों तक इंटरनेट कनेक्टिविटी पहुंचाई जा रही है।

चारधाम यात्रा को सुलभ, सुरक्षित और सुविधाजनक बनाने के लिए अभूतपूर्व कदम

- **चारधाम ऑल वेदर रोड परियोजना:**
यह महत्वाकांक्षी परियोजना कनेक्टिविटी में क्रांति ला रही है, जिससे यात्रा सुगम और वर्षभर संचालित हो रही है। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के दूरदर्शी नेतृत्व में इस परियोजना ने तीर्थयात्रियों के लिए एक वरदान का काम किया है।
- **केदारनाथ पुनर्निर्माण :**
2013 की आपदा के बाद, केदारपुरी का जिस भव्यता और सुनियोजित तरीके से पुनर्निर्माण किया गया है, वह दृढ़ इच्छाशक्ति और कुशल प्रबंधन का प्रतीक है। यह पुनर्निर्माण न केवल भौतिक संरचनाओं का था, बल्कि आस्था और विश्वास का भी था।
- **ऋषिकेश-कर्णप्रयाग रेल परियोजना:**
यह परियोजना पहाड़ी क्षेत्रों को रेल नेटवर्क से जोड़ने की दिशा में एक मील का पत्थर साबित होगी, जिससे न केवल पर्यटन को बढ़ावा मिलेगा बल्कि स्थानीय अर्थव्यवस्था को भी मजबूती मिलेगी।
- **होमस्टे योजना :**
स्थानीय संस्कृति और आतिथ्य को बढ़ावा देने के लिए होमस्टे योजना को प्रोत्साहित किया जा रहा है। इससे पर्यटक स्थानीय जीवनशैली का अनुभव कर पाते हैं और ग्रामीणों को आय का एक अतिरिक्त स्रोत मिलता है, जिससे पलायन पर भी अंकुश लग रहा है।

इन प्रयासों के परिणामस्वरूप, उत्तराखंड में आने वाले पर्यटकों और तीर्थयात्रियों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। यह केवल संख्यात्मक वृद्धि नहीं है, बल्कि यह उत्तराखंड की उस क्षमता का प्रमाण है जो विश्व स्तरीय आध्यात्मिक और पर्यटन अनुभव प्रदान कर सकती है।

सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण: भविष्य की नींव

विकास की दौड़ में उत्तराखंड अपनी सबसे बड़ी पूंजी - पर्यावरण - को विस्मृत नहीं कर रहा है। राज्य सरकार सतत विकास के मॉडल को अपना रही है, जहाँ विकास और पर्यावरण संरक्षण साथ-साथ चलें।

इको-टूरिज्म को बढ़ावा :
संवेदनशील पारिस्थितिकी तंत्रों में पर्यटन को इस प्रकार विनियमित किया जा रहा है कि पर्यावरण पर न्यूनतम प्रभाव पड़े।

प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन :
सिंगल यूज प्लास्टिक पर प्रतिबंध और प्रभावी अपशिष्ट प्रबंधन प्रणालियों को लागू किया जा रहा है।

नवीकरणीय ऊर्जा :
सौर ऊर्जा और जल विद्युत परियोजनाओं को बढ़ावा दिया जा रहा है ताकि पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों पर निर्भरता कम हो सके।

वन संरक्षण और वृक्षारोपण :
राज्य का एक बड़ा हिस्सा वनाच्छादित है, और इसके संरक्षण तथा विस्तार के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के इस दौर में पर्यावरण संरक्षण न केवल एक आवश्यकता है, बल्कि एक नैतिक जिम्मेदारी भी है। जी-20 की बैठकों का सफल आयोजन इस बात का प्रमाण है कि उत्तराखंड वैश्विक मंच पर पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास के मुद्दों पर नेतृत्व करने की क्षमता रखता है।

साहसिक पर्यटन का नया क्षितिज: रोमांच की भूमि

उत्तराखंड की भौगोलिक विविधता इसे साहसिक पर्यटन के लिए एक आदर्श गंतव्य बनाती है। ट्रेकिंग, रिवर राफ्टिंग, पैराग्लाइडिंग, स्कीइंग, माउंटेनियरिंग- यहाँ हर रोमांच प्रेमी के लिए कुछ न कुछ है।

- **औली :** स्कीइंग के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध औली हर साल हजारों पर्यटकों को आकर्षित करता है। यहाँ आयोजित होने वाले राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्कीइंग इवेंट्स ने इसे वैश्विक मानचित्र पर स्थापित किया है।
- **ऋषिकेश :** गंगा में रिवर राफ्टिंग का रोमांच अद्वितीय है। बंजी जंपिंग, फ्लाइंग फॉक्स जैसी गतिविधियाँ भी युवाओं को खूब लुभाती हैं।
- **ट्रेकिंग रूट्स:** फूलों की घाटी (यूनेस्को विश्व धरोहर), रूपकुंड, पिंडारी ग्लेशियर, हर की दून जैसे मनोरम ट्रेकिंग मार्ग प्रकृति प्रेमियों और साहसिक यात्रियों को मंत्रमुग्ध कर देते हैं। राज्य सरकार साहसिक पर्यटन को सुरक्षित और व्यवस्थित बनाने पर विशेष ध्यान दे रही है। प्रशिक्षित गाइड, बेहतर उपकरण और सुरक्षा मानकों का कड़ाई से पालन सुनिश्चित किया जा रहा है।

इससे न केवल पर्यटकों का विश्वास बढ़ा है बल्कि उत्तराखंड को एक जिम्मेदार साहसिक पर्यटन स्थल के रूप में भी पहचान मिली है।

एक उज्ज्वल भविष्य की ओर अग्रसर देवभूमि

आज का उत्तराखंड केवल एक आध्यात्मिक केंद्र या पर्यटन स्थल मात्र नहीं है। यह एक जीवंत, प्रगतिशील और महत्वाकांक्षी राज्य है जो अपनी प्राचीन विरासत और आधुनिक आकांक्षाओं के बीच एक सुंदर संतुलन स्थापित कर रहा है। मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी के ऊर्जावान और दूरदर्शी नेतृत्व में, 'विकसित उत्तराखंड' का सपना साकार हो रहा है। आध्यात्म की शांति, प्रकृति का सौंदर्य, रोमांच का उत्साह, निवेश की संभावनाएं, सतत विकास के प्रति प्रतिबद्धता, और सांस्कृतिक समृद्धि का अनूठा मिश्रण उत्तराखंड को विश्व पटल पर एक विशिष्ट पहचान दिला रहा है।

यह वह भूमि है जहाँ परंपरा और प्रगति का संगम होता है, जहाँ आध्यात्मिकता आधुनिकता से मिलती है, और जहाँ प्रकृति का संरक्षण विकास का अभिन्न अंग है। आने वाले वर्षों में, देवभूमि उत्तराखंड न केवल भारत के विकास में एक महत्वपूर्ण योगदानकर्ता बनेगा, बल्कि विश्व के लिए शांति, सद्भाव और सतत विकास का एक प्रेरणास्रोत भी बनकर उभरेगा। यह 'नया उत्तराखंड' अपनी जड़ों से मजबूती से जुड़ा रहकर, आत्मविश्वास के साथ वैश्विक क्षितिज पर अपनी अमिट छाप छोड़ने के लिए तैयार है। विश्व इस देवभूमि की नई उड़ान को देख रहा है, और निस्संदेह, यह उड़ान इसे नई ऊंचाइयों तक ले जाएगी।

चुनौतियाँ और भविष्य की राह

यह सच है कि उत्तराखंड के समक्ष अब भी कुछ चुनौतियाँ हैं, जैसे कि पर्वतीय क्षेत्रों में पलायन, मानव-वन्यजीव संघर्ष, और प्राकृतिक आपदाओं की संवेदनशीलता। लेकिन राज्य सरकार इन चुनौतियों से निपटने के लिए पूरी तरह सचेत और कटिबद्ध है।

- **पलायन पर रोकथाम:** पलायन के कारणों का अध्ययन कर प्रभावी समाधान ढूंढे जा रहे हैं। स्वरोजगार योजनाओं और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने पर जोर दिया जा रहा है।
- **आपदा प्रबंधन:** आपदा प्रबंधन तंत्र को और अधिक सुदृढ़ किया जा रहा है। अर्ली वार्निंग सिस्टम और त्वरित प्रतिक्रिया दलों को मजबूत किया गया है।
- **संतुलित विकास:** यह सुनिश्चित किया जा रहा है कि विकास का लाभ समाज के हर वर्ग और हर क्षेत्र तक पहुंचे।

शिक्षा, स्वास्थ्य और महिला सशक्तिकरण :
एक समग्र दृष्टिकोण

किसी भी प्रदेश की प्रगति उसके मानव संसाधनों के विकास पर निर्भर करती है। उत्तराखंड सरकार शिक्षा, स्वास्थ्य और महिला सशक्तिकरण पर विशेष ध्यान दे रही है।

- **गुणवत्तापूर्ण शिक्षा:** नए स्कूल, कॉलेज और व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान खोले जा रहे हैं। दूरस्थ क्षेत्रों में शिक्षा की पहुंच सुनिश्चित की जा रही है।
- **बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं:** जिला अस्पतालों का उन्नयन, नई चिकित्सा इकाइयों की स्थापना और टेलीमेडिसिन जैसी सेवाओं का विस्तार किया जा रहा है ताकि हर नागरिक को समय पर गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवा मिल सके।
- **महिला सशक्तिकरण:** 'लखपति दीदी' योजना, सरकारी नौकरियों में महिलाओं को 30 प्रतिशत क्षैतिज आरक्षण, और स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं। महिलाएं आज उत्तराखंड के विकास में कंधे से कंधा मिलाकर योगदान दे रही हैं।

Regd. R.No. 32486/78 (Hindi)

उत्तराखण्ड शासन

देवभूमि उत्तराखण्ड

श्री यमुनोत्री
30 अप्रैल, 2025

श्री गंगोत्री
30 अप्रैल, 2025

श्री केदारनाथ
2 मई, 2025

श्री बदरीनाथ
4 मई, 2025

श्री हेमकुंट साहिब
25 मई, 2025

हरित चारधाम यात्रा

आप सभी का
हार्दिक स्वागत एवं अभिनंदन

पुष्कर सिंह धामी
मुख्यमंत्री, उत्तराखण्ड

नरेन्द्र मोदी
प्रधानमंत्री

सुगम एवं सुरक्षित चारधाम यात्रा

चारधाम मार्ग के समीप आध्यात्मिक और प्राकृतिक रत्न

यमुनोत्री के पास: जानकी चट्टी, हनुमान चट्टी, खरसाली गांव, सप्तऋषि कुंड, पांडव गुफा, लाखा मण्डल, केदारकांठा ट्रैक, राणा चट्टी

गंगोत्री के पास: गौमुख ट्रैक, भोजबासा, तपोवन, सूर्यकुंड व गौरीकुंड, हर्षिल वैली, मुखीमठ (मुखबा), दयारा बुग्याल ट्रैक, गरतांग गली, काशी विश्वनाथ मन्दिर, नचिकेताताल, डोडीताल

केदारनाथ के पास: भैरवनाथ मन्दिर, वासुकीताल, गौरीकुंड, त्रियुगीनारायण मन्दिर, चोपता-तुंगनाथ-चंद्रशिला, गुप्तकाशी, देवरियाताल

बदरीनाथ के पास: माणा गांव, व्यास गुफा और गणेश गुफा, भीमशिला, औली, फूलों की घाटी, वसुधारा जलप्रपात, चरणपादुका, तप्तकुंड, नारदकुंड, ज्योतिर्मठ (जोशीमठ), सतोपंथ झील, पाण्डुकेश्वर, आदिबदरी मन्दिर, हेमकुंट साहिब

यात्रा के लिए जरूरी सामान

रेनकोट	सनग्लासेस	पानी की बोतल
मास्क	ग्लूकोस बिस्कुट	लाठी
कोल्ड क्रीम	टार्च	मंकी कैप
मफलर	कैनवास जूते	कैश
मोज़े	सैनिटाइज़र	स्वेटर
छाता	पहचान पत्र	दस्ताने

पंजीकरण के लिए

registrationandtouristcare.uk.gov.in

Toll Free number 0135 1364

Download the App:
touristcareuttarakhand

Google play | App Store

हेलीकॉप्टर/अधिक जानकारी के लिए आधिकारिक वेबसाइट पर जाएं

www.heliyatra.irctc.co.in

आईआरसीटीसी हेल्पलाइन नं 1800110139
080-44647998/080-35734998

उत्तराखण्ड पर्यटन टोल फ्री नंबर:
1364/0135 3520100

महत्वपूर्ण सूचना

- यात्रा से पूर्व पंजीकरण अवश्य करायें।
- रजिस्ट्रेशन में सही मोबाईल नम्बर दर्ज करें।
- धामों पर "दर्शन टोकन" अवश्य प्राप्त करें।
- यात्रा मार्ग पर विभिन्न पड़ावों पर विश्राम करते हुए प्रस्थान करें।
- यात्रा मार्गों पर गंदगी न फैलायें एवं मार्ग को स्वच्छ रखने में सहयोग करें।
- कृपया वाहनों की गति नियंत्रित रखें एवं वाहनों को निर्धारित स्थलों पर ही पार्क करें।
- greencard.uk.gov.in पर अपने वाहन का रजिस्ट्रेशन करवाएं।
- यात्रा के दौरान सिंगल यूज प्लास्टिक का प्रयोग न करें।

स्वास्थ्य का रखें खास ख्याल

- यात्रा आरंभ करने से पहले निकटतम स्वास्थ्य केंद्र में अपनी जांच अवश्य करायें।
- जिन्हें हृदय संबंधी दिक्कतें तथा हाइपरटेंशन है, वे अतिरिक्त सावधान रहें।
- रास्ते में कहीं भी लगे कि आपकी तबीयत ठीक नहीं है तो आगे यात्रा न करें और नजदीकी चिकित्सा केंद्र से संपर्क करें।
- जरुरी दवाइयां, फर्स्ट ऐड किट एवं मेडिकल हिस्ट्री सम्बन्धी रिपोर्ट साथ लेकर चलें।

आपकी यात्रा मंगलमय हो

त्रियुगी नारायण मन्दिर | गरतांग गली | फूलों की घाटी | हर्षिल वैली | देवप्रयाग | ऋषिकेश | औली

सूचना एवं लोक सम्पर्क विभाग, उत्तराखण्ड द्वारा जनहित में जारी | www.uttarainformation.gov.in | uttarakhandDIPR | DIPR_UK | uttarakhand DIPR

#ExploreUttarakhand
@DIPR_UK